CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Somnath Sharma

02

~~सोमनाथ पौड्याल शर्मणेदं पुस्तकं~~

नवराज शर्मणो इदं पुस्तकं

पुस्तकमिदं [redacted] शर्मणः

पढ्नलाई

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

T.L.S. 90

रचनानुवाद-शिक्षा

"नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा॥"

अध्यापक—श्रीमद्गुरुनाथविद्यानिधिभट्टाचार्य्येण
सम्पादिता

श्रीमदुपेन्द्रमोहनकाव्य-सांख्यतीर्थ भट्टाचार्य्येण
संशोधिता

PUBLISHED BY
JANAKINATHKAVYATIRTHA & BROTHERS
CHHATRA-PUSTAKALAYA
NIVEDITA LANE, BAGHBAZAR,
CALCUTTA.
1932

मूल्यं सार्द्धरूपकम्—१॥०

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—

छात्रपुस्तकालय
निवेदिता लेन, वागवाजार
कलकत्ता

आवृत्तिः सप्तमो वङ्गाब्दाः १२३८ श्रीपञ्चमी

नवराज

Printer—Krishnaprosad Ghose,
Prakash Press,
61, Bowbazar Street,
Calcutta.

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ভূমিকা

"ন বিদ্যতে যদ্যপি পূর্ব্ববাসনা গুণানুবন্ধি প্রতিভানমদ্ভুতম্।
শ্রুতেন যত্নেন চ বাগুপাসিতা ধ্রুবং করোত্যেব কমপ্যনুগ্রহম্॥"

জগদম্বার কৃপায় "রচনানুবাদশিক্ষা" প্রকাশিত হইল। সংস্কৃত-শিক্ষার্থীদিগের কিঞ্চিৎ উপকারসাধনই এই পুস্তক প্রণয়নের প্রধান উদ্দেশ্য; জানি না,—মাদৃশ অল্পবিদ্য গ্রন্থকারের উদ্দেশ্য কতদূর সাধিত হইয়াছে।

মাননীয় মহামহোপাধ্যায় শ্রীযুক্ত মহেশচন্দ্র ন্যায়রত্ন সি, আই, ই, মহাশয়ের প্রভূত পরিশ্রম ও চেষ্টায় মহামান্য গবর্ণমেণ্ট কর্ত্তৃক কতিপয় বৃত্তি ও পারিতোষিকের সহিত সংস্কৃত আদ্য, মধ্য ও উপাধিপরীক্ষা প্রবর্ত্তিত হওয়ায়, বর্ষীয়সী কণ্ঠাগতপ্রাণা ভারতীয়া অমরভাষায় সজীবতা উত্তরোত্তর বৃদ্ধিপ্রাপ্ত হইতেছে। কিন্তু দুঃখের বিষয়,—অদ্যাপি সকল চতুষ্পাঠীতে রচনাশিক্ষাবিষয়ক বিশেষ কোন নিয়ম প্রবর্ত্তিত হয় নাই। এখন সকল শাস্ত্রীয় পরীক্ষার্থীকেই সংস্কৃত ভাষায় প্রশ্নোত্তর লিখিতে হয়; বিশেষতঃ এক দিন কেবল রচনানুবাদ বিষয়ক প্রশ্নই নির্দ্দিষ্ট থাকায় সমস্ত পরীক্ষার্থীরই এই বিষয়ে মনোযোগ হইয়াছে। কিন্তু শিক্ষাপ্রণালীর দোষে ও রচনাবিষয়ে উপযুক্ত পুস্তকের অভাবে এখন পর্য্যন্ত চতুষ্পাঠীর ছাত্রগণ রচনানুবাদবিষয়ে উপযুক্ততা লাভে বঞ্চিত আছে। স্কুলের ছাত্রেরা সামান্য ইংরাজী পড়িয়াই যেমন ইংরাজী বলিতে ও লিখিতে পারে, চতুষ্পাঠীর ছাত্রেরা চারিবেদ চৌদ্দ শাস্ত্র পড়িয়াও তাহাদের তুলনায়

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

সংস্কৃত বলিতে লিখিতে বা মাতৃভাষায় অনুবাদাদি করিতে সমর্থ হয় না। অনেক সংস্কৃতাধ্যায়ী সংস্কৃত ভাষায় কথাবার্ত্তা কহিতেও লজ্জা বোধ করেন, কেহ বা উহা অসভ্যতাব্যঞ্জক বিবেচনা করিয়া সংস্কৃত লিখিতে কি বলিতে ঔদাসীন্য দেখাইয়া থাকেন।

শিক্ষার্থীদিগের ইহা মনে রাখা উচিত যে—শাস্ত্রীয় তর্কবিতর্ক দ্বারা সভা জয় করা মাত্র শিখিলে এখন চলিবে না, এখন প্রাচীন কালের ন্যায় সংস্কৃত ভাষায় অধিকারী হইতে না পারিলে পদে পদে লাঞ্ছিত হইতে হইবে। যেমন শাস্ত্রীয় প্রশ্নের উত্তর শিক্ষণীয় ঐ উত্তর সংস্কৃত ভাষায় ব্যক্ত করিয়া পরীক্ষক মহাশয়কে বুঝানও তেমনই প্রয়োজনীয় অতএব পাঠ্যপুস্তক পড়ার সঙ্গে সঙ্গে রচনাবিষয়েও পটুতা লাভ করিতে সতত মনোযোগ কর্ত্তব্য। ইদানীং ন্যায় স্মৃতি কাব্য প্রভৃতি সমস্ত শাস্ত্রের পরীক্ষাতেই রচনাপটুতা ব্যতিরেকে সফলমনোরথ হওয়া অসম্ভব। প্রশ্নের উত্তর সুন্দররূপে জানা থাকিলেও বাক্যরচনায় অপটুতাহেতু মনের ভাব অব্যক্ত থাকে ; মনের ভাব একরূপ; লেখার দোষে ব্যক্ত হয়—অন্যরূপ ; অনেক স্থলে অস্পষ্টতা, সন্দিগ্ধতা প্রভৃতি দোষও ঘটিয়া থাকে। অনেক সময় ইহাও দেখিতে পাওয়া যায় যে প্রশ্নের উত্তর কথঞ্চিৎ অসম্পূর্ণ হইলেও বাগ্বিন্যাস-পটুতায় পরীক্ষক সন্তুষ্ট হইয়া থাকেন। বস্তুতঃ রচনাপাটব না থাকিলে আশানুরূপ ফল লাভ হয় না; ইহা সর্ব্ববাদিসম্মত।

*   *   *   *

যাহারা সংস্কৃতভাষায় ব্যুৎপত্তি লাভ করিতে প্রয়াসী, প্রবন্ধাদি রচনা কিংবা অনুবাদাদি করিয়া কৃতিত্ব লাভ যাহাদের প্রার্থনীয়, তাহাদের কিঞ্চিন্মাত্র উপকার কামনায় এই পুস্তক প্রণীত হইয়াছে।

*   *   *   *

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पं. पद्मेश्वर शर्मा

দ্বিতীয় বারের বিজ্ঞাপন—জগদম্বার কৃপায় রচনানুবাদ-শিক্ষার দ্বিতীয় সংস্করণ প্রকাশিত হইল। সৌভাগ্যবশতঃ এই পুস্তক সর্ব্বত্র সুপরিচিত ও সর্ব্বজনসমাদৃত হইয়াছে। গ্রাহকবর্গকে অধিকতর সন্তুষ্ট করিবার জন্য এ সংস্করণেও আমরা রচনাপাটবলিপ্সু বিদ্যার্থিগণের অবশ্য জ্ঞাতব্য অনেক নূতন নূতন বিষয় সন্নিবেশিত করিয়াছি। সূচীতেই তাহা উক্ত হইয়াছে সুতরাং পুনরুল্লেখ নিষ্প্রয়োজন।

* * * *

पञ्चमसंस्करणविज्ञप्तिः

संस्करणेऽस्मिन् इदमेव प्रधानतो वक्तव्यं यत् पुस्तकमिद-मपरिचितवङ्गाक्षराणां नागराक्षरानुरक्तानामनुग्राहकग्राहकाणां निरतिशयाग्रहवशात् देवनागराक्षरैर्मुद्रापयित्वा प्राकाश्यं नीतम्। अस्मिन् खलु वारे बहवो नूतनाः कठिनविषयकाः प्रबन्धाः सन्नि-वेशिताः, यद्यपि तादृशप्रयोजनाभावात् ग्रन्थगौरवभिया च केचित् सहजबोध्यविषयाः परित्यक्ताः किन्तु तत्स्थलेऽपि हिन्दीभाषया संस्कृतवाक्यानां, संस्कृतभाषया च हिन्दीभाषाग्रथितवाक्याना-मनुवादस्य प्रणाली प्रदर्शिता। मन्ये इदानीं पुस्तकमिदं सर्वेषामेव संस्कृतभाषामधिजिगमिषूणां मनस्तुष्टिं जनयेत्।

एतत्संस्करणप्रकाशि महदेव असौकर्य्यमभविष्यत्, यदि वाणी-विलासावनीरसालायमानेन उद्यत्कविभास्करेण प्रियदर्शनेन श्रीमत् कालीपदकाव्यव्याकरण-तर्कतीर्थ-तर्काचार्य्यमहोदयेन सौदार्य्यं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रदर्श्य अस्मद्विज्ञिणहस्तस्वरूपता न अव्रजिष्यत। सर्व्वथा मङ्गलं विदधातु विधाता परोपकारव्रतिनः कृतिवरस्य। परिशेषे विनयेन निवेद्यं यत् सानुग्रहं चन्तव्यमस्माकं पुस्तकस्यत्रुटिजातं किञ्चिन्मूल्यवृद्धिजनितोऽनिच्छाकृतापराधश्च जागतिकावस्थाविज्ञैः कृपाप्रवणैः सहृदयैरिति।

षष्ठसंस्करणविज्ञप्तिः

असाधारणकरुणावरुणालयस्य भगवतः परमेश्वरस्य प्रसादेन सानुग्रहाणां साग्रहाणाञ्च सहृदयग्राहकाणां सकरुणदृष्टिपातेन निरवशेषतां गते पञ्चमसंस्करणे दैवगत्या समापतितमतिक्रम्य कथञ्चन पारिवारिकविपत्तिशतमद्य प्रकाशतां नीतमिदं रचनानुवादस्य षष्ठं संस्करणं नाम। प्रारम्भात् प्रभृत्येवास्य संस्करणस्य सत्यपि तावच्छीघ्रं प्रकाशनाय भूयसि प्रयत्ने दुरतिक्रमनियतिव्यापार एव समपादयत् तथा कालात्ययमिति निरपराधः पुरुषकारः प्रकाशकानां चन्तव्यतामधिगन्तुमीष्टे। का वा गतिरस्माकमधुना सानुग्रहाणां ग्राहकाणां समीपे प्रार्थनामन्तरेण।

इयं हि रचनानुवाद-शिक्षा यदतिमात्रमुपकुरुते संस्कृतव्युत्पत्तिमभीप्सतां बहुलासु च संस्कृतभाषापद्धतिषु प्रकर्षमधिजिगमिषूणाञ्चेति तत्र किंवा बहु वक्तव्यम्। एतस्य किल ग्रन्थरत्नस्य कञ्चन कञ्चनांशमुपादाय परैः कति वा ग्रन्था विनिर्मिता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विद्यार्थिनामुपकाराय कल्पन्ते। अस्य तु आदर्शभूतस्य तथोपकारकत्वमधिगतमभिरूपसमाजेष्वविवादमेव। अलमेतत्-परिहाणिनांशविशेषमुपादाय प्रवृत्तेषु परनिबन्धादिग्रन्थेषु विश्वासमासाद्य सुरसरस्वतीप्रबन्धे निजोन्नतिप्रतिबन्धेनेति सनिर्बन्धं वयमावेदयामः। संस्करणेऽस्मिन् पूर्व्वसंस्करणापेक्षया विषयाणां परिवर्द्धनं परिवर्त्तनञ्च नापेक्षितं एव इति पूर्व्वसंस्करणसमाना एव विषया अत्र परिगृहीता आसते। परं साम्प्रतिकशिक्षित-समाजानां रुचिमनुसृत्य ग्रन्थस्य आकारे मुद्रणोपकरणेषु च द्रव्य-सम्भारेषु सम्पादितः पूर्व्वापेक्षया भूयानुत्कर्षः, एवं सत्यपि मुद्रापणार्थं द्रव्यव्ययबाहुल्ये समुपेक्षितं ग्राहकाणां सौकर्य्य-सम्पादनाय मूल्यपरिवर्द्धनमपीति विज्ञाप्यमेव।

अत्र चान्ते वक्तव्यमिदं यदस्मिन् खलु संस्करणे मदीयपरम-शुभानुध्यायिना नानाशास्त्रनिष्णातेन सुहृत्प्रवरेण श्रीउपेन्द्र-मोहनकाव्यसांख्यतीर्थकाव्यरत्नपुराणशास्त्रिणा सर्व्वतः संशोधनं विधाय सुतरामुपकृता वयं तदन्तिके कृतवेदितामाविद्य परमेश-पादयोस्तदीयं मङ्गलशतं सुदीर्घनिरामयजीवनं निस्तन्द्रां कर्म्म-शक्तिञ्च कामयामहे इति शम् —

१२३४ वङ्गाब्दीय-
षष्ठ्यादिकल्पारम्भदिवसः
गुरुधामतः।

आश्रव—
प्रकाशकानाम्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सूचीपत्रम्

विषयः	पत्राङ्कः
मङ्गलाचरणम्	१
प्रबन्धलक्षणम्	,,
वाक्यलक्षणम्	,,
वाक्यरचनायामन्वयनियमः	,,
कतिपयवाक्यं	,,
वाक्यवृद्धिः	२
वाक्यवृद्धिप्रश्नः	४
वाक्यसंक्षेपः	५
विशेषण-विशेष्यसंयोगः	६
विशेष्यपदप्रयोगप्रश्नः तदुत्तरञ्च	७
क्रियायोगप्रश्नः तदुत्तरञ्च	,,
क्षुद्रवाक्यरचनाप्रणाली	,,
कारकयोगेन वाक्यरचना	८
उद्देश्यविधेयविवेकः	,,
वाक्यपूरणम्	१२
वाक्यपूरणे प्रश्नः उत्तरञ्च	१२
वाच्यपरिवर्त्तनम्	१३
विशेष्यविशेषणयोरन्यतरत्वेन परिणतिः	१४
रचनावैचित्र्यम्	१४
प्रबन्धरचनारम्भः	१५
विद्वान् सर्व्वत्र पूज्यते	१५
विद्यया किं फलम्	,,
अतीत्य हि गुणान् सर्वान्	,,
स्वभावो मूर्ध्नि वर्त्तते	१८
धर्म्मो रक्षति धार्म्मिकम्	२१
उद्योगात् किं न सिध्यति	२३
प्रस्तरोऽपि घृष्यमाणः क्षीयते	२४
उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः	,,
आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्वन्ति साधवः	२७
दयालुर्देवता साक्षात्	,,
परोपकारणं कायादसारात् सारमाहरेत्	३२
परोपकाराय सतां विभूतिः	,,
लोभ एको महान् रिपुः	३७
आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः	४०
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता	४४
स्वास्थ्यं हि सर्वस्य सुखस्य हेतुः	४८

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शरीरमाद्यं खलु धर्म्मसाधनम् ५०
विनयो भूषणं महत् ५१
विनयस्य तुल्यो गुणो नास्ति ,,
संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ५३
चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ५६
सर्वत्र लभते गर्हां कृपणो यस्तु मानवः ५८
विद्यारत्नं महाधनम् ६२
सञ्चयी नावसीदति ६५
पदं हि सर्वत्र गुणैर्निधीयते ६७
नाहङ्कारात् परो रिपुः ७०
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी ७२
सर्वं नष्टं दरिद्रस्य ७६
नास्ति दैन्यात् परो रिपुः ,,
अविवेकः परमापदां पदम् ७८
पिता स्वर्गः पिता धर्म्मः ८३
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः ८६
सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः ९०
वरमेकाहुतिः काले नाकाले लक्षकोटयः ९५
दुर्बलानां बलं राजा ९८
आ परितोषाद् विदुषां न साधुमन्ये प्रयोगविज्ञानम् १०३
रिक्तं हि पात्रं ध्वनति प्रकामम् १०७
प्रकृतिः खलु सा महीयसां सहते नान्यसमुन्नतिं यया १११
आशावधिं को गतः ११५
मनसा चिन्तितं कर्म्म वचसा न प्रकाशयेत् ११८
सर्वः स्वार्थं समीहते १२२
कालो हि बलवत्तरः १२६
अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित् १३०
दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि १३४
भगवान् भक्तिबाधितः १३६
काव्यप्रकर्षः कविप्रकर्षश्च १४२
चित्रकाव्यसङ्गीतानां रसाविष्करणे प्रभेदः १४७
गुणालङ्काररीतीनां काव्यप्रकर्षे उपयोगित्वम् १५६
दर्शनस्यपुरुषार्थानुकूलत्वम् १६०

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति १६२
सांख्यस्योपयोगः १६८
स्मृतिनिबन्धानामुपयोगः १७१
गीताशास्त्रीयमोक्ष-कारणम् १७४
वेदान्तस्याध्यासः १७८
वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात् १८०
मुखं व्याकरणं स्मृतम् १८३
चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि काव्यादेव १८७
पुराणानां मुक्तिप्रयोजकत्वम् १९१
आत्मनिर्देशः (न्याये) १९६
जातिविचारः (न्याये) २०२
बहुदर्शिताया ज्ञानविशेष प्रतिउपयोगित्वम् २०६
सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः २०९
अथ हेत्वाभासास्तत्त्वनिर्णयविजयप्रयोजकत्वान्निरूप्यन्ते २११
संशयपक्षताया अनुमितिं प्रति कारणत्वविमर्शः २१६
भावाभावयोर्ज्ञानस्य प्रतिवध्यप्रतिवन्धकभावविचारः २२२
परामर्शकारणताविचारः २२७
रचनाविषयक उपदेश- २३४
सर्षपः २३५
अश्वः २३७
नारिकेलवृक्षः २३७
कलिकाता २३८
शङ्कराचार्य्यः २३९
विविधाः [दया-शिक्षा-लोभ-बाल्यविवाह-भक्ति-सरलता-विश्वास-सन्तोषाध्यवसाय-हिंसा-चौर्य्यप्रभृतिः] २४०
कवितोपक्रमः २४३
राजवर्णने वर्णनीयविषयः २४६
राजमहिषीवर्णने २४६
पुरोहितवर्णने २४७
कुमारवर्णने ,,
अमात्यवर्णने ,,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सेनापतिवर्णने	२४७
देशवर्णने	,,
ग्रामवर्णने	२४८
राजधानीवर्णने	,,
सरोवर्णने	,,
अब्धिवर्णने	२४९
नदीवर्णने	,,
उद्यानवर्णने	,,
शैलवर्णने	,,
अरण्यवर्णने	,,
आश्रमवर्णने	२५०
मन्त्रवर्णने	,,
दूतवर्णने	,,
रणवर्णने	,,
प्रयाणवर्णने	,,
मृगयावर्णने	,,
अश्ववर्णने	२५१
गजवर्णने	,,
वसन्तवर्णने	,,
ग्रीष्मवर्णने	,,
वर्षावर्णने	,,
शरद्वर्णने	,,
हेमन्तवर्णने	२५२
शिशिरवर्णने	,,
सूर्य्योदयवर्णने	२५२
चन्द्रोदयवर्णने	,,
विवाहवर्णने	,,
विरहवर्णने	,,
स्वयंवरवर्णने	,,
सुरापानवर्णने	२५३
पुष्पचयनवर्णने	,,
जलक्रीड़ावर्णने	,,
रतिवर्णने	,,
विशेषविधिः	२५४
वर्णवर्णनम्	,,
येन सह यस्य सादृश्यम्	२५७
गुप्तक्रिया	२५८
गुप्तकर्म्मकर्त्तारौ	,,
गूढ़सम्बन्धः	२५९
अर्द्धमात्राच्युतकम्	,,
विन्दुच्युतकम्	,,
मात्राच्युतकम्	,,
अक्षरच्युतितः छन्दोऽन्तरम्	,,
वक्रोक्तिः	२६०
प्रश्नोत्तरम्	,,
पट्टिशबन्धः	,,
षोड़शदलपद्मबन्धः	,,
अष्टदलपद्मबन्धः	,,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यमकम्	२६०	संस्कृतपत्रलिखनप्रणाली	३१३
एकाक्षरपादः	२६१	पत्रप्रमाणम्	”
द्व्यक्षरपादः	”	पत्रभङ्गप्रकारः	”
निरोष्ठ्यश्लोकः	”	पत्ररचनक्रमः	”
एकाक्षरश्लोकः	”	राजपत्रादिपदन्यासः	”
गतप्रत्यागतपादः	”	श्रीशब्दविन्यासमंख्या	३१४
गोमूत्रिकाबन्धः	२६२	राजादिप्रशस्तिः	”
असंयुक्तपुनरुक्ताक्षरः	”	वर्त्तमानसमये प्रचलित-पत्राणामादर्शः	३१८
सर्व्वतोभद्रम्	”	विविधपत्रादर्शः	”
द्व्यक्षरश्लोकः	”	ब्राह्मणपण्डितानां निमन्त्रण पत्ररचना-पद्धतिः	३२२
वाच्यबोधाः	”	विविधनिमन्त्रणपत्रादर्शः	३२५
साधारणविभक्तिबोधः	२६६	अनुवादप्रकरणम्	३२८
वाक्यमाला	२७३		
ग्राम्यशब्दबोधः	२७८		
समस्यापूरणम्	३०७		
समस्यापूरणोपायः	३०८		

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ग्रन्थसमर्पणम्

राज्ञा श्यामलवर्म्मणा क्रतुकृते यः कान्यकुब्जस्थला-
दानीतः शुनको यशोधर इति ख्यातो यथार्थाभिधः ।
विप्रो वेदविदांवरो बहुतपाः सम्मानसम्पद्युतं
वङ्गान्तर्गतसिद्धविक्रमपुरे संस्थापितस्तादरात् ॥
तत्पवित्रकुलोत्पन्नः सद्विद्याचारभूषितः ।
जनको जयचन्द्रो मे उमा माता तपस्विनी ॥
षड्भुजाष्टेन्दुशाकाब्दे कृष्णजन्माष्टमीदिने ।
तयोः स्वर्गतयोः पादपद्मेष्वेषा समर्पिता ॥
पद्मोत्तरतटाख्यातधलच्छत्रनिवासिना ।
शर्म्मणा गुरुनाथेन कलिकाताप्रवासिना ॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शिवकुमार-संस्कृत-विद्यार्थि-भवनाध्यापक-नैयायिकप्रवर-

श्रीयुक्तचण्डीचरणतर्कतीर्थ-सम्पादित-

मीमांसा-परिभाषा

(अर्थप्रसाधिनी टीका-वङ्गभाषानुवादाभ्यां समलङ्कृता)

मीमांसापरिभाषेयं मीमांसादर्शनस्य प्रकरण ग्रन्थः मीमांसातत्त्वे प्रविशताम्। किल अनेकासु परीक्षासु पाठ्यतया निर्दिष्टा परीक्षाधिकारिभिः। एतावत्कालमस्या-स्तादृशं किमपि सटीकानुवादं संस्करणं नोपलब्धं, येन परीक्षार्थिनः विनैवायासविशेषमेतत्पाठसमर्था भवेयुः। तदभावदूरीकरणाय किमपि तथा सटीकानुवादं समीचीनं मीमांसापरिभाषायाः संस्करणं प्रकाशितमस्माभिः। आशास्यते यदेतेन न केवलं परीक्षार्थिनां परं केषाञ्चिदध्याप-कानामपि मीमांसाज्ञानविषये महानुपकारः सम्भवेदिति। मूल्यं दशाणकमात्रम्, केवलव्ययनिर्वाहाय परिगृह्येत। सत्वरं गृह्यतामन्यथा मनोरथहानिः।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

संस्कृतसाहित्यपरिषदाचार्य्य-युक्तिदीपिकादि-टीकाकार—

श्रीयुक्तकालीपदतर्काचार्य्य-सम्पादित—

सांख्यकारिका

(गौड़पादभाष्य-भाष्यप्रभाख्यटीका-वङ्गानुवादैः समलङ्कृता)

सांख्यकारिका नाम सांख्यतत्त्वप्रतिपादकः परमोपादेयः प्रमाणग्रन्थः। अस्य ग्रन्थस्य वाचस्पतिमिश्रेण तत्त्वकौमुदी, माठराचार्य्येण माठरवृत्तिः, गौड़पादाचार्य्येण गौड़पादभाष्यमित्येता व्याख्या निरमायिषत। तत्र गौड़पादाचार्य्यकृतभाष्यं कारिकासहितं सांख्यशास्त्रीयप्रथमपरीक्षायां निर्द्दिष्टं पाठ्यरूपेण वर्त्तते। परं गौड़पादभाष्यस्य वहुषु स्थलेषु दुरवबोधतया तेन विद्यार्थिनां जिज्ञासूनामपरेषाञ्च सांख्यतत्त्वावबोधो नैव सम्यक्तया सम्पद्यते, अत एवास्माभिः गौड़पादभाष्यस्य भाष्यप्रभाख्यटीकया कारिकाया वङ्गभाषानुवादेन च समलङ्कृत्य सांख्यकारिका सम्पादिता। नाद्य यावत् ईदृशस्य सभाष्य-सांख्यकारिकाग्रन्थस्य समीचीनं संस्करणं प्रकाशितं केनापि। तद् विद्यार्थिनः सांख्यतत्त्वबुभुत्सवश्च त्वरन्तामस्य संस्करणस्य संग्रहाय। मूल्यमप्यस्य ग्राहकाणां सौकर्य्यसाधनाय दशानकमात्रमेव निर्द्दिष्टम्। त 'दलं विलम्बेन त्वरितुं हि वेला' इति श्रीहर्षकविवचनमेव यथाकालमुच्यते।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सांख्य-सारः

("सारप्रभा" टीका-वङ्गभाषानुवादसमेतः)

विदित एव सांख्यसारो नाम सांख्यग्रन्थः कापिलतत्त्वमधिगतवतामधिजिगांसूनाञ्च प्रायेण। स च सांख्य शास्त्रस्य प्रथमपरीक्षायां चरमपरीक्षायाञ्च पाठ्यग्रन्थेष्वन्तर्भवति। तस्य नवीनमिदं संस्करणं टीकानुवादसमेतं प्रकाश्यमानमुपलभ्य तृप्यन्तु सांख्यशास्त्रीयतत्त्वजिज्ञासव इति काले वयमावेदयामः। सत्यपि सांख्यसारस्य टीकासहिते संस्करणान्तरे ये नाम भाषानुवादप्रिया न प्रीयन्ते तेन, तदर्थमेवास्य विशेषतः समारम्भ इति विदाङ्कुर्वन्तु श्रीमन्तः सांख्यविद्यार्थिनः। मूल्यमस्य द्वादशाणकमात्रमेव कल्पितं विद्यार्थिनां सौकर्य्यसम्पादनाय। तत् त्वरन्तां त्वरन्तां ग्राहकाः। संस्करणस्यास्य प्रकर्षविचारे मूल्यमिदमत्यल्पकमेव।

प्राप्तिस्थान
छात्रपुस्तकालय—
निवेदिता लेन, वागवाजार,
कलिकाता।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रचनानुवाद-शिक्षा

मङ्गलाचरणम्

माता-पित्रोः पदाम्भोजं प्रणमामीष्टसिद्धिदम् ।
यत्प्रसादेन संसार-रङ्गे ऽव्याप्यस्मि नर्त्तकः ॥

प्रबन्धरचनोपक्रमः

प्रबन्धलक्षणम्

कमपि विषयमवलम्ब्य रचितं परस्परसम्बद्धं वाक्य-कदम्बकं प्रबन्धो नाम ।

वाक्यञ्च—

"वाक्यं स्याद् योग्यताकाङ्क्षासत्तियुक्तः पदोच्चयः ।"

इति लक्षणान्वितम्, विस्तरोऽस्य साहित्यदर्पणादावनुसन्धेयः ।

वाक्यरचनायामन्वयनियमः प्रायेण रक्षणीयः । संक्षिप्त-गद्यात्मकवाक्ये आदौ कर्त्तृपदम्, अन्ते च क्रियापदं प्रयोज्यम् । अनुज्ञायामेतद्विपर्य्ययोऽपि भवेत् ।

कतिचिद्वाक्यानि ।—

श्रीहरिर्जयति । गणपतिं वन्दे । रविरुदेति । शिशुः क्रीडति । जगदीशो युष्मानवतु । कटं करोतु भवान् ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वाक्यवृद्धिः

प्रबन्धरचनाशिक्षार्थमादौ विविधकौशलेन वाक्यं रचयितव्यम्। तत्र प्रथमतो विशेषणादिप्रयोगेण वाक्यं वर्द्धयितव्यम्। तद्यथा—

१। 'रामो वनमगच्छत्' इति वाक्यम्, अस्य वृद्धिः—
दशरथतनयो रामो वनमगच्छत्।

२। 'स ग्रामं याति' इति वाक्यम्, अस्य वृद्धिः—
भोक्तुमनाः स विप्रः शीघ्रं ग्रामं याति।

३। 'रामो रावणं जघान' इति वाक्यम्, अस्य वृद्धिः—

(क) महावीरो रामो रावणं जघान।

(ख) महावीरो रामो दुर्जयं रावणं जघान।

(ग) महावीरो रामो दुर्जयं रावणं युधि जघान।

(घ) महावीरो रामो दुर्जयं रावणं युधि शरेण जघान।

(ङ) महावीरो रामो दुर्जयं लङ्काधिपतिं सीतापहारिणं रावणं त्रिलोकभयङ्करे समरे अप्रतिहतेन शरेण जघान।

(च) महावीरो जानकीवल्लभो रामः पितृवचनेन चतुर्द्दश वत्सरान् वनमधिवसन् सुरनिकरं परित्रातुं प्रबलपराक्रमं दुराचारं लङ्केश्वरं रावणं त्रिलोकभयङ्करे समरे सुतीक्ष्णेनाप्रतिहतेन शरेण जघान।

(छ) वीरकुलचूडामणिः सूर्य्यवंशावतंसः साक्षाद्भगवदवतारः कौशल्यानन्दवर्द्धनो दाशरथी रामः कैकेयीवचनपरवशेन जनकेन निर्व्वासितः सीतालक्ष्मणसमेतो हिंस्रकजन्तुसङ्कुलं काननप्रदेशं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

र्य्यटन्, समासादितसुग्रीवसौहृद्यः कपिनिवहसाहाय्येन सम्पादितसागरसेतुः, सुरसमाजशासितारमतिदुर्जययातुधानगणनायकं कपटसन्यासिवेशमवलम्ब्य जनकतनयामपहृतवन्तं प्रबलपराक्रमं लङ्काधिपतिं रावणं, लोकशिक्षार्थमगणिततनुक्लेशमाराध्य परमाराध्यां परमेश्वरीं त्रिलोकभयङ्करं समरमभिनीय, निखिलभयेभ्यः सुरगणान् परित्रातुं ज्वलदनलसन्निभेन सुतीक्ष्णेनाप्रतिहतेनासिना दश शिरांसि सञ्छिद्य जघान ।

४। 'भगवान् भवन्तमभिरक्षतु' इति वाक्यम्, अस्य वृद्धिः—

यः खलु जगन्मण्डलमिदं प्रलयजलधिजलविलीनमवलोक्य परिगृहीतमीनमूर्त्तिरपौरुषेयं वेदशास्त्रमिदमुददीधरत् । यः स्वीकृतशूकरशरीरः प्रलयजलधिजलमग्नमिदमवनिमण्डलं विशालया दशनशिखया समुद्धृतवान् । यः कूर्म्मकलेवरमवकलयन् ससागरमिदं सर्वंसहामण्डलं पृष्ठोपरि धृतवान् । यस्तावत् प्रकटितविकटनरसिंहशरीरः कुलिशानुकारिनखरनिकरप्रहारेण प्रबलपराक्रमस्य दनुजाधिपतेः परमरिपोर्हिरण्यकशिपोरुरस्तलं विदारितवान् । यः कश्यपगृहेषु गृहीतवामनविग्रहो दानव्रतदीक्षितं दितिसुताधिपतिं वलिं कैतवेन त्रिपादपरिमितां भूमिमभिप्रार्थ्य पातालतलमुपलम्भयन् पाकशासनं पुनः सुरराजतापदे नियुयुजे । यः प्रज्वलत्तपोऽग्ने र्जमदग्ने र्लब्धजन्मा जनकहननजनितकोपपावकस्तीक्ष्णधारकुठारकरणं प्रचण्डवीर्य्यकार्त्तवीर्य्यभुजवनमच्छिदत्, अतर्पयच्च पितरमेकविंशतिकृत्वः क्षमामिमा-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सच्चरित्रियां विधाय वैरिविसरगलगर्त्ततो गलता रुधिरवारिणा। यः सुरगणसमर्थितश्चतुर्भिरंशैर्दशरथगृहेष्ववतीर्य गौतमाभिशप्ता- महल्यामनुगृह्य कैकेयीवचनपरवशेन जनकेन निर्वासितो विपिनं विपिनमधिवसन् शाखामृगसैन्यसहायः सेतुबंधनेनाभिपन्न- सिन्धुपरपारो लङ्कापुरमभिप्रविश्य प्रचण्डदोर्दण्डभीषितभुवनत्रयं कृतान्तस्यापि कृतान्तमतिदुर्दान्तं रात्रिञ्चरराजाधिराजमपहृत- जनकात्मजं रावणं सवंशमध्वंसयत्। यो द्वापरयुगान्ते धर्म्म- संस्थापनार्थं देवकी-जठराज्जन्म परिगृह्य दुर्दान्तदानवव्यूह- विनाशेन सर्वंसहाया असहनीयभारमपसारयन् बहुविधलीलयां विजहार। यः सुगतरूपेणावतीर्य्य जितेन्द्रियताप्रभृतिसद्गुण- गणानां चरमसीमानमदर्शयत्। यः सम्भलपुरसंज्ञकनगरे परम- धर्म्माचाररतस्य विष्णुयशोऽभिधानविप्रस्य गृहेष्ववतीर्य्य कल्कि- नामा भविष्यन् धर्म्माचारपरिभ्रष्टान् वेदविद्वेषिणः शासिता। स भूतभावनो वैकुण्ठपुरविहारी कमलावल्लभो भगवान् नारायणो भवन्तं सर्वतः समवतु।

५। 'शूद्रको नाम नरपतिरासीत्' इति वाक्यम्, अस्य वृद्धिः—

'आसीदशेषनरपतिशिरःसमभ्यर्चितशासनः पाकशासन इवा- पर' इत्यादि कादम्बरीयशूद्रकवर्णनमवलोकनीयम्।

निम्नलिखितानि वाक्यानि वर्द्धय—

शिवं प्रणमामि। चन्द्र उदेति। स भुङ्क्ते। शिशुः शेते। राजा शास्ति। गङ्गायां स्नाति। कृष्णो रक्षतु। विद्यामुपा- र्जयेत्। दरिद्रान् प्रतिपालय। सुखी भवतु।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वाक्यसंक्षेपः

वाक्यस्थितानामप्रयोजनीयानां पदानां परित्यागो वाक्यसंक्षेपः, स च बहुधा सम्भवति। यथा—

१। सूर्य्यवंशीयः सुशीलः प्रकृतिरञ्जनः सीतावल्लभो रघुपतिः श्रीरामचन्द्रः सेतुं बबन्ध।

संक्षेपः—श्रीरामचन्द्रः सेतुं बबन्ध।

२। सर्वशक्तिसम्पन्नो भूतभावनो जगदीश्वरः सर्वाभ्य आपद्भ्यो भवतो रक्षतु।

संक्षेपः—जगदीश्वर आपद्भ्यो भवतो रक्षतु।

३। लङ्काधिपतिः प्राणप्रियतमस्य शक्रजितो वधमाकर्णयामास, विललाप च मुक्तकण्ठं—हा वत्स! क्व गतोऽसीति।

संक्षेपः—लङ्काधिपतिः प्राणप्रियतमस्य शक्रजितो वधमाकर्ण्य विललाप मुक्तकण्ठं—हा वत्स! क्व गतोऽसीति।

४। रामस्य नयनं नश्यति, स किञ्चिदपि नालोकयिष्यति।

संक्षेपः—नयने नश्यति (सति) रामः किञ्चिदपि नालोकयिष्यति।

५। रामो यथा पितृभक्त आसीत्, भरतश्च तथा पितृभक्त आसीत्।

संक्षेपः—(क) रामभरतौ तुल्यं पितृभक्तावास्ताम्।
(ख) रामभरतौ तुल्यं पितरमभजताम्।

६। रामो वनमगमदिति दृष्ट्वा दशरथः प्राणानत्यजत्। ये तावन्तः पुरवासिनः शोकविह्वला रुरुदुः, महर्षिर्वशिष्ठस्तान्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सान्त्वयामास, नन्दिग्राममागत्य भरतमयोध्यापुरमानेतुं सुमन्त्रं प्रेरयामास च।

संक्षेपः—रामे निर्वासिते महर्षिर्वशिष्ठः मृतं दशरथमनुरुदतः पुरवासिनः सान्त्वयित्वा नन्दिग्रामतो भरतानयनाय सुमन्त्रं प्रेरयामास।

७। यामिनी सुप्रभाताऽभवत्, विहङ्गमगणाः कलरवमकार्षुः, पान्थशालामधिशयानाः पथिका विहङ्गमगणानां कलरवं श्रुत्वा शय्यापरित्यागपूर्वकमुत्थानञ्चक्रुर्जग्मुश्च सर्वे स्वस्वगन्तव्यदेशान्।

संक्षेपः—विहङ्गमकलरवेण रजनीविरामं मत्वा पान्थशालामधिशयानाः पथिका उत्थाय स्वस्वगन्तव्यदेशानगमन्।

विशेषणेन सह विशेष्यसंयोगः

प्रथममेकेन, यथा—

(क) सुशीलो रामः। (ख) विशालो वृक्षः। (ग) पक्वं फलम्।

द्वाभ्यां यथा—

(क) बुद्धिमान् सुशीलो रामः। (ख) फलवान् विशालो वृक्षः। (ग) सुमिष्टं पक्वं फलम्।

त्रिभिर्यथा—

(क) लोकप्रियो बुद्धिमान् सुशीलो रामः। (ख) नम्रः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

फलवान् विशालो वृक्षः। (ग) मनोरमं सुमिष्टं पक्वं फलम्।
एवंक्रमेण विशेषणं प्रयोज्यम्।

विशेष्यपदप्रयोगः

प्रश्नः। निम्नलिखितानां विशेषणानां विशेष्यपदानि प्रयुज्यन्ताम्।

१ धनी। २ विद्वान्। ३ सुबुद्धिः। ४ रमणीयम्। ५ दीनः। ६ महती। ७ सुशीला। ८ पूजनीयः।

उत्तरम्।—

१ धनी लोकः। २ विद्वान् बालकः। ३ सुबुद्धिः कालिदासः। ४ रमणीयं सरोवरम्। ५ दीनो ब्राह्मणः। ६ महती बुद्धिः। ७ सुशीला सीता। ८ पूजनीयो गुरुः।

क्रियायोगः

प्रश्नः। पूर्वलिखितानि पदानि क्रियया सह प्रयुज्यन्ताम्।

उत्तरम्।—

१ धनी लोकः प्रभवति। २ विद्वान् बालक आद्रियते। ३ सुबुद्धिः कालिदासः प्रादुरासीत्। ४ रमणीयं सरोवरं शोभते। ५ दीनो ब्राह्मणः प्रार्थयते। ६ महती बुद्धिर्वर्त्तते। ७ सुशीला सीता रराज। ८ पूजनीयो गुरुरुपदिशति।

आदौ क्षुद्रं क्षुद्रं वाक्यं रचयितव्यम्—

तत्र प्रथममेकेन कारकेण, एकया च समापिकया क्रियया,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ततो द्वाभ्यां, ततस्त्रिभिरित्यादिक्रमेण कारकसमूहेन क्रिया-विशेषणयोगेन सम्बन्धिपदेन कारकविशेषणेन च क्रमशो वर्द्ध-यित्वा वाक्यं रचयेत्। कतिचिद्वाक्यानि प्राग्दर्शितानि, सम्प्रत्यपि प्रकारान्तरेण दर्श्यन्ते।

१। (क) स गच्छति। (ख) अहं पश्यामि। (ग) त्वं पठ। २ (क) स शीघ्रं ग्रामं याति। (ख) अहं सयत्नं पश्यामि। (ग) त्वं साभिनिवेशं पठ।

३ (क) स शीघ्रं ग्रामं याति। (ख) अहं सयत्नमिन्दुं पश्यामि। (ग) त्वं साभिनिवेशं पुस्तकं पठ इत्यादि।

प्र। मतिमान्, अज्ञः, निन्दा, उपदेशः, ज्ञानम्, अकारणम्, सुखम्, धर्म्मः ; एतेषां पदानां क्रमेण एकं, द्वे, त्रीणि, चत्वारि, पञ्च, षट्, सप्त, अष्ट च गृहीत्वा वाक्यं रचय।

उ। १ (क) "मतिमान्" जनः कार्य्यं समाधत्ते। (ख) "अज्ञः" सदसद्विवेचनाशून्यो भवति। (ग) "निन्दा" न कर्त्तव्या। (घ) "उपदेशः" श्रूयताम्। (ङ) "ज्ञानम्" सम्पदे भवति। (च) "अकारणं" न विवदस्व। (छ) "सुखं" लभ्यताम्। "धर्म्मो" रक्षति धार्म्मिकम्।

२। (क) "मतिमान्" जनः "अज्ञो" न भवति। (ख) "निन्दा" भवेदिति शङ्कया नीचजनादपि "उपदेशः" न परि-त्याज्यः। (ग) दुष्प्रकृतेरमलं "ज्ञानं" विनयस्य "अकारणम्" भवति। (घ) "धर्म्मः" "सुख" मुत्पादयति।

३। (क) "मतिमान्" मानवः "अज्ञस्य निन्दायां" कर्णं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

न पातयति। (ख) सद्गुरोः "उपदेशेन" निर्म्मलं "ज्ञानं" लभमानस्य जगत् "अकारण" मित्रं भवति।

४। (क) "मतिमत उपदेशः अज्ञता-निन्दां" निवारयति। (ख) यस्य "धर्म्मज्ञानं" वर्त्तते, सः "अकारण" परस्य "सुखं" न प्रतिबध्नाति।

५। "अज्ञः" अपि मतिमत उपदेशेन "ज्ञानं" लब्ध्वा पर-"निन्दां" न करोति।

६। "अज्ञः" अपि "मतिमत उपदेशेन ज्ञानं" लब्ध्वा "अकारण"-पर-"निन्दातो" निवर्त्तते।

७। "अकारण"-पर-"निन्दा"-तत्परः "अज्ञो"ऽपि महताम् "उपदेशेन" "मतिमान्" भूत्वा शत्रुमित्रभेद-"ज्ञान"-विरहितः परमं "सुख"मनुभवति।

८। महान् "अज्ञो" रत्नाकरः "अकारण"-जगदुपकारमाचरतो "मतिमद्"-वरेण्यस्य महर्षेः 'उपदेशतः' परमं "ज्ञानं" लब्ध्वा स्वकृतदुष्कृतकर्म्म-"निन्दया" यति-"धर्म्म"-माश्रयन् अनिर्वचनीय-"सुख"-साधनममृतमयं रामनाम स्थिरमानसमविरामं जजाप।

प्रकारान्तरेण वाक्यरचना

क्रमेण एकैककारकयोगेण यथा—

१। अहं गच्छामि। शिवं प्रणमति। शकटेन व्रजति। ब्राह्मणाय ददाति। वृक्षात् पतति। शय्यायां शेते।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कारकद्वययोगेन—

२। कृष्णः कंसं हतवान्। जनको रामभद्राय सीतामदात्। दुष्मन्तः शरेण मृगं विव्याध। वृक्षात् पर्णं पतति। शिवः काश्यामगमत्।

कारकत्रययोगेण—

३। अहं चक्षुषा चन्द्रमपश्यम्। त्वं वृक्षात् फलं पातयस्व।

कारकचतुष्टययोगेन—

४। त्वं ब्राह्मणाय गृहात् फलं देहि।

कारकपञ्चकयोगेन—

५। भगवती रणक्षेत्रे महासिना वाहनात् पतितं दानवेन्द्रं चकर्त्त।

षड्भिरग्रे दर्शयिष्यते। (११ पृ—१३ प)।

उद्देश्यविधेयविवेकः

वाक्यरचनायां प्रायेण उद्देश्यपदं पूर्वं विधेयपदञ्च पश्चात् प्रयोज्यम्। तथाहि—

"अनुवाद्यमनुक्त्वैव न विधेयमुदीरयेत्।"

प्रायेण सर्वेषु वाक्येष्वेव उद्देश्यं विधेयञ्च वर्त्तते। तत्र यदवलम्ब्य क्रिया भवेत् तत् उद्देश्यम्, यच्च विधीयते तद् विधेयम्। यथा—

१। श्रीकृष्णः कंसमवधीत्।—अत्र श्रीकृष्ण] इत्युद्देश्यम्,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कंसमवधीदिति विधेयम्। २। असावद्य गङ्गायां स्नायात्।— अत्र असावित्युद्देश्यम्, गङ्गायां स्नायादिति विधेयम्। ३। असत्यस्य संस्थापनात् (उ) सत्यस्य संस्थापनं (वि) सुकरम्। ४। इयं (उ) गेहे लक्ष्मीः (वि)।

संक्षिप्तवाक्यरचनायां प्रायेण एतादृशनियमेन पदानामुपन्यासः समीचीनो भवति। यथा आदौ कर्त्तृपदं, ततः करणपदं, ततः सम्प्रदानपदं, ततः अधिकरणपदं, ततः अपादानपदं, ततः कर्म्मपदं, ततः क्रियाविशेषणं, ततः क्रियापदम्। इयमेव अन्वयप्रणाली। स्थलविशेषे अस्य विपर्य्ययोऽपि रुचिकरः।

उदाहरणम्—राजा हस्तेन ब्राह्मणाय हस्ते कोषागारादानीतं धनं श्रद्धापूर्वकं ददाति।

इदं वाक्यं विशेषणयोगेन इत्थं परिणमेत्। यथा—

दयावान् राजा परिपूतेन हस्तेन दरिद्राय ब्राह्मणाय अञ्जलिबद्धे हस्ते रक्षिजनरक्षितात् कोषागारात् सत्वरम् आनीतं प्रचुरं धनम् अतिश्रद्धापूर्वकं ददातितराम्।

कदाचित् कर्त्तृपदादीनां प्राधान्यद्योतनार्थं बन्धस्य दृढिम्ने वा अन्वयनियमस्य लङ्घनमपि विधातव्यम्। यथा—लङ्कापुरीं हनूमानेव ददाह। इत्यादि।

सम्बोधनपदं वाक्यस्य प्रथमं प्रयोज्यम्। यथा—देवि! भवतीं वन्दे। इत्यादि।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वाक्यपूरणम्

प्रयोजनीयपदोपन्यासेन वाक्यं पूरयितव्यम्। यथा—

१। गच्छामि—"अहं ग्रामं" गच्छामि।

२। यदाहं तमपश्यम्, स मामवोचत्—"तदा" स मा-"मिद"-मवोचत्।

३। अस्मिन् संसारे धर्म्मः सारः—अस्मिन् "असारे" संसारे धर्म्म "एव" सारः।

४। रामे राजनि निरापद आसन्—रामे राजनि "प्रकृतयः" निरापद आसन्।

५। केनापि सह न कर्त्तव्यः—केनापि सह "विवादः" न कर्त्तव्यः।

प्रश्नः। (क) शान्तिः, (ख) कृष्णः, (ग) स्वाधीनता, (घ) सारः, (ङ) विद्या, (च) धनम्, (छ) विद्वान्, (ज) सुखम्, (झ) लघुः, (ञ) पूज्यः। एतेषामेकैकपदं गृहीत्वा वाक्यं पूरय।

उत्तरम्—

(क) संसारदावानलतप्तानां कुतः "शांति"-र्भवेत्।

(ख) दुर्दान्तदानवकुलसमुन्मूलनाय वसुदेवसद्मनि भगवान् "कृष्णः" प्रादुरासीत्।

(ग) "स्वाधीनता"-विरहितः क्षितिपतिरपि शुनोऽपकृष्टो भवति।

(घ) परोपकारकरणमेव शरीरस्य 'सारो" मन्यते।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(ङ) "विद्या" विहीनो मनुष्यः पशुरिव गण्यो भवति ।
(च) धार्मिको जनः परान् पीडयन् "धनं" नार्ज्जयेत् ।
(छ) "विद्वान्" जनः सर्वत्र समादरमाप्नोति ।
(ज) सर्व्वे एव प्राणिनः "सुखं" कामयन्ते ।
(झ) गुणविहीनो मानवस्तृणादपि "लघु"-र्भवति ।
(ञ) चण्डालोऽपि भगवद्भक्तो महद्भिः पूज्यः ।

वाच्यपरिवर्त्तनम्

वाच्यपरिवर्त्तनचर्चापि रचनाशिक्षार्थिनां पाटवमुत्पादयतीति तत्प्रणाल्यपि संक्षेपतः प्रदर्श्यते ।

क्रियां कर्म्म च कर्त्तारं कर्म्मकर्त्तृविशेषणम् ।
वाच्यान्तरं कर्त्तुमिच्छुर्विभक्त्या परिवर्त्तयेत् ॥

उदाहरणम्—(१) स ग्रामं गच्छति—तेन ग्रामो गम्यते । (२) स आयाति—तेन आयायते । (३) त्वं ब्राह्मणाय धनं देहि—त्वया ब्राह्मणाय धनं दीयताम् । (४) विपणिं गच्छता मया पथि गङ्गातीरात् प्रत्यागच्छन्त्यौ स्त्रियौ अदृश्येताम्—विपणिं गच्छन्नहं पथि स्त्रियौ अपश्यम् । (५) "परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेद् मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम् ।"—त्वदन्येन केन इव मनोरमा आत्मवधूरिव श्रीः परैः अपहार्य्येत । (६) कटं चिकीर्षन्तं त्वामहं पश्येयम्—कटं चिकीर्षन् त्वं मया दृश्येथाः । (७) स मामदर्शत्—तेनाहमदर्शि । (८) त्वया चन्द्रो द्रष्टव्यः—त्वं चन्द्रं पश्येः । (९) अहं ग्रामं गतः गतवान् वा—मया

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ग्रामो गतः। (१०) त्वया ग्रन्थः प्रणीतः—त्वं ग्रन्थं प्रणीतवान्। (११) अहं कटस्य कारकः—मया कटस्य कारकेण भूयते।

विशेष्यविशेषणयोरन्यतरत्वेन परिणतिः—

१। गतः, गन्ता, गमकः, गम्यः, गन्तव्यः इत्यादीनां गतिः, गमनम्, गमः, गन्तव्यम्, गतम् इत्यादीनि।

२। कार्य्यः, करणीयः, कर्त्ता, कारकः, कृतवान्, इत्यादीनां कार्य्यम्, करणीयम्, कृतिः, कृतम्, कारः, करणम्, कर्म्म, क्रिया, कृत्या, कृतम् इत्यादीनि।

निम्नलिखितप्रणाल्या विशेष्यविशेषणयोरन्यतरत्वेन परिणाम आलोचनीयः।

१। प्रश्नः। पाचक इति पदस्य विशेष्यं किम्?

१। उत्तरम्। पाकः, पचनम्, पक्तिः इत्यादि।

२ प्रश्नः। वाच्य इत्यस्य विशेष्यम् किम्?

२ उत्तरम्। वाच्यम्, उक्तिः, वचनम्, उक्तम्, वाक् इत्यादि।

रचनावैचित्र्यम्

१। शुष्कं काष्ठं तिष्ठत्यग्रे—नीरसतरुरयं पुरतो भाति।

२। भवतो निवासः कस्मिन्?

को नाम देशो भवता वासेन समलङ्कृतः?

३। भवतः किं नाम?

भवन्तं किमभिधानमवैमि?

४। "ज्ञानविशिष्टो नरः पृथिव्यां सुखी" इत्यर्थे एवं वाक्यानि परिणमेयुः—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(क) ज्ञानवान् मानवः खलु जगति सुखसम्पन्नः। (ख) यस्य ज्ञानमस्ति, पृथिव्यां स एव सुखी। (ग) यस्य हृदयकोषो ज्ञानरत्नेन परिपूर्णः, पृथिव्यां स एव सुखी। (घ) यस्य हृदयमन्दिरं ज्ञानालोकेन समुद्भासितम्, क्षितितले स एव सुखशाली। (ङ) इह जगति स एव सुखी, यस्य ज्ञानमस्ति। (च) पृथिव्यां स एव सुखी, यो ज्ञानस्य भाजनम्। (छ) अवनीतले स एव सुखं विलसति, यस्य हृदयकानने ज्ञानकुसुमं विकसति। (ज) जगति स एव सुखी, यस्य चेतोनभसि बोधसविता समुदेति। (झ) येन ज्ञानं लब्धं, पृथिव्यां स एव सुखी। इत्थं रचनावैचित्र्यमालोच्यम्। एतच्च शब्दपरिवर्त्तनेन वाक्यांशपरिवर्त्तनेन वाच्यपरिवर्त्तनेन अलङ्कारयोगादिना च बहुधा सम्भवति।

प्रबन्धा गद्यमयाः पद्यमयाश्च। इह गद्यमया एव कतिचित् नीतीतिहासविषयकाः प्रदर्श्यन्ते।

नीतिविषयकप्रबन्धस्तथा रचयितव्यः, यथा प्रकृतोपयोगी स्यात्, उदाहरणोपन्यासेन समर्थनीयश्चेत् साधीयान् भवेत्।

प्रबन्धः

१। "विद्वान् सर्वत्र पूज्यते।"

२। (अथवा) विद्यायाः किं फलम्?

निखिलमिदं जगत् परिपालयता विश्वस्रष्टा परमेश्वरेण यानि तावत् सत्त्वानि जगति सृष्टानि, तेषु मनुजा एव बहुभिर्गुणैः समलङ्कृताः सर्वोत्कर्षेण प्रतिभान्ति। प्राणिमात्रसुलभः कामक्रोधादि-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रिह न हेतुः, दयादाक्षिण्योपचिकीर्षादिधर्म्मप्रसद्‌गुणावलिरेवात्र कारणतामवलम्बते। अत्र चोक्तम्—

"आहारनिद्राभयमैथुनञ्च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषां विहितो विशेषो
धर्म्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥"

एतद्‌विरहादेव तिर्य्यग्‌जातयो जगत्यश्रद्धेयतया गण्यन्ते। परमगण्यपुण्यपरिणामेन सुदुर्लभमिदं मनुष्यजन्म समासाद्य ये पुनर्नैष्ठुर्य्यापचिकीर्षादिदोषतिमिरैरावृता आत्मभारेण धरित्रीमिमां क्लिश्नन्ति, ते खलु पशुतोऽप्यधमतमाः कीर्त्त्यन्ते। ये च विनयसारल्यसत्यपरायणतापरोपकारित्वप्रमुखगुणरत्नैरलंक्रियमाणा विराजन्ते, त एव मानवमूर्त्ति-परिग्रहं सार्थकीकुर्वन्तो वसुन्धराया रत्नभूता अमरावतारत्वेन परिगण्यन्ते। एतद्‌गुणशालितां प्रति पुनर्विद्यैव हेतुरसामान्यः। उक्तञ्च—

"विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्म्मस्ततः सुखम्।"

ये तावन्मानवाः शैशवसमये स्वेच्छाहारविहारादिस्वगोचरकर्मस्वपि सर्व्वथा परतन्त्रास्त एव प्रायेण परिणामे विद्याप्रभावेण ससागराया अपि धरायाः परिरक्षणाय प्रभवन्ति। एतद्धि विद्यायाः समादरकारणम्। एतस्मादेव विद्वान् जनः सर्व्वदा सर्व्वत्र सर्वैरेव पूज्यते। कुतो वा विद्याया गौरवं सर्व्वदा सर्व्वत्र न स्यात्? यतः शान्तिः समुत्पद्यते, नीतिः प्रसरति, निखिलं तमो विनश्यति।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

किं बहुना ? यामाराध्य धर्मार्थकाममोक्षरूपं चतुर्वर्गमपि मानवा लब्धुमर्हन्ति। ईदृशं किमस्ति जगति, यच्च विद्यया साधनायत्तं न भवेत्। पुराणादिषु प्रसिद्धानामश्वत्थामप्रमुखाणां मर्त्यानाममरतां प्रति किं विद्यैव न निदानम् ? सत्यादियुगजन्मानः कति कति मनीषिणः संख्यातीतं ग्रन्थराशिं प्रणीय "कीर्त्तिर्यस्य स जीवति" इति महाजनवाक्यं सार्थकयन्तः पृथिव्यामद्याप्यमररूपेण विराजन्ते, अत्र किं विद्यामृतेऽन्यत् कारणतमं चकास्ति ? अहो समीचीनमुक्तं मनीषिणा चाणक्येन—"स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते" इति। पश्यन्तु—अस्मद्देशीयास्ते किल पूर्वाचार्य्या व्यासवाल्मीकिकालिदासादयः पारावारपरवासिभिर्विरुद्धधर्म्मपरायणैरपि गुणपरतन्त्रैर्मनस्विभिरधुनापि कतिधा भक्त्या नमस्यन्ते। पाश्चात्त्याश्च सक्रेटिस्-निउटन्-ग्यालिलिओप्रभृतयोऽस्मद्देशीयेभ्यः शिक्षितेभ्यस्त्रैकालिकीं सपर्य्यामाददते। स्मरन्तु—तस्मिंश्च दिवसेऽस्माकं भारतनक्षत्रं वसूपनामा वैज्ञानिककुलचूडामणिः श्रीमान् जगदीशचन्द्रः पाश्चात्त्यजगति सभ्यशिरोमणिभिः कतिविधमभ्यर्च्यमानः प्रत्यावर्त्तत जन्मभूमौ। विद्वांसो गहनमरण्यमधिवसन्तो वनदेवताभिरपि पूज्यन्ते। मणीनामालोकः कुत्र न समुल्लसति ? हिंस्रा अपि जन्तवः शिष्यवद्वशीभूता विदुषः प्रणमन्ति। विद्याप्रभावाद् दहनः सलिलायते, सलिलं दहनायते ; काचः काञ्चनायते, काञ्चनं काचायते ; मूको वावदूकायते, वावदूकश्च मूकायते ; अन्धो दूरदर्शी भवति, दूरदर्शी च तिमिराक्रान्तः। किं पुनरधिकम्, यत्र कुत्रचिदेकत्र वसन्नपि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

त्रिभुवनवृत्तान्तं प्रतिपत्तुमर्हति विद्यया। अधुना तावदस्मद्देशीयानां सर्वथावनतिर्दृश्यते, देशेऽस्मिन् पूर्वाचार्य्या विद्याबलेन यथा कार्य्यजातमसाधयन् तथान्यत्र कुत्रापि केचन साधयितुं नाशकन्। सम्प्रति च पाश्चात्त्या मनस्विनो विज्ञानविद्याबलेन परमाद्भुतविविधयन्त्रजालं समुद्भाव्य जगद्वासिनो मानवान् किमिव विस्मयजलधौ मज्जयन्ति, प्रभवन्ति च कीदृक् सर्वत्र सर्वेषाम्। अहो! यं खलु भारतीयविद्यालवमधिगत्य आरबीयादिपाश्चात्त्यजातय इत्थमभ्युन्नतिसौधशिखरं समारुह्य सम्प्रति परमसौभाग्यसीम्ना भृशं शोभन्ते, तदालोचनाविरहाद्देवालोकमनुष्यत्वाभिमानोच्छ्वसितवक्षसो वयं विलासादिपरवशा अधःपतिताश्च संवृत्ताः, सावज्ञं सर्वैर्वैदेशिकैर्निक्रियामहे न्यक्क्रियामहे च। अस्माभिस्तावत् पूर्वपुरुषनामानि कलङ्कितानि, सर्वथैव वयमयोग्यास्तदन्वयादाविर्भवितुम्। यातु, अलं तदात्मापराधवृत्तस्य फलवर्णनया। विद्यैव सर्व्वशर्म्मणो मूलम्, सर्व्वत्रैव विदुषः समादरः, न कश्चिद् वर्त्ततेऽत्र वितर्कलेशोऽपि। विद्वान् जनः शत्रुसदनमापन्नोऽपि गुरुवदभ्यर्थ्यते। एवं बहुश उदाहरणानि इतिहासेषु दृश्यन्ते। यत् सर्वत्रैव विदुषां परमं गौरवमिति। विद्वांसस्तावद् हस्तामलकवत् सर्वानर्थान् प्रत्यक्षं पश्यन्ति। न हि तान् विपदो मोहयन्ति, सम्पदश्च विक्षिपन्ति। अशिक्षिता यान् भोगविलासादीन् मोहतः परमसुखकारणानि मन्यमानाः समाश्रयन्ते, विद्वांसस्तान् दूरादेव परिहरन्ति। ते च ज्ञानालोकेन तात्त्विकसुखकारणं विनिश्चित्य धर्म्ममार्गमाश्रयन्ते। अज्ञानतिमिरावृता मानवाः खलु प्राकृत-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

घटनावलीः समुदीक्ष्य तत्कारणानि विनिश्चेतुमक्षमाः कुसंस्कार-समाकुलितमनसो भीतिविह्वला विषीदन्ति । मनीषिणस्तु स्वकीय-शिक्षाप्रभावेण तत्कारणानि सम्यक् परिज्ञाय, भक्तिरसार्द्रीकृत-चेतसा जगन्नियामकस्य महीयस्याः शक्तेरसीमतां विभाव्य तस्मिन् समासक्तचित्ताः सुविमलमानन्दमनुभवन्ति । अतो महामहिम-शालिनां विदुषां पूजा सर्वदा सर्वत्रैव भवतीति सुष्ठुतममभिहितं महात्मना चाणक्येन "विद्वान् सर्व्वत्र पूज्यते" इति ।

२ । "अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्त्तते ।"

इह खलु नश्वरे जगति भक्तजनगणवासनासम्पादकं भगव-दनुग्रहं विना केऽपि किमपि कर्त्तुं न शक्नुवन्ति मानवाः । यदिह सम्पद्यते, सम्पत्स्यते, समपद्यत वा, सर्वत्र जगत्कर्त्तुरनुकम्पैव कर्त्तृत्वेन प्रतिभाति । तत्त्वज्ञानविमूढा मानवास्तु वृथाहंकुर्वन्ति । तथाहि—"अहं करोमीति वृथाभिमानः" । किन्तु सत्स्वभाव-सम्पन्न एव मानवः परमेश्वरस्य तामनुकम्पामादातुं प्रभवति । दुःशीलो बहुगुणसमलङ्कृतोऽपि भगवदनुकम्पाया अभाजनतया प्रकृतं किमपि कार्य्यं साधयितुं न क्षमत इति । ये खलु महा-त्मान उन्नतिपदवीमधिकुर्वन्तो जगदर्च्चनीया भवन्ति, तेषां सत्-स्वभाव एव तत्र निदानम् । सत्स्वभावभूषणभूषिता हि मानवाः सकलप्रेमभाजोऽसाध्यमप्याशु साधयितुमर्हन्ति । तेषु सर्व्वे एव विश्वसन्ति, आद्रियन्ते च तान् आपामरं नरेन्द्रावधिका नरजा-तयः । गर्हितश्च स्वभावः सर्वान् गुणान् पराभूय मानवानिह दुःखाकरोति, परत्र चाधःपातयति । अत्र किंवदन्तीयम्—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आसीत् कस्मिंश्चिज्जनपदे सत्स्वभावालङ्कृतः सर्वजनप्रियः सततविविधशास्त्रसमनुशीलननिवेशितचेताश्चन्द्रगुप्तो नाम कश्चिद्-दरिद्रतनयः। स तु बाल्यादेव विविधविद्याध्ययननिरतः सत्स्व-भावतया जगदर्चनीयश्चकाशन्महतीमुन्नतिपदवीमधिरुरोह। तत्र च समधीतसकलशास्त्रोऽपि निकृष्टप्रकृतिकः पुरञ्जयनामा क्रूर-मतिरपरोऽपि कश्चिन्मनुज उवास। स तु कदाचित् साधुजन-समाकीर्णे परस्परद्वन्द्वादिवर्ज्जिते हिंसादिपरिरहिते कुत्रचित् सदसि समुपस्थितः। अथ सदस्यानां तेषां साधुशीलत्वात् तत्रा-वितर्कितमेव स्थानमलभत, ततो बहिः साधुभावं प्रदर्श्य झटित्येव तेषां विश्वासभाजनमभूत्। इत्थमेव कियन्तं कालं तत्र यापितवान्, दुःस्वभावतया त्वचिरेणैव शश्वदनृतप्रवादेन एकचित्तानामपि तेषामन्योन्यमात्मविच्छेदमजनयत्। तेन तु क्रमश एव ते निधनमवापुः। ततः प्रभृत्येव तेषां तत्सदो विलयमवाप। स च स्वाभीष्टं सम्पाद्य स्वावासं प्रत्यागतः। तत्रापि रात्रिन्दिवमेव परेषां भेदचिन्तया व्याकुलान्तःकरणोऽवतस्थे। क्रमेण दुष्टस्वभाव-तया स खग्रातनामा समवर्त्तत। तस्य नाम्नि कीर्त्तितेऽपि साधवः कर्णविवरमङ्गुल्यापिदधुः। केऽपि तं नाद्रतवन्तः। बहुशास्त्रमधीयानस्यापि तस्य स भावः कथमपि न परिवव्रते। उक्तञ्च—“यः स्वभावो हि यस्यास्ते तस्य न स्याद्विपर्य्ययः।” इति। यच्चैतत् शकुनिदुर्योधनादीनां तादृशानामपि वीरवराणां क्षत्रि-येन्द्राणां नामकीर्त्तनमद्यापि सामाजिकान् वैरस्यमापादयति, तत्र च तेषामसच्चारित्रमेव निदानम्। मनुष्यः स्वभावेनैव देववदा-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

द्रियते, स्वभावेनैव पिशाचवदवज्ञायते। एवं केऽपि गुणा न वर्त्तन्ते, ये तावत् स्वभावमभिभवितुमर्हेयुः। अत एवोक्तं मनस्विभिः —"अतीत्य हि गुणान् सर्वान् स्वभावो मूर्ध्नि वर्त्तते।" इति।

३। "धर्मो रक्षति धार्मिकम्।"

इह खलु जीवलोके निखिल एव जीवः सर्वेषु तावद्विषयेषु परमेशानुकम्पां विना नार्हति भवितुं सफलमनोरथः। तत्र तु भगवदनुकम्पायां धर्म्म एव मूलम्। धर्म्मश्च वेदविहितकर्म्म-जन्योऽदृष्टविशेषः। वेदप्रमाणकश्रेयःसाधनकर्म्मरूपो धर्म्म इत्यपि क्वचिद् दृश्यते। अलं धर्म्मलक्षणालोचनया। धर्म्मशब्दे उच्चार्य्य-माणे यद्वस्तु बुद्धिविषयीभवति, स एव मम प्रबन्धावतारणीयो धर्म्मः।

अत्र केचित् सदसद्विवेकधिया क्लेशबहुले शश्वत्परिवर्त्तनशीले संसारे कथमप्यपरिहार्य्यदुःखनिवहानविक्षतचेतसाऽन्तर्निगृह्य यावज्जीवनं धर्म्मवर्त्मनि पर्य्यटन्तः सनातनशर्म्मसमुपलब्धयेऽनुक्षणं खलु यतन्ते। कामादिरिपुगणदमनक्षमाणां सकलहितचिन्तनैक-चित्तानां धर्मात्मनां तेषामनिष्टापातः कदाचिदपि न सम्भवति, न च कुतोऽपि तेषां भीतिरुपजायते, ते हि चिराय निःसपत्नाः सुख-मवतिष्ठन्ते। निखिलैरेव शास्त्रैरशेषाभिः सह युक्तिभिः सर्वैरेव साम्प्रदायिकैः सिद्धान्तितं यत् धर्मादन्यदिह परत्र च श्रेयःसाधनं किमपि नास्तीति, अतो धर्म्म एव मानवानामैहिकः पारत्रिकश्च परमो बन्धुः। तथाचोक्तम्—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

"एक एव सुहृद् धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्व्वमन्यत्तु गच्छति ॥"

बहुशः पुनर्विवेकमूढा आपातमधुरविषयरसलालसया धर्म्म-विरुद्धमविरतमाचरन्तः प्रतिपदमतिमहतीमापदमापद्यमाना अपि न खलु ततः प्रतिनिवर्त्तन्ते । इमे तावत् शास्त्रकृद्भिः पशुरूपेण निर्द्दिष्टाः । तथाच—"आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम् । धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः ।" नच ते प्रतिपत्तुमर्हन्ति—यत्, मणिलिप्सया विषधरशिरसि करार्पणमिव सुखबुभुत्सया अधर्म्ममार्गे सञ्चरणं सद्य एवात्मानं पातयेदिति ।

अहो किमद्भुता शक्तिरधर्म्मस्य । आशीविषादिव पापकृतो जनाद्बिभ्यति मानवाः । नच विश्वसिति कश्चिदधर्म्मपरायणे कुत्रचित् । आपातमधुरं वस्तु निषेव्य रोगीव, धर्म्मविगर्हितं विषयमुपभुज्य चिरमपारदुःखपारावारे निपातयन्नात्मानम्, अकाल एव कालकवलितो भवति विवेकमूढो नरः ।

एकदा रात्रिञ्चरराजाधिराजः पाकशासनस्यापि शासनो रावणः सततमधर्म्मपरवशस्त्रिलोकीमेतामुपपीडयन् यथैव सर्व्वतो ववृधे, तथैव वंशेन समं विध्वंसितो वव्रते । कंसहिरण्यकशिपु-प्रभृतिदनुजनुषामपि तादृशी गतिरभवत् । अतः साधु खल्विद-मुच्यते—

"अधर्मेणैधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति ।
ततः सपत्नान् जयति समूलस्तु विनश्यति ॥"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परन्तु अविचलितचित्तं धर्म्ममेव शरणं कुर्व्वतः सर्व्वदा सर्व्वत्र शिवमुपजायते। अत्र महात्मा प्रह्लादः प्रथममुदाहरणम्। अयन्तावत् पञ्चमवर्षीय एव रात्रिन्दिवं भगवन्नामकीर्त्तनादि धर्म्यं कर्म्म समनुतिष्ठन् निवृत्तान्यव्यापारः संवृत्तः। दानवेन्द्रेण पित्रा हिरण्यकशिपुना क्रमशो यथा निवार्य्यमाणस्तथा स भगवच्चरणारविन्दध्यानादिव्यापारे वर्द्धमानमानसानुरक्तिरवर्त्तत। तदानीं कथमपि धर्माचरणतो निवर्त्तयितुमक्षमो मूढतमो दानवाधिराजः प्रातःस्मरणीयं तमात्मजं हन्तुमेव कृतसङ्कल्पो यावतोऽतिनिष्ठुरानलौकिकान् लोमहर्षणानुपायानकल्पयत्, तावद्भर एव स धर्म्मः साक्षात् परोक्षञ्च नानाविधमूर्त्त्या तत्र तत्राविर्भूय तमनन्याश्रयं बालकमभिररक्ष। धर्म्मैकशरणस्य प्रह्लादस्य प्रभावतो दहनस्य दाहिका शक्तिस्तिरोदधे, निस्त्रिंशस्य तीक्ष्णता निववृते, मदमत्तो मातङ्गवरो वशमापद्यत, शिलाराशिरतूलायत, जलनिधिरपि स्थलप्रतिनिधिरभवत्; किं पुनः पल्लवेन, स्फटिकस्तम्भादपि त्रिलोकभयङ्करः सटासंहतिविकटो दुर्निरीक्ष्योऽद्भुतसृष्टिर्नरसिंहरूपो भगवानवतीर्य्य त्रिजगदिदमकम्पयत्।

अपि च पाण्डुवंशावतंसं धर्मात्मजं युधिष्ठिरमपि धर्म्म एव जतुगृहदाहादि-तत्तद्विपत्परम्पराभ्यः परिरक्षन् ससागराया अपि धरायाः साम्राज्यसुखमुपभोजयन् सशरीरममरपुरमुपनीय संसारदावानलसन्तापादत्रायत। अतः साधु तावत् कीर्त्तितं—"धर्मो रक्षति धार्मिकम्" इति।

४ क। "उद्योगात् किं न सिध्यति"।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

४ ख। "प्रस्तरोऽपि घृष्यमाणः क्षीयते"।

४ ग। "उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः"।

न खलु जगति सर्वेषु मनुजेषु सर्वे गुणाः समभावेन वर्त्तन्ते। केऽपि मेधाविनः, केचन तीक्ष्णबुद्धयः केचिदध्यवसायिनः। बहूनामेतेषां तर्कविद्यायामभिनिवेशो वर्त्तते, विमलकाव्यरसेऽपि नाल्पानां सहृदयानां रसिकता दृश्यते, अनेके च धर्म्मशास्त्रपारदर्शिनः, वेदान्तचिन्तयापि नाना कृतिनो जीवनं सफलयन्ति। केचिद्वाणिज्ये लब्धचातुर्य्याः, विज्ञानविज्ञतयापि सार्थकजन्मानः शतशः शोभन्ते। इत्थं नरजातिषु गुणतारतम्यं परिकल्पयता विश्वसृजा तावदनिर्व्वचनीयं सृष्टिवैचित्र्यं प्रकटितम्। परन्तु कश्चन जनः सर्व्वथा केनापि गुणेन वञ्चितो न खलु निर्म्मीयते परमकारुणिकेन प्रजासृजा। यस्य च यो गुणस्तावदणीयान्, स यदि तदुपचयाय प्रतिनियतमध्यवसायमवलम्बेत, तदा तस्य चरितार्थता कथमपि न प्रतिहन्येत। इह जगति नैवं किमपि विद्यते, यत् पुनरविचलितेनाध्यवसायेन साधयितुं न शक्येत। यस्तावदेकदा स्थूलमतीनामादर्शः, सोऽपि निरन्तरमध्यवसायमवलम्बमानः समयान्तरे मतिमतामग्रेसरतामधिकुर्य्यात्। यस्य वा शक्तिरणीयसी सततचेष्टया तस्य सा शक्तिरवश्यमेव महीयसी भवेत्। अहन्तावत् स्थूलबुद्धिरस्मि, कथमतिसूक्ष्ममतिदुःसाध्यं विषयमिमं सम्पादयेयम्? इति मत्वा ततो निवृत्तिस्तु कापुरुषीया कृतिः। "प्रस्तरोऽपि घृष्यमाणः क्षीयते" इति वाचमनुक्षणं हृदि निधाय—स्थूलमतिरपि चेदविरतमध्यवस्येत्, तदासौ क्रमशो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मन्यते—न तावदयं विषयो वस्तुतस्तथा दुःसाध्यः, यथा मया प्रथमतो निरचायि। कोऽपि सकृत्, कोऽपि द्विः, कोऽपि वा त्रिः, कमपि विषयमनुशीलयन् समादधीत। तत्त्वतः कस्यापि कोऽपि विषयः साधनातीतो न भवेत्। श्रमपराङ्मुखा अलसास्तावदात्मनो मेधाया बुद्धेर्नियतेर्वा दोषमनुकीर्त्तयन्तो ज्ञानरत्नजिघृक्षातो विषयबुभुत्सातो वा विरमन्ति। अत्र किल कोविदगर्व्वपर्व्वतपविर्महात्मा बोपदेवकविः प्रधानतममेकमुदाहरणम्।

अयं खलु बाल्ये व्याकरणमधीयानो दुर्बोधतया स्वकीयां स्थूलमतितामनुशोचन् अध्ययनान्निवृत्तकल्पः समवर्त्तत। सहाध्यायिनस्तु पाठसमापनेन क्रमशश्चरितार्थतामलप्सत। तदानीमध्ययनोदासीनो बोपदेव उपाध्यायेन भृशं तिरस्कृतः सखेदमरण्यमाश्रयत्। अथ तत्र परिभ्रमन्नेकदा श्रान्तिशिथिलशरीरः सलिलाशयमेकमुपसृत्य तस्य सुरम्यसोपानशिलायामुपविवेश। अत्रावसरे कापि कामिनी कुतश्चिदागत्य, कक्षतः कलसमेकं सोपानशिलायां निधाय, विधाय च स्नानादिकं, पयःपूर्णेन तेन पुनः कक्षं भूषयन्ती प्रातिष्ठत।

बोपदेवो विलोकितवान्—तत्र शिलायां कलसनिधानदेशे मण्डलाकारो गर्त्तक एकः संवृत्त इति। अबोधि चासौ—यद् बहुवासरतो बहुशो निहितकलससङ्घर्षात् कठिनतमोऽपि पाषाणोऽयमपचयमापन्नः। तदानीमिदमनुध्यानं बोपदेवीयमन्तःकरणमभिविवेश, यन्मृन्मयस्यापि कलसस्य घर्षणेन चेदस्य पाषाणस्य क्षयइत्यमजनिष्ट, तदा स्थविष्ठापि मम मतिर्मुहुर्मुहुः प्रवर्त्तनया

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तोऽन्यतामापद्येत। मन्ये—तावदहमपि सनिर्बन्धप्रयत्नेन पुनः-पुनरनुशीलयन् दुर्बोधव्याकरणमवश्यमुपलभेय। इत्थमनुध्याय सपदि विद्यालये प्रत्यावर्त्तमानं बोपदेवं परिवर्त्तितमानसमवेत्य महामोदसुग्धमना मनीषिशिरोमणिः स उपाध्यायस्तं भृशमुत्साहयन् परमप्रीतिपूर्व्वकं पुनरध्यापयितुमुपचक्रमे। कियता खलु कालेन गोस्वामिकुलशिरोमणिरयं बोपदेवः समापितपाठो व्युत्पत्तिपराकाष्ठामलभत व्याकरणेषु। तदानीमधीयानो मनस्वी बोपदेवो विवेद—यत् पूर्व्वमतिदुर्बोधतया प्रतिभातं, तदिदानीमप्रतिहताध्यवसायवशादविलम्बं धिषणाया मम विषयीभवतीति।

अहो किमसीममहिमायमध्यवसायः! धन्यो बोपदेवः! धन्यतमस्तस्य सोऽध्यवसायः। यदिदमधुना विन्यास-पारिपाट्यपूर्णमपल्लवितमतिव्युत्पादकमल्पसमयसमापनीयतावदध्ययनं विदग्धसुखमण्डनं मुग्धबोधं नाम विमलं व्याकरणं जगत्यस्मिन् प्रचरति, अस्य खलु प्रणेता स वन्दनीयपदारविन्दो विबुधवृन्दवरेण्यो महात्मा बोपदेवः।

अपिच, "शक्तिशून्यस्तावदहं कथमिदं कर्म्म साधयेयम्" इति मन्यमानस्य तु सुसाध्यापि कृतिरसाध्यतामापद्येत। "अहमवश्यमर्हेयमिदं विधातुम्" इति दृढसङ्कल्पस्य च मनस्विनो दुःसाध्यमपि कर्म क्रमशः सुखेन सम्पद्येत। अत्र चापरमेकमुदन्तमुदाहरामि—

कश्चन प्रबलपराक्रमः पाश्चात्त्यपृथिवीपतिरतिदुर्द्दान्तैर्बहुभिर्वैरिभिर्भृशमाक्रान्तः क्रमेण सप्तकृत्वस्तुमुलसंग्रामं विदधद्विध्वस्ता-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गण्यसैन्यः पराभवमापन्नः। ततोऽसौ निर्विस्मः परिभ्रमन् स्वाधिष्ठानेन काननमलमकरोत्। तदानीं कुत्रचिदहनि वट-विटपितलमुपवसन्नद्राक्षीत्—समीपवर्त्तिनीमश्वत्थमहीरुहतो लम्ब-मानामवनीतललग्नकल्पां कामपि वल्लीमारोढुं कापि पल्लिका सप्तकृत्वश्चेष्टमानापि विफलमनोरथा संवृत्ता, ततश्च सा पूर्ववदुद्यमसास्थाय विहितव्यापारा वल्लीमूर्द्धानमवलम्ब्य सुखमूर्द्धमारुक्षदिति। तदानीमेष मेदिनीशो मनसि कृतवान्—अहो! नमस्याध्यवसायेयं पल्लिका शतशो धन्यवादानर्हेत्, धिङ्मामरण्य-वासिनमुदासीनम्। यातु, अलममूल्यसमयापचयेन? अहमपि नियतमष्टकृत्वः कृतप्रयासः समरमभिनिष्यन् रिपुकुलं समूलमुन्मूलयेयम्। ततः स वनान्निर्गतः स्वदेशमुपेत्य यथाध्यातमनुष्ठाय सिद्धसमीहितः सुखेन सिंहासनमधि रराज राजसिंहः।

इत्थमनेकशो दृष्टान्ता विषयेस्मिन् वर्त्तन्ते। अतः साधु खलूच्यते—"उद्योगात् किं न सिध्यति" इति। (अथवा) "प्रस्तरोऽपि घृष्यमाणः क्षीयते" इति। (अथवा) उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः।" इति।

५ क। आत्मौपम्येन भूतेषु दयां कुर्व्वन्ति साधवः।"

५ ख। अथवा "दयालुर्दैवता साक्षात्।"

५ ग। अथवा "दयैव परमो धर्म्मः।"

दया नाम निरुपाधिपरदुःखापहरणेच्छा, गुणेषु निखिलेषु मनीषिभिरस्या एव परम उत्कर्षः कीर्त्तितः। धर्म्मसञ्चयाय यावन्ति वर्त्मानि वर्त्तन्ते, तावत्सु खलु दया प्रशस्ततमं वर्त्म। दयावान्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मानव एव साधुनाम्ना निर्दिश्यते। मृतोऽप्यमरपदवीमापद्यते। दयावन्तमेव भुवि कल्पद्रुमादिरूपकेण वर्णयन्ति वाग्मिनः। भगवतो मङ्गलमय-नामनिकरेण समं दयावताम्रतुपर्णयुधिष्ठिर-नलप्रभृतीनां पुण्यश्लोकानां नाम संकीर्त्य शर्वरीं सुप्रभातां मन्यन्ते मानवाः।

जगति प्रतिक्षणं कतिशो मानवा जायन्ते, एषु तावत् तेषामेव जन्म सार्थकं भवति, ये महात्मानः परकीयदुःखमात्मन्यवस्थापयन्ति, इतरे तु जननीक्लेशहेतवो धरण्याः सर्वंसहात्वं खलु चरितार्थयन्ति।

परन्तु मानवानामेव मानवा दयन्तां, नायमभिप्रायः परमकारुणिकस्य जगत्पितुः। अस्य प्रीतिं सिषाधयिषुभिः समस्त एव प्राणिनोऽनुकम्पनीया नरजातिभिः। ये च पुनस्तेषु मानवीयामिवानुकम्पामुपजीव्य जीवन्ति, तेषु तावन्निर्दयाचरणमतीवापराधाय कल्पते मानवानाम्। साधवो दुर्बलेषु प्रबलेषु वा स्वस्मिन् परस्मिन् वा सर्व्वत्रैव समदर्शिनो भवन्ति।

पूर्वमिह भारतवर्षे शुद्धोदननामा विशुद्धशीलो नरपतिरेकः समजनि। भगवान् शाक्यसिंहस्तत एव राजसिंहात् सन्तानरूपेणावतीर्य्य जीवनिवहान् परित्रातुमसीममैश्वर्यमुत्सृज्य जगति "अहिंसा परमो धर्म्मः" इति वेदवादं प्रचारयन्नमराणामपि महनीयतामलभत। अयं किल बाल्यत एव कृपापूर्णहृदय आसीत्—क्षोदीयसोऽपि प्राणिनः क्लेशमात्मीयतया मन्यमानो नितरां तापमापत्।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एकदासौ समवयोभिः सममुपवनमुपेत्य विहरन्, देवदत्त-नाम्ना पितृव्यपुत्रेण मानससरसि रिरंसया कुलेन सह प्रयान्तं कलहंसमेकं बाणेन विद्ध्वा धरण्यां निपातितं निरीक्ष्य, क्षतपदात् पतता क्षितितलाच्चोत्सर्पता रजसा जनितेन पङ्केनानुलिप्तं गतासु-कल्पमेनं नयननीरधारया प्रक्षाल्य, तत्क्षणादङ्कमुपनीय च पाणिपल्लवेन मुहुरनुलालयन्, बहुवेलं शुश्रूषया चिकित्सया च पुनर्जीवन्तमुत्प्रेक्ष्य, आत्मानमेव प्रत्यागतप्राणं मन्यमानोऽनि-र्वचनीयमानन्दमनुबभूव ।

अथ "कलहंसोऽयं कस्य स्वत्वमुपलप्स्यते" इति कृत्वा वेधक-सञ्जीवकयोस्तयोर्विवदमानयो राजसभामुपगतयोः सतोः, केनचित् सदस्येन मुनिना "सञ्जीवकः खलु सञ्जीवितस्य स्वामित्वं लभेत" इति सिद्धान्तिते, अनुमोदिते चापरैः शाक्यसिंह एव तं कलहंसं स्वत्वेनोपलभ्य परमां प्रीतिमापेदे ।

अपरञ्च ।—

आसीत् पुरा नर्म्मदातीरवर्त्तिनि धर्म्मपुरनामधेयनगरे जीमूत-वाहनो नाम नृपतिः । स चैकदा निशीथेऽनतिदूरे मुक्तकण्ठं रमणीरोदनमाकर्ण्य पुरपालमादिदेश—पुरपाल ! केयं रमणी तारस्वरमिदं रोदिति ? गत्वान्तिकमस्याः सम्यङ् निरूपयेति । इत्थमादिष्टः पुरपालो रुदतीं रमणीमुपेत्य पप्रच्छ—मातः ! का त्वं, किमर्थं वा रोदिषि ? साकथयत्—भद्र ! अहमस्मि काचित् सर्पजननी, ममाष्ट तनया गरुडेन भक्षिताः, एष एक एवावशिष्टो वर्त्तते ; एनञ्च स नागान्तकहतक उदरसात् कर्त्तुमभिलषति,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ततोऽत्रमाहमित्थं रोदिमि। पुरपालः प्रत्यावृत्य राज्ञे यथाज्ञातं निवेदितवान्। राजा तदाकर्ण्य पुरपालं पुनरादिशत्—पुरपाल! पुनरुपेत्य नागमातरं ब्रूहि—"अहं तस्यास्तनयं वैनतेयात् परित्रास्ये, तया तु तस्मिन्नागमिष्यत्येव ज्ञापनीयोऽहमिति"। ततस्तथा राजकीयामभयवाणीं तामुक्त्वा पुरपाले प्रत्यावर्त्तमाने विलेशयप्रसूत्या विलापेन समं निशीथिनी सा पश्यत एव नृपतेरवसानमवाप। परेऽह्नि वैनतेयमायान्तमुत्प्रेक्ष्य नागमाता विज्ञापितो महात्मा जीमूतवाहनस्तत्र गत्वा बुभुक्षवे नागान्तकाय शङ्खचूडनागविनिमयेन स्वकीयं वपुरुपायनीकृतवान्। खगराजो नरराजमेव शङ्खचूडं मन्यमानो भोक्तुं प्रवृत्तश्चिन्तितवान्—"अहो किमिदमाश्चर्य्यमापतितमद्य, आजन्मनो भुजगान् भुञ्जानोऽहं कदाचिदपि नैवमालोकयम् यदयं चञ्चुपुटेन तुद्यमानोऽपि प्रतिक्षणं हृष्टरोमराजिरामोदित इव विराजते। निवर्त्तेऽहं भक्षणादस्येति" ततोऽशनतो निवर्त्तमाने पन्नगाशने जीमूतवाहनः सविनयमुवाच।—

शिरामुखैः स्यन्दत एव रक्त-
मद्यापि देहे मम मांसमस्ति।
तृप्तिं न पश्यामि च ते महात्मन्
किं भक्षणात् त्वं विरतो गरुत्मन्।

वैनतेयो विनयबहुलां वाचमिमामाकर्ण्य विस्मयमानश्चिन्तितवान्—कोऽयं पुण्यप्रतिमूर्त्तिः पापीयसा मया व्यापाद्यते, अपरे च भक्षणीयाः प्राणिनो मामीक्षमाणा एव पञ्चत्वमापद्यन्ते, अयन्तु

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भक्ष्यमाणोऽपि मुदं तनोति, विशेषतस्तूपवीतकण्ठोऽयमोच्यते, किमहो ब्रह्महत्यायां प्रवृत्तोऽस्मि, कथमपि नास्ति मम निष्कृतिरितो महादुष्कृतात्। अपृच्छच्च तम्—भो महाभाग! को भवान्, किं ब्राह्मणोऽसि? नृपतिरवदत्—नाहं विप्रः, निःशङ्कमुदरसात्करोतु भवान्। गरुडः पुनरवदत्—किमुत क्षत्रियोऽसि? पन्नगाशनं मां कथमात्मानमाशयसि त्वम्! पापीयसोऽन्तिके सम्यक् परिचीयतामात्मा महात्मना। पुण्यात्मा जगतीपालो विहगेश्वरस्य निर्बन्धातिशयेन वशीभूतो बभाषे—वैनतेय! जीमूतवाहननामानं नरपतिं मामवगच्छ। त्वमष्टौ सहोदरान् शङ्खचूडस्य खादितवान्, एनञ्च तथा खादिष्यसीति तज्जनन्या विलापमाकर्ण्य शङ्खचूडस्य रक्षणं प्रतिश्रुत्य कृतसान्त्वनोऽहं तद्विनिमयेनात्मानं भवन्तमाशयितुमारब्धवानस्मि। नश्वरेणैतेन शरीरेण चेदेकस्य सरीसृपस्यापि प्राणा रक्ष्येरन्, तदा सर्व्वथा खलु सार्थकतामहमस्य मन्ये। अथ विष्णुरथः साक्षात् धर्म्मप्रतिकृतिं नरपतिमनेकशो धन्यवादेन स्तुत्वा म्रियमाणं तमालोक्य सद्यः सुरपुरात् सुधामानीय तैरष्टाभिरहिभिः समं तमुज्जीवयामास।

इत्थं बहुशो दयासिन्धवः परदुःखदहनेन दन्दह्यमानमानसा आत्मानं तृणादपि सारशून्यं मन्यमानाः परार्थमनायासमुत्सृज्य अक्षयां कीर्त्तिवल्लीं जगति विस्तारयामासुः।

उक्तञ्च दयामधिकृत्य मुनिभिः—

"न हि प्राणात् प्रियतरं लोके किञ्चन विद्यते।
तस्माद्दयां नरः कुर्याद् यथात्मनि तथा परे॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यस्य सर्वेषु भूतेषु दया नित्यं प्रवर्त्तते ।
न भयं विद्यते तस्य नरस्येह परत्र च ॥
यत् सर्वेष्विह भूतेषु दया कौरवनन्दन ।
नास्ति तत्सदृशो धर्म्मो परत्रेह च शर्मणि ॥"

अलमतिपल्लवेनेति ॥

६ क । "परोपकरणं कायादसारात् सारमाहरेत् ।"

६ ख । अथवा "परोपकाराय सतां विभूतिः ।"

क्षणभङ्गुरमिदं कलेवरं परिगृह्य नररूपेण धरायामवतरन् सततं यथाशक्ति परानुपकुर्वीत । परोपकारो हि परमो धर्म्मः । सन्तः परानुपकृतैरव जीवनमिदं चरितार्थं मन्यन्ते । ये च स्वार्थसिद्धिमननुसन्धाय परोपकारव्रतेन जीवनं यापयन्ति, ते खलु सुमनसः क्षितौ साक्षात् सुमनसः कीर्त्तिता धर्मसंहितासु मुनिभिः । ये पुनः स्वार्थमनुसन्धायापि परानुपकुर्वन्ति, तेऽपि नियतं सार्थकजन्मानो भवन्ति, तेषामपि धर्मः कियान् सम्भवति । परन्तु स्वार्थसिद्धिमनिच्छताञ्च परानुपकुर्व्वतां समयान्तरे विधिना खलु सुमहान् स्वार्थः साध्यते, यतो जगतीह बहव एव मानवाः प्रकृत्या शिक्षादिना वा प्रत्युपकारत आत्मानमनृणीकर्त्तुमीहन्ते, साधुतया च गीयन्ते । संसारोऽयं तावद्दुःखनिकरखनिः । अस्मिन् अविच्छेदेन सुखस्य दुःखस्य वा भोगः कस्यापि भागधेयतो न घटते । तथाहि—यस्तावदिदानीमतुलसुखसागरे मज्जन्मना दृश्यते, स एव क्षणात् परमपारदुःखपयोधौ पतन् प्रत्यक्षीभवति । उक्तञ्च—
"चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ।"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu; Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आत्मनो विपदि यदि परेषामानुकूल्यं लिप्सति, तदा तेषामपि विपदि समवेदितां प्रदर्श्य यथाशक्ति साहायकं विधेयम्। कथा चेयं लोके प्रचरति—"अहं खलु गलं यावत् पयसि त्वदर्थमवातरम्, त्वं पुनर्मदर्थं पादैकमात्रे पयसि च नावातरः, कथं तव विपदि समवेदितामहं प्रदर्शयामि" स्वार्थपरस्य निष्ठुरप्रकृतेस्तावत् कोऽपि न दयते। अतो यथावसरमितरेषामुपकृतिरवश्यं विधेया। असारात् खलु संसारात् परोपकरणरूपं सारमाहर्त्तुमविरतमेव नरा यतेरन्। उक्तञ्च—

"परोपकाराय सतां विभूतिः।" एवं "दानं वित्तादृतं वाचः कीर्त्तिंधर्मौ तथायुषः। परोपकरणं कायादसारात् सारमाहरेत्॥" इत्यादि। सन्तः परोपकृत्यै सर्व्वस्वं प्राणानपि तृणाय मन्यन्ते। तथाहि—

एकदा राजाधिराज उज्जयिनीपतिर्महात्मा विक्रमादित्यः सचिवेषु विश्वम्भराभारं विन्यस्य सन्न्यासिवेशेन देशान्तरमगमत्। पर्य्यटतस्तस्य कदाचित् काननान्तरालमधितिष्ठत एव भगवान् मरीचिमाली जगदिदमन्धकाररात्रिञ्चराय समर्प्य लोकान्तरमभिप्रतस्थे। महीपतिस्तदानीं कस्यचिन्महीरुहस्य तलदेशमध्यतिष्ठत्। शाखायां तस्य तु चिरञ्जीविनामा कश्चित् वर्षीयान् विहगराजोऽवतिष्ठते स्म। तस्य पुत्राः पौत्राश्च नानादिग्देशं पर्य्यटन्तः स्वोदरं परिपूर्य्य सर्व्वे एव प्रत्येकमेकैकं फलमादाय सायं तस्मै चिरञ्जीविने प्रतिदिनमर्पितवन्तः। यतः—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

"वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्य्या सुतः शिशुः ।
अप्यकार्य्यशतं कृत्वा भर्त्तव्या मनुरब्रवीत् ॥"

अथ निशायां प्रवृत्तायां स वर्षीयान् विहगराजः सन्तानसमवायैः सममतिसुखमासीनस्तान् विदेशसमायातान् विहगानपृच्छत् । पृथ्वीपालोऽपि पादपतलपुञ्जीकृतपत्रतल्पस्तद्वचनप्रतिवचनचयमाकर्णयितुमुपचक्रमे ।—"भो भो वत्साः ! युष्माभिर्नानादिग्देशं पर्य्यटद्भिः कुत्रचित् किमपि चित्रं चाक्षुषीकृतम् ? तदानीं केनचिद् विहगेन सविनयमवादि—तात ! मयाद्य किमपि चित्रं दुरदृष्टतो न दृष्टम्, चेतसि मे महदेकं दुःखमुपतिष्ठते । चिरञ्जीवी सोत्कण्ठमवोचत्—कथय वत्स ! किमद्य कारणं तव दुःखस्य ? केन तव किमपचितम् ? अपि कस्यचित् किञ्चिदपराद्धमजानता ? यूथच्युतेन त्वया कुत्रचित् कदध्वनि त्रासास्पदे वा देशे किमपाति ? स कथयामास—तात ! कथनेन पुनः फलं किमुपपद्यते । वर्षीयानवदत्—वत्स ! अन्यत् किमपि फलं सम्भवति न वा, दुःखं हि स्निग्धजनसंविभक्तं सह्यवेदनं सम्भवति, ततो विहगोऽयमवदत्—श्रूयतां तावत्तातपादैः—

अस्ति किलोत्तरस्यामाशायां शैबालघोषो नाम सुमहान् शैलः । समीपे च तस्य पलाशनाम नगरम् । तं शैलमधिवसन् कश्चिद् रात्रिञ्चरः प्रतिवासरं नगरमिदमागत्य सम्मुखागतं कञ्चन मानवमादाय शैलं नीत्वा भक्षयति । एकदा नगरवासिभिर्मन्त्रयित्वा, स राक्षस उक्तः—भो राक्षससिंह ! त्वमित्थं यथाप्राप्तं मानवं मा खादीः । वयमेव प्रतिवासरं भवते मानवमेकमाहारार्थमर्पयेम ।"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

राक्षसस्तेषामितद्वचनमङ्गीकृतवान् । अनन्तरं तत्रत्या मानवाः सर्वे सम्भूय व्यवस्थया गृहक्रमेण प्रतिवासरं तस्मै मानवमेकमुपायनी-कुर्व्वन्ति । आबहुकालं लोमहर्षणकल्पोऽयं व्यापारः प्रचलति । अद्य मम मित्रस्य ब्राह्मणस्य गृहे पर्य्यायः समागतः । अस्य त्वेक एव पुत्रः, तस्मिन् दीयमाने वंशनाशो भवेत्, आत्मनि दीयमाने भार्य्याया वैधव्यं घटेत । इदमापतितमात्मीयव्यसनमवेत्य नितरां विषीदामीति । तस्य विषादवचनमाकर्ण्य पितृभ्रातृव्यप्रभृतयो निखिला बन्धवो विहगाः समवेदितां प्रदर्शयन्त आहुः—अहो एष एव तत्त्वतः सुहृत्, धार्मिकश्च, यस्तावत् सुहृदो विपदि दुःखायते ।

कृपासिन्धुरुज्जयनीपतिः पतत्रिणोक्तं तमुदन्तमाकर्ण्य तत्-क्षणमेव पलाशनगरे गत्वा ब्राह्मणमभयवाक्प्रदानेनानुकम्प्य स्वयं तत्र वध्यशिलायामुपाविशत् । ततो यथासमयं राक्षसस्तत्र समा-गत्य सस्मितवदनं पुरुषसिंहं वध्यशिलामलङ्कुर्व्वन्तमालोक्य विस्मयविस्फारितनेत्रस्तमवादीत्—"भो महासत्त्व ! को भवान् ? आत्मा परिचीयताम् । ये ये नराः पूर्व्वमस्यां वध्यशिलायामुपविश्य मामवैक्षन्त, ते सर्वे मदागमनात् पूर्व्वमेव प्राप्तपञ्चत्वा अदृश्यन्त । त्वन्तु प्रसन्नवदनो महाधैर्य्येणावतिष्ठसे । मुमूर्षुश्च निश्चेतनेन्द्रिय-गणः प्रतिक्षणं रोमाञ्चितो वेपथुमान् भवति । त्वयि तावद्वैपरीत्यं पश्यामि, तत्कथय—कस्त्वमिह समागतोऽसीति । धर्म्मप्रतिकृति-र्नरपतिरवदत्—किमिदानीं परिचयेन, विचारं विहाय पूर्य्यता-मविलम्बमात्मनः समीहितम् । मया ननु परप्राणान् रिरक्षिषुणा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नियतमिदमध्यवसितम् । तदा रात्रिञ्चरः क्षपावचनमिदं निशमय्य चिन्तितवान्—अहो महीयानयं पापीयसो मे दृष्टिविषयतामापन्नः, सकलसम्पत्साधनं देहमिदं तृणाय मन्यतेऽयम् । साधूनां लक्षणमेवैतत्, उक्तञ्च—

"त्यक्तात्मसुखभोगेच्छां सर्व्वसत्त्वगुणैषिणः ।
भवन्ति परदुःखेन साधवोऽत्यन्तदुःखिनः ॥"

ततो नरपतिं प्राह—भो महासत्त्व ! परप्राणान् रिरक्षिषुरात्मप्राणानकातरं वितरन् भवानेव जगति श्लाघ्यतमजन्मा मानवदेवः । अथवा परोपकारतत्पराणां साधीयसां भवादृशामेतन्नैव चित्रम् । तथाहि—

"चित्रं किमत्र यत् सन्तः परानुग्रहतत्पराः ।
नहि स्वदेहशैत्याय जायन्ते चन्दनद्रुमाः ॥"

महात्मन् ! दयाप्रतिमूर्त्ते ! सन्तुष्टोऽस्मि भवतोऽनेन महामहिमप्रकाशेन, व्रियतां तावदभीष्टम् । भूपतिरवदत्—भो वरद ! मयि प्रसादपातश्चेदद्यप्रभृति मनुष्यमांसलोलुपता परिहीयताम् । निशम्यतां किल मुनिवचनम्—

"प्राणा यथात्मनोऽभीष्टाः परेषां प्राणिनां तथा ।
तस्मान्मृत्युभयात्तेऽपि त्रातव्याः प्राणिनः सदा ॥
मरिष्यामीति यद् दुःखं प्राणिनामुपजायते ।
शक्यते नानुमानेन तद्वक्तुं केनचित् क्वचित् ॥"

नरपतिनैवमुक्तो राक्षसस्ततः प्रभृति नरमांसेनोदरपूरणलिप्सा-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ममुञ्चत्। पुण्यप्रतिकृतिर्नरपतिरपि राजधानीमुज्जयिनीं पदपङ्कजरजसा पुनानः पूर्व्ववदराजततमाम्।

उक्तञ्च धर्म्मशास्त्रे परोपकारमधिकृत्य—

"परोपकारनिरतो नरो यस्तु प्रजायते।
स इह श्रियमाप्नोति परत्रापि परं पदम्॥" इति।

७। "लोभ एको महान् रिपुः।"

लोभो गृध्नुता, विषयेषु न्यायविगर्हिता प्रवृत्तिरिति यावत्। लोभोऽयं मानवानामतिभयङ्करो महानजेयो रिपुः। अस्य मूर्त्तिः शक्तिः कृतिश्च सीमानमतिक्रान्ताः। अयं हि मानवानां मनोमन्दिरं प्रविशन् शनैः शनैरनिर्व्वचनीयमुपचयमापन्नः प्रलयमूर्त्तिमवलम्बते। यथा दहनकणः कस्यचिद् गृहस्य प्रथमतः कमपि लघीयांसमवयवं संस्पृश्य क्रमेण तस्य वस्त्ररत्नादिभिः समं सर्व्वानवयवान् कवलीकृत्य शनैः शनैः सन्निकृष्टं ततो विप्रकृष्टं गृहं दहन् तन्नगरमेव परमङ्गारशेषं करोति। लोभोऽपि तथा लेशात्मना लोकविशेषस्य हृदयं प्रविश्य, क्रमेण सद्गुणनिकरैः समं तं निपात्य, ततस्तद्बन्धुव्रजं ततस्तत्प्रतिवासिगणं ततस्तत्समाजमेव तावदुत्सादयति।

शोकतापनिवारिणी शान्तिः, सर्व्वसुखनिदानं सन्तोषश्च लोभपराधीनं स्वप्नेऽपि नात्मानं दर्शयेते। प्रचुरं धनं जगद्व्यापिनीं कीर्त्तिवल्लीं महतीञ्च प्रभुतामुपलभ्यापि न खलु लुब्धकः परितृप्यति; तस्य मनोरथः पूर्य्यमाणो भवन्नपि पुनर्वर्द्धते। कदापि तस्य लालसा सीमानं न लप्स्यते। तथाहि, मन्यतां—कस्य-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चिन्नाम—रामः, कस्यचित्—श्यामः, कस्यचिच्च—कृष्ण इति। अथ रामो यदि श्यामस्य मनोरमसंशुकमालोक्य ग्रहीतुं लोभते, तदात्मसात् कर्त्तुं स कतिविधानुपायानवलम्बते, ततो दैवतस्तत्र यावत् पूर्य्यमाणाभीष्टस्तावदेव पुनः श्यामस्याङ्गुरीयकेण निजामङ्गुलीमलङ्कर्त्तुमध्यवस्यति, अथवा कृष्णस्य छत्रं कामयते। इत्थं क्रमशो रामस्य लोभो विराण्मूर्त्तिमवलम्बते। लज्जा रामादन्तर्द्धत्ते, भीतिरेनं मुञ्चति, धार्मिकता मानसादस्य दूरमपसरति, हिताहितबोधो निद्राति, आभिजात्यं कलङ्कजलधौ निमज्जति, शास्त्रानुशीलनं बन्ध्यतया परिणमति। उक्तञ्च नीतिशास्त्रे—

"लुब्धः कार्य्यमकार्य्यं वा न कीर्त्तिं निरयं न च।
न धर्म्मं चापि वाधर्म्मं वेत्ति नैव हिताहितम्॥

ततो रामं तस्करता दस्युता च क्रमशोऽधिवसति। गोहत्यायां स्त्रीहत्यायां ब्रह्महत्यायां वा कुत्रापि न तावदयं पराङ्मुखोभवति, लोकापवादस्तु शिरस्य इव चिरस्य शिरसि सम्बद्धो वर्त्तते। भागधेयमस्य यावज्जीवनं जीवनान्तं वा राजदण्डं घटयितुमर्हत्येव, इतरथापि प्रतिपदमस्य मूर्त्तिमती विपदवतिष्ठते।

अन्यच्च, आहार्य्येषु वस्तुषु लोभपरवशो हि नितरां क्लेशमनुभवति। तथाहि—सुस्थोऽपि अपथ्यमपरिमितं वा भुञ्जानो नानाविधरोगैराक्रम्यते, तेन च दुःसहः क्लेशो जायते, परञ्च मृत्युरपि ततः सम्भवत्येव। रसनातृप्तितत्परस्य च धर्म्मविगर्हितमाचरणमनेकशो घटते, निरपत्रपतापि नियतं तत्र पदं निधत्ते। निरयस्य प्रतीहारस्तं प्रवेशयितुमपावृतः खलु वर्त्तते। वनितादौ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लोलुपस्यापि एवमेव तावदवस्था परिणमति। बलीयांस इन्द्रिय-मातङ्गा यावद्विषयान् भुञ्जते, तावन्माद्यन्ति, कदापि ते विषयेषु प्रवर्त्तनया न खलु दमनीयाः। विषयाणामुपभोगेन कदापि लोभो न शाम्यति, परन्तु वर्द्धतेतमाम्। उक्तञ्च भगवता श्रीकृष्णेन सखायमर्ज्जुनं प्रति—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते॥"

कविवाक्यञ्च—

निःस्वो वष्टि शतं शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपो
लक्षेशः क्षितिपालतां क्षितिपतिश्चक्रेशवत् सम्पदम्।
चक्रेशः पुनरिन्द्रतां सुरपतिर्ब्रह्मत्वमाकाङ्क्षति
ब्रह्मा विष्णुपदं हरिर्हरपदं लोभावधिं को गतः॥

अपरञ्च—दृश्यताम् कतिशो वणिजः प्रचुरतरलाभलोभेन लुप्तविवेका वाणिज्यं विधाय नष्टसर्वस्वा भवन्ति। कतिशश्च उत्तमर्णाः प्रवृद्धकुसीदलोभपरवशा हृदयरुधिरनिभैरर्थैरधमर्णाना-मञ्जलिमलङ्घ्य परमसीमसन्तापमनिशमाप्नुवन्ति। राजानश्च बहुशो लोभ-दानव-मायामुग्धा महतीमापदमापद्यन्ते। इह किल कुरुकुलधुरन्धरो धराधीश्वरो दुर्य्योधनः प्रधानतममेकमुदाहरणम्। तथाहि—यदा पाण्डवा धार्त्तराष्ट्राश्च मिथो विवदमाना दिवा-निशमशान्तिशिखया दन्दह्यमानमानसा अभवन्, तदा भगवता देवकीनन्दनेन मध्यस्थतया समागत्य, पञ्चभ्यः पाण्डुनन्दनेभ्यः पञ्चानामेव ग्रामाणां प्रदानेन सन्ध्यर्थमनुरुद्धो धार्त्तराष्ट्रकुलनायको

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दुर्य्योधनः, प्रबललोभलुप्तविवेकः सगर्व्वमवोचत्—"सूच्यग्रेण सुतीक्ष्णेन भिद्यते या तु मेदिनी। तदहं नैव दास्यामि विना युद्धेन केशव॥" इति। ततः प्रवृत्ते तस्मिन् त्रिलोकभीषणे कुरुक्षेत्रसमरे सबन्धुसंहतिरगण्यसैन्यसमेतः स लोभकिङ्करः शमन-सद्मन आतिथ्यमग्रहीत्।

एवं बहुशः खलु दृष्टान्ता वर्त्तन्ते पुरातना अधुनातनाश्च लोभमधिकृत्य। नहि तेषामास्पदमर्हति भवितुमयमस्मदीयः क्षुद्रतमः प्रबन्धः। कामादयोऽपि मानवानामरातिनाम्ना निर्द्दिश्यन्ते, ते च नियतं मानवानधिवसन्ति, लोभस्तु सर्व्वांस्तानतिशेते। तथाहि—युधिष्ठिरं प्रति भीष्मवचनम्—

पापस्य यदधिष्ठानं तच्छृणुष्व नराधिप।
एको लोभो महाग्राहो लोभात् पापं प्रवर्त्तते॥
लोभात् क्रोधः प्रभवति लोभात् कामः प्रवर्त्तते।
लोभान्मोहश्च माया च मानः स्तम्भः परासुता॥
अत्यागश्चातितर्षश्च रूपैश्वर्य्यमदस्तथा।
सर्व्वभूतेष्वभिद्रोहः सर्व्वभूतेष्वसत्कृतिः॥
सर्व्वभूतेष्वविश्वासः सर्व्वभूतेष्वनार्ज्जवम्।
अक्षमा ह्रीपरित्यागः श्रीनाशो धर्म्मसंक्षयः।
अभिध्या प्रख्यता चैव सर्व्वं लोभात् प्रवर्त्तते।

अतएव मनीषिभिरुच्यते—"लोभ एको महान् रिपुः।" इति।

८। "आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः।"

आलस्यं खलु उत्साहराहित्यमुच्येत। उत्साहश्च—"कार्य्या-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते।" इत्युक्तलक्षणः। करिष्यामि करिष्यामीति कृत्वा समुचितसमयातिपातः सत्यामपि योग्यतायां कर्मणामनारम्भश्च इत्यादिस्तावदलसताया व्यापारः। आलस्यमिदं मनुजानां महदनिष्टं घटयति। संसारोऽयं कर्म्मभूमिः। विश्व-सृजा हस्तपदादिमयं शरीरमिदं कर्म्मार्थमुपकल्पितम्, येनावयवेन यन्निष्पत्तुमर्हति, तेन तदनिष्पाद्य प्रतिपदं विपदमापद्यते मानवः। यानि च कार्य्याणि जगतीह अवश्यकर्त्तव्यानि, यानि च तेषामुपकरणानि सर्व्वाण्येव तानि करुणामयेन विश्वसृजा सुकल्पितानि तैस्तैरुपकरणैस्तेषां कर्म्मणां सम्पादनं विश्वपितुः सम्मतं प्रीतिकरञ्च। निरुद्योगो लोकस्तु तदन्यथाचरणेन जगत्पितुरन्तिकेऽपि महदपराध्यति। आलस्यपरवशतया शैशव-समये शिक्षाविरतस्य यस्तावदनुतापानलो दिवानिशं मर्म्मणि ज्वलति, चितानलेन समं मिलनं विना कथमपि नायमुपशाम्येत्। यौवने हि धनोपार्ज्जनं गृहस्थधर्म्मदोचितस्य चतुर्वर्ग-सिद्धि-निदानं, तस्य निरुद्युञ्जानस्य प्रतिपदं दारिद्र्यदानवेन हृदयं विदार्य्य पीतशोणितस्य जीवनमेव मरणं, मरणन्तु शान्तिसुधा-वृष्टिः। तृतीयायाञ्च दशायां पदमर्पयन्नपि धर्म्ममर्ज्जयितुमुदासीनो-ऽगृहीतपाथेयः परदेशे प्रस्थितो यां दशामुपभुङ्क्ते, तस्यामनु-ध्यायमानायां तनूरुहराजिरिव हृष्यति, तनुस्तु नितरां कम्पते।

अपिच—आलस्यपरवशः खलु सर्वेन्द्रियसम्पन्नोऽपि अनिर्व्वच-नीयेन स्वाधीनताप्रसूतेन चिरं वञ्चितोऽवतिष्ठते सुखेन। परमुख-मपेक्षमाणस्यैव तस्य सुदुर्लभं जीवनमिदमनवच्छिन्नदुःसहदुःख-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

धारया भृशमभिभूयमानमतिवहति। क्षुधानलशिखया धमनीभिः समं जठरे दन्दह्यमानेऽपि भक्षणीयसंग्रहे हतभाग्य उदास्ते। कण्ठविवरे पिपासया शुष्यत्यपि पादमेकं प्रक्षिप्य पानीयं नाकलयति। मनीषादिनिखिलसाधनसमेतोऽपि कदाचिद्दिनानि गणयन्, कदाचिच्छिरोवेदनामभिनयन्, कदाचित् पादरुजामुपकल्पयन्, कदाचिदग्निमान्द्यमाशङ्कमानः, कदाचिन्मस्तिष्कविकृतिं सम्भावयन्, कदाचिच्च पठिष्यामि पठिष्यामीति कृत्वा समयं क्षेपयन्, विमलं ज्ञानरत्नमधिकर्त्तुं नार्हति निरुत्साहो हतश्रीः। शरीरं रोगरहितं बलिष्ठञ्च, शिक्षापि सर्व्वथा कार्य्योपयोगिनी, सहायोऽपि महीयान्, तथापि आलस्यमात्रजडीकृततया धनोपार्ज्जनाय न खलु यतते मन्दभाग्यः। गृहस्थो नररूपस्थाणुरयं पुत्रकलत्रादिभिरपि परिजनैरविरतं तिरष्क्रियते। "भरणं पोष्यवर्गाणां प्रशस्तं स्वर्गसाधनम्।" "वृद्धौ च मातापितरौ साध्वी भार्य्या सुतः शिशुः। अप्यकार्य्यशतं कृत्वा भर्त्तव्या मनुरब्रवीत्॥" इत्यादिका विधिवाणी विदुषोऽलसस्य वदन एव विलसति। आलस्यं लवमात्रमपि महदनिष्टमुत्पादयितुमलं भवति मानवस्य। कियत् कियत् आलस्यफलमनेकैरेव प्रायेणोपभुक्तम्। "श्वःकार्य्यमद्य कर्त्तव्यं पूर्व्वाह्णे चापराह्णिकम्। नहि प्रतीक्षते मृत्युः कृतमस्य नवा कृतम्॥" इत्यादि मुनिवाक्यमनादृत्य, अद्य तावदिदं तिष्ठतु श्वस्तने तत्परस्मिन् वा दिवसे कर्त्तव्यमिदमिति कृत्वा उपेक्षितं कर्म्म समयान्तरे सम्पादयितुमक्षमाणां बहूनामेव भागधेयमसहनीयमनुतापं घटयति।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कुलाध्यापक

आलस्यस्य महाशत्रुत्वञ्च सर्व्वथा प्रमाणितम्। तथाहि—अनिष्टहेतुः पदार्थ एव शत्रुसंज्ञयाऽभिधीयते, एतच्च शत्रुतालक्षणमालस्ये यथा संलक्ष्यते, तथा नान्यत्रेति। तथाहि—कोऽपि विरोधेन, कोऽपि निन्दया, कोऽपि वित्तानामात्मसात्करणेन, कोऽपि पदाधिकारेण, कोऽपि राज्याक्रमणेन, कोऽपि वा प्रहारादिना ऐहिकेनैव येन केनचिद्विषयेण कं प्रति वैरायते, परन्तु तस्य वैरिणो वासस्थानं—देशान्तरं, ग्रामान्तरं गृहान्तरमासनान्तरं वा सर्वं भिन्नाधिकरणमेव दृश्यते। आलस्यवैरिणोऽवस्थानन्तु नैव देशान्तरे, नैव ग्रामान्तरे, नैव गृहान्तरे, नैव चासनान्तरे, परन्तु जगतः प्रेयसि चतुर्वर्गफलभोक्तरि परिचयानर्हे आत्मन्येव। अपरश्च शत्रुः स्वं स्वमभीष्टं वित्तप्रभृतिकमैहिकमेव वस्तुजातमात्मसात् विधाय समये विरमति, आलस्यं नाम शत्रुस्तु मानवान् सर्व्वकर्म्मानर्हीकृत्य ऐहिकादामुष्मिकाच्च निखिलादर्थात् सर्वात्मना वञ्चयति। अतः साधु खलु कीर्त्यते महात्मभिः—"आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महारिपुः।" इति।

अत्र च श्रुतमेकमलसोपाख्यानमनुदाहृत्य, न खलु लेखनीमवसरं लम्भयितुमलमस्मि। तथाहि—पूर्व्वमिह भारते सर्व्वंसहामण्डलमनुशासतां यवनसम्राजां बहुविधा कौतुकसामग्री संगृहीतावातिष्ठत। तदानीं केनचिद् यवनचक्रवर्त्तिना चित्तविनोदनाय समन्तादनुसन्धाप्य शतशोऽलसान् सङ्कलय्य राजधानीं निकषा अलसशाला संस्थापिता। अलसास्तत्र सम्राजः प्रसादात् नानाविधापूर्व्वभोगैः पूर्णोदराः परमसुखमयापयन् समयान्।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तदानीमलसानामेवमिष्टलाभमाकर्ण्य बहवो धूर्त्ताश्च आलस्यमभिनयन्तः अलसशालायां प्रविश्य विनायासमुदरमपूरयन्। इत्थमतिवहति कतिथे काले कृत्रिमालसा अलसशालां प्रविष्टा इति सम्राडबुध्यत, प्रावर्त्तयच्च ततस्तावतामलसानां परीक्षणमलसाध्यक्षमादिश्य।

एकदा कतिचिदलसान् शिविकया वाहयन् नगराद्बहिः स्थिते पर्णकुटीरे अवस्थाप्य परीक्षितुमारब्धवानलसाध्यक्षः। क्रमेण चायं बहुधा परीक्ष्यापि सन्देहदोलामधिरोहन् कुटीरस्य कोणचतुष्टयं हुताशनशिखा-संलग्नमकरोत्। क्रमशस्तूर्द्ध्वतनानवयवानभिजाज्वल्यमाने ज़ातवेदसि धूर्त्तास्तावत् सद्यः पलायितुमारेभिरे। पश्चादीषदलसा अपि दुद्रुवुः। ततोऽवशिष्टेषु पञ्चसु द्वावन्योन्यमालेपतुः—भद्र! कुतोऽयं कोलाहलः? एकतरः—कुटीरमिदं कृशानुना कवलितमिति शङ्के। अन्यतरः—किमेवं धार्म्मिको देशमिमं नाधिवसति? यस्तावदार्द्रकन्थामस्माकमङ्गमभि स्तास्तृणीयात्? क्रमेणैतावपि द्वौ प्रतस्थाते; अवशिष्टाश्च त्रयः, ततो नररूपाणां तेषां जरद्गवानामन्यतमः सन्तापमसहमानः कृच्छ्रेण गजनिमीलनं कुर्व्वन् अकथयत्—कति रवयो ज्वलन्तु? तदाकर्ण्य अपर आह—को वा चक्षुरुन्मीलति? तृतीयो विरक्त इवानुच्चैरवदत्—शनैः शनै कथय कथां, वायुर्यथा न वर्द्धेत। अलं बाहुल्येनेति।

८। "सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता।"

महतां महत्त्वं खलु महाविस्मयकरमेकमनिर्व्वचनीयं वस्तु;

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यस्तावत् अणोरणीयान् महतो महीयान्, तस्य महतीमनुकम्पामृते आब्रह्मकीटपर्य्यन्तेषु जगत्सु कोऽपि न गुणमिममधिकर्त्तुमर्हति। अस्यैव गुणरत्नस्य प्रसादतः सजातिषु विजातिषु वा सर्वेषु जगत्सु वा पूजनीयतामापद्यन्ते मानवाः। परन्तु सम्पद्विपदोः समवर्त्तिता महतामेकमसाधारणं-लक्षणम्। इतरे हि आपातसुमधुरां परिणामहलाहलमल्पीयसीमपि सम्पदमासाद्य स्फीतवक्षसः साधुसमाजं तृणाय मन्यन्ते, पश्यन्ति च धरामिमां शरावम्। विपदा तु ते लवमात्रयैव नितरामभिभूयमाना वेपथुमद्वपुषः 'हा हताः स्म' इति ब्रुवाणा अधोवासः क्लेदयन्ति। प्रतिचिकीर्षा च तेभ्य उदीयमानापि बन्ध्यायते। महान्तश्च रत्नाकररसनाया वसुन्धराया असापत्नं साम्राज्यसुखमुपभुञ्जाना अपि सततमात्मानमनिशं निश्चिन्वाना न खलु मत्ततया स्पृश्यन्ते, विपदपि तान् कियदुद्वेजयितुं न प्रभवति। जलधय इव ते कदापि सीमानं नातिवर्त्तन्ते। बहिरन्तर्वा कुत्रापि तेषां कापि विकृतिर्नाविर्भवति। महतां महत्त्वमचलमच्छलं विराजते। सरित्पतिः सरित्सहस्रैर्मिलितोऽपि न प्यायते, नच निदाघप्रखरमिहिरकरसहस्रेणाकृष्यमाणोऽपि च्युतो भवति गाम्भीर्य्यात्। उदीयमानस्य चास्तमापद्यमानस्य च दिनमणे रागो न खलु भेदमुपैति। नीरसोऽपि चन्दनतरुरपचितसौरभ्यो न भवति। छायातरुश्छेद्यमानोऽपि न हीयते कदाचिदाश्रितवात्सल्येन। कलानिधिः कवलितशकलोऽपि तमसा न खलु विस्मरति परोपकरणव्रतम्।

अतः सर्वैरेव सततमिदं मनसि समावेश्य प्रवर्त्तितव्यं यत्,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सम्पद्विपच्च नियतं परिवर्त्तेते। संसाररङ्गमञ्चे नररूपेण नानाविधं नटद्भिः स्वकृतकर्म्मणां गुणदोषयोः प्रतिफलरूपे परमानन्दमयस्य विश्वपितुः सकाशादबाधं लब्धव्ये पुरस्कारतिरस्कारात्मिके सम्पद्विपदौ समासाद्य, यथाक्रमं क्षमा धीरता च यष्टी यथावसरमवश्यमवष्टम्भनीये। एवं प्रवर्त्तमाना एव सम्पद्विपदोरविकृतात्मानो भवितुमर्हन्ति, लक्षणञ्च महतामेतदेव। अन्यथाचरतान्च स्खलनं सर्व्वस्वध्वंसनञ्च ध्रुवमनिवार्य्यमिति।

महत्प्रसङ्गे प्रस्तूयमाने च महासहिमसहागिरयो राम-युधिष्ठिर-हरिश्चन्द्र-नल-श्रीवत्सप्रभृतयो भारतनभोऽस्तमितभास्करा भारतीयानां मानसक्षेत्रमभ्यापतन्त्येव। परन्तु तावतां चरितेन लघीयानयं प्रबन्धो न खलु पूर्य्येतेति एकस्य तावत् महात्मनो हरिश्चन्द्रस्य चरितं संक्षेपेणोदाहृत्य प्रबन्धमात्मानञ्च पिपविषुरस्मि।

आसीत् पूर्व्वं वैवस्वतवंशावतंसः सार्व्वभौमः पुण्यकीर्त्तनो हरिश्चन्द्रो नाम नरपतिः। स एकदा मृगयार्थमरण्यदेशमलङ्कुर्व्वन् शरणापन्नमार्त्तमबलात्रयं कठिनकरबन्धनान्मोचनेनानुकम्प्य जाज्वल्यमानतपःपावकस्य महर्षेर्विश्वामित्रस्य रोषारुणितायां दृष्टि पपात। राजर्षिस्तदानीमात्मनः सीमातिगशौर्य्यवीर्य्यसाम्राज्यानि विस्मरन् महर्षिमुपसान्त्वयितुमुपचक्रमे। विफले च विनयवचने आत्मानमात्मजं सहधर्म्मिणीञ्चान्तरा धनजनसाम्राज्यादि निखिलमेव तदतुलं स्वस्वत्ववद्वस्तु शपमानाय महर्षये समर्पयतो धर्म्मप्रतिमूर्त्तेरन्तःकरणमनुतापविनिमयेन जन्मसम्पदोः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सार्थकताजनितोऽनिर्व्वचनीय आनन्दसन्दोहो मोहमनयत्, ततोऽप्यनुपशमितशापपावकः स तपोब्राह्मणः स्वस्वत्वशून्यां वसुमतीमिमामुत्सृज्य देशान्तरादर्थमुपार्ज्य दक्षिणाप्रदानेन दानमिदमङ्गपूर्णं विधेहीति वागशनिं विससर्ज्ज। वदान्यवरेण्यो हरिश्चन्द्रः शैलवदचलः सपदि शशिशेखरशूलोपरि शोभमानां मर्त्त्यस्वर्गभूतां काशीपुरीमाश्रित्य,सात्मजां सहधर्म्मिणीं ब्राह्मणस्य, स्वञ्च श्वपचस्य सन्निकर्षे विक्रीय लब्धमूल्येन दक्षिणां दत्त्वा तमब्रह्मण्यमन्युं सर्व्वस्वप्रतिग्रहीतारमणुमात्रमन्युनाप्यसंस्पृश्यमान-मानसः सान्त्वयामास। तत एव न तावद् हरिश्चन्द्रस्य मूर्त्तिमती विपत्तिस्तिरोदधे। अवसरे च तस्मिन् पराधीनस्तदपत्यं रोहिताश्वः कालसर्पदंशनात् कालेन कबलितो बभूव। दास्यपरायणा तपस्विनी सहधर्म्मिणी शैव्या, हृदि जाज्वल्यमानसुतशोकजात-वेदसं नयननीरधारया निर्वापयन्ती, शवमात्मजमञ्चलार्द्देनाहृत्य पितृवनमुपगम्य, शवरस्वामिना शाविककर्म्मणि नियुक्तं हरिश्चन्द्रं दाहनिवं करमन्तरेण शवदाहार्थमनुकूलयितुमतिकातरकण्ठं भृशं ययाचे। कर्म्मचण्डालो महामना हरिश्चन्द्र आपतितया विपदा मुहूर्त्तमात्रं शिथिलितधैर्य्यबन्धः सपदि कर्त्तव्यतत्परो भवन् त्रिलोकातीतमहिम्ना नितरामलमकारि। अहो कोटिशो धन्यवादानाम्भाजनमयं महात्मा हरिश्चन्द्रः। इत्थं सीमातिगया सम्पदा विपदा च कियदप्यविकारितचेता महत्त्वस्य महानाधारः पुरुषसिंहो राजर्षिं हरिश्चन्द्रमृते कः पुनः पृथिवीमिमामपुनाद-धिष्ठानेन। इति शम्।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

१०। "स्वास्थ्यं हि सर्व्वस्य सुखस्य हेतुः।"

१० क। अथवा—"शरीरमाद्यं खलु धर्म्मसाधनम्।"

स्वास्थ्यं हि द्विविधं—शारीरिकं मानसिकञ्च, तत् खलु शरीरस्य मनसो वा स्वभावेनावस्थानं कीर्त्त्यते। सर्व्वथा तथा यतितव्यं, यथा कथमपि तयोर्विकृतिर्न घटेत। मनसा सह शरीरस्य सम्बन्धः सन्निकृष्टतमः, सुतरामनयोरन्यतरस्मिन् अन्यभावमापद्यमाने अन्यतरस्य विकृतिरापतति, तत उभयमेव स्वकार्य्यसिद्धौ मन्थरं भवति। स्वास्थ्यशालिनः शरीरिणः खलु जगति सततमनिर्व्वचनीयमानन्दमनुभवन्ति। स्वास्थ्यालोकविरहितानां पुनरखिलमेवेदमन्धतमसायते। निखिलानां हि शरीरिणां 'सुखं मे भूया' दिति कामना नैसर्गिकी बलवती च। अस्याः सम्पूरणाय यावन्त उपाया वर्त्तन्ते, तावत्सु स्वास्थ्यस्य संरक्षणं खलु सर्व्वतो वरिष्ठम्। अस्मिन् सम्यगक्षुण्णतया वर्त्तमाने सत्येव लोकैरुन्नतिरूपाया यथाकालमवलम्ब्येरन्।

बाल्ये विद्याशिक्षा, यौवने धनोपार्ज्जनं, वार्द्धक्ये च धर्म्मसञ्चय इत्यादीनि यानि तावत् कर्म्माणि, सर्वेषामेव तेषां मनुष्यजन्मनो व्रतरूपेण निर्द्दिश्यन्ते, सर्वेषामेव तेषां सिद्धिः स्वास्थ्यरूपं साधनतममपेक्षते। तथाहि—कतिशो बालका आलस्यपरिहीणास्तीक्ष्णमतयः सुमेधसोऽपि शारीरिकेण मानसिकेन वा व्याधिना पीड्यमानाः सर्वोन्नतिनिदानादध्ययनात् प्रतिनिवर्त्तन्ते, पातयन्ति च सुदुर्लभं जीवनमिदं गभीरतमायां मोहतिमिर-गुहायाम्। कतिशो युवानः, समुचितविद्याबुद्धिसामर्थ्यसम्पन्ना अपि केनचिदामये-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नाक्रम्यमाणा न तावदर्हन्ति धनमुपार्ज्जयितुम्, भवन्ति पुनरकर्म्मण्यतया दरिद्रतया च मित्राणाममित्राणाञ्च नियतमवज्ञाया अतिमहान्ति भाजनानि। बहुशो विगतयौवना अपि, सत्सु तावदपरेषु साधनवस्तुषु स्वास्थ्यमात्रविरहात्तपांसि सञ्चेतुं न क्षमन्ते निर्म्मापयन्ते च स्वयमारोपितपापपादपानां फलभोगाय निरयनामपदानि पितृपतिना। अहो कीदृग्विषमा चिरदुःस्थानां दशा! दुःखदहनो हि तेषां हृदये दिवानिशमेव ज्वलति। परमानन्दनिकेतनं निखिलं हि भुवनं तेषां क्लेशमयं प्रतिभाति। उपस्थिते च महोत्सवे दुःसहतमा यातना तानभिभवति। स्वास्थ्यविरहिताः खलु सुमेरुशिखरमधिवसन्तोऽपि, नन्दनवने विचरन्तोऽपि, क्षीरनिधितल्पे शयाना अपि, कञ्चन सुखलेशं नोपभुञ्जते। बहुपुत्रकलत्रपरिवृता अपि, बन्धुसन्दोहसमन्विता अपि, दासदासीसहस्रैः सेव्यमाना अपि, किमपि सुखमनुभवितुं नेशते ते। अमृतायमानेषु चर्व्य-चूष्य-लेह्य-पेयेषु वस्तुषु समुपनीयमानेषु अविकलरसनादीन्द्रिया अपि परितृप्तिविनिमयेनापतितं परितापमाप्नुवन्ति ते। सत्स्वपि परमकारुणिकेन विश्वपित्रा प्रदत्तेषु नेत्रप्रभृतिष्विन्द्रियेषु पटुतमेषु, नैव प्रभवन्ति मनोहरान् विषयान् प्रत्यक्षीकृत्य चरितार्थयन्त इन्द्रियाणि विनोदयितुमात्मानं चिररुग्नाः। धनजनयौवनादिकमनन्तं हि सुखसाधनं नष्टस्वास्थ्यानां केवलमनुतापाय कल्पते। तेषां संसारक्षेत्रे विचरणं विडम्बनामात्रम्, प्रेतराज आतिथ्यमेव तेषामानन्दाय भवतीति मन्ये। चिरमस्वास्थ्यदग्धहृदयात् त्रिलोकीनाथात् नीरुजः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पलालतल्पोऽपि नितरां सुखमास्वदते। अतः सर्व्वसुखनिदानं स्वास्थ्यं सर्व्वदा सर्व्वात्मना रक्षितव्यम्। मनुष्येषु गणनीयतां लिप्समानानां स्वास्थ्यसंरक्षणं प्रति नियतं मनो निवेशयितव्यम्। चतुर्वर्गफललिप्सा च स्वस्थानामेव सिध्यति। स्वास्थ्यविरहिताः कदापि नोन्नमेयुः, तेषां हि हृदयक्षेत्रं केवलानामफलानां कल्पना-कल्पलतिकानामाकरः। अत एव कीर्त्त्यते महापुरुषैः—

"शरीरमाद्यं खलु धर्म्मसाधनम्।"

अथवा—"स्वास्थ्यं हि सर्व्वस्य सुखस्य हेतुः।" इति।

अतः स्वास्थ्यरिरक्षिषुभिर्यथासमयं परिमित-पानभोजन-शयनादयो व्यापारा विधातव्याः। प्रत्यहञ्च सान्ध्यप्राभातिकसमीरणसेवनं, यथाबलं व्यायामः, विमलाभिरद्भिरवगाहनं, सुपरिष्कृत-परिच्छद-परिधानम्, अदूषिते वास्तुनि वासश्चेत्यादिकं यथाशास्त्रमाचारानुरूपं स्वधर्म्मानुमोदितञ्च प्रतिनियतमनुतिष्ठतां कदापि न स्वास्थ्यसम्पद् व्याहन्येत।

"अत्यम्बुपानाद्विषमाशनाच्च
सन्धारणान्मूत्रपुरीषयोश्च।
दिवा शयाज्जागरणाच्च रात्रौ
षड्भिः प्रकारैः प्रविशन्ति रोगाः॥"

एवमादीन्यायुर्वेदवचनानि अपराणि च शरीरसंरक्षणार्थानि धर्म्मशास्त्राणि स्वास्थ्यधनं रिरक्षिषुभिरवश्यमालोच्यानि।

परञ्च यथा मनसा सह शरीरस्य सम्बन्धः सन्निकृष्टतमः, तथा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बाह्यपदार्थजगद्भिरप्यनयोः। बाह्यपदार्थानां गरीयसा साहाय्येनैव प्राणिनो जायन्ते, जीवन्ति, म्रियन्ते चेति प्रतिक्षणमनुस्मृत्य वर्त्तितव्यम्। जीवन् भद्राणि पश्यति। अतः सर्व्वश्रेयसां निदानतमं दुर्लभं मानवजीवनमिदं चरितार्थयितुमभिलषद्भिः सततमतिविमृश्य पथ्यतयाभिमतमेव परिषेवणीयमिति।

११। "विनयो भूषणं महत्।"

११ क। अथवा—"विनयस्य तुल्यो गुणो नास्ति।"

विनयो नम्रता आत्मनः क्षुद्रतया बोध इति। अस्यैव विपर्य्ययो गर्वादिभिरभिधानैरभिधीयते। ये तावद्गुणा मानवीयमात्मानमधिवसन्ति, मण्डयन्तितमाञ्च किरीटादयोऽलङ्कारा इव सततं तं पुण्यवन्तम्, तेषु तावद्विनय एव समुन्नतमासनमधिकर्त्तुमर्हति। विनयिनो मानसं हि निरन्तरमचलम्। निखिलानर्थनिदानं क्रोधरिपुस्तदभिभवितुं न प्रभवति। शारदी कौमुदीव शीतलयति भृशं विनयिनं शान्तिः। विनयी मानव एव सर्व्वप्रियतामासादयितुमर्हति। विद्यारत्नविरहितोऽपि वैरूप्यावहेलितोऽपि असद्वंशप्रसूतोऽपि विनयविभवे वर्त्तमाने दुर्लभपरिचयेनापि पुरुषसिंहेन सादरं परिचीयते। विकाशस्तु गुणरत्नस्य विनयस्य बहुधा सम्भवति। तथाहि—गुरुजनानागच्छतो विलोक्य आसनात् समुत्थानम्, अवनतेन शिरसा तेषां नमस्कृतिः, तेषामनुज्ञामधिगम्य नीचासन-परिग्रहः, मृदुना परिमितेन च वचसा तैः सह संलापः, समुन्नतकुलललामानाम् उच्चपदाभिषिक्तानाम् विमलविद्यासमुद्भासितानां वा विनीतवेश-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मवलम्ब्य सुमधुरवचनादिभिरभ्यर्थना, वयोऽधिकानामन्तिके च सततमचापल्यम्, सर्व्वत्राभिमानराहित्यम्, आत्मनः प्रशंसायामपरैः कीर्त्त्यमानायां लज्जावनतशिरसा तदाकर्णनेऽनभिनिवेशश्च इत्यादिभिस्तावदभिव्यज्यते विनयो मानवस्य। विनयप्रकाशः कस्यापि पदमर्य्यादां, कुलगौरवं, पाण्डित्यसम्मानं वा न जातु लघयति, प्रत्युत वर्द्धयतितराम्। नीचवंश-सम्भूता हि उच्चपद-मधिकुर्व्वन्तोऽपि विपुलमैश्वर्य्यं लभमाना अपि विनयाचरणमप-मानकारणमिति विमृश्य ततो निवर्त्तन्ते। मन्यन्ते च ते—नम्रता-प्रकाशेन निकृष्टवंशजन्मता प्रकाशते, पदमर्य्यादा च लाघवं भजत इति। वस्तुतस्तु तेषां नीचजातिताया अपह्नवः सुदूरे पराहतः, प्रकाश एव ततो विनयविरहात् जायते सामा-जिकसन्निकर्षे। विमलायाश्च विद्याया अलङ्कारता पुनर्विनये-नालङ्क्रियमाणाया एव कृतिभिः कीर्त्त्यते। तथाच भारविः—

"शुचि भूषयति श्रुतं वपुर्विनयस्तस्य भवत्यलङ्क्रिया।"

विनयविरहिता तु विद्या केवलमधःपाताय कल्पते परम-पुण्यपरिणतस्य मनुष्यजन्मनः। नम्रतां प्रति च गुरुत्वमेव निदानम्। तुलाविधौ नतिमापन्नः पक्ष एव तत्र समुज्ज्वलमुदा-हरणम्। उक्तञ्च कविभिः—

"योऽन्यमुन्नयति नतः स्वयं
नात्मना च तनुते स्वगौरवम्।
यो नतो भवतीह तुलाविधौ
सज्जनाः खलु वदन्ति तं गुरुम्॥"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अपिच—

"भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-
र्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घनाः ॥"

भगवानपि विनयिनो वशमापद्यते। प्रह्लादयुधिष्ठिरार्ज्जुन-प्रभृतयो यदि तथाविध-विनयावनतात्मानो नाभविष्यन् तदा कथमपि न ते परमकारुणिकेन मधुसूदनेन तथाविधमन्वग्राहिष्यन्त।

अतो यदि कामयसे—विभूषयितुं विद्यां वंशं चरित्रमात्मानञ्च, लब्धुमपि सर्व्वथा समुन्नतिमैहिकीं पारत्रिकीञ्च, गणयितुं पुनर्मनुष्यगणनायां निजनामधेयमपि, तदा क्षणमपि न विस्मरेरावरितुमात्मानं विनयवाससेति।

१२। "संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति।"

संसर्गो हि तावदन्येन सममवस्थानादिरूपः।

यः खलु यस्य संसर्गं विधत्ते, तस्मिन् तस्य गुणा दोषाश्च संक्रामन्ति। अनेनैव प्रायः प्राणिचरित्रं निर्मीयते। सुतरामैहिकं पारत्रिकं वा शुभमशुभं वा प्रति संसर्गोऽपि कारणमेकमसाधारणम्। अयं हि प्राणिनो बलवतीमनुकरणप्रवृत्तिमुत्पादयति। परन्तु कस्यचिदनुकरणेन स्वर्गमप्यारोढुमर्हति, कस्यचिद्वा नरके पतितुम्। ये नाम सम्प्रति प्राच्यभूमण्डल-शिरोमणयः सार्थकनामान आत्मानमुदीयमानं मार्त्तण्डमभिदधाना जापानीया नरसिंहाः शौर्य्य-वीर्य्य-गाम्भीर्य्य-विज्ञान-नैपुण्याध्यवसायप्रमुखैः स्पृहणीयगुणैर्जगज्जयिनः सभ्यतमम्मन्यान् पाश्चात्त्यान्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पुरुषपुङ्गवानपि विस्मयविस्फारितदृष्टीन् कुर्व्वन्ति, ये तु पूर्व्वतनाः शौर्य्यवीर्य्यौदार्य्यप्रमुखगुणगुरवो गर्व्वपर्व्वतास्तान् मनुष्यत्वेनाप्यङ्गीकर्त्तुमतिकुण्ठितकण्ठा अभवन्, तानिदानीमेते गुणमहोदधयो मानवयितुमनुगच्छन्ति। अत्र हि पाश्चात्यानां पुरुषपुङ्गवाणां संसर्ग एव निदानमङ्गीक्रियते मनीषिभिः। संसर्गवशादित्थमुदयस्य दृष्टान्ता बहुशो वर्त्तन्ते, अधःपातस्य च वयमेव मूर्त्तिमन्तः कुलकलङ्काः, अलमन्यत्र दृष्टिपातेन। भगवता श्रीकृष्णेनापि हृदयनिधीकृतचरणसरोजरजसां योगशक्तिजितजन्ममृत्यूनां तेषां भूदेवानां वंशीया अपि यदधुना सर्व्वथा सर्व्वतोऽधःपतामः, किमत्र संसर्गमन्तरा कारणमनुमीयते? संसर्गस्य शक्तिस्तावदतिगरीयसी। निम्बपादपोऽपि चन्दनतरुभिररण्यमधिवसन् तदात्मना परिणमते। उक्तञ्च दूरदर्शिभिः—

"काचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतीं द्युतिम्" इति।

"कीटोऽपि सुमनःसङ्गादारोहति सतां शिरः।" इति।

"अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः।" इति च।

परञ्च कूपपयःस्पृष्टस्य गङ्गाम्बुनो न खलु वर्त्तते पवित्रताविधायिनी शक्तिः। अस्पृश्यस्य भवति पूतात्मनां पितृवनसमुद्भूतः पावकस्तुलसीवृक्षस्य। इत्थं के नाम जगति संसर्गसंक्रान्तगुणदोषा न भवन्ति।

यो हि दयाया महोदधिः, यः कदापि धर्म्मतो लोकतो वा विगर्हितं कर्म्म नाचरति, यः सत्यवादितया प्रख्यायते, येन च पुरुषसिंहेन तावदतिदुर्ज्जया इन्द्रियमत्तदन्तिनः संयम्यन्ते,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दृष्टगेव पुण्यावतारः साधुनाम्ना गीयते, अस्यैव संसर्गः सततं कर्त्तव्यः। अनेनैव चरितं पवित्रतामापद्यते। साधुसंसर्गमाहात्म्यात् पशवोऽपि सत्प्रकृतयो भवन्ति। स्मर्त्तव्यास्तावत् तपोवनचारिणः पशवः। हिंसैव येषां नैसर्गिको धर्म्मः, तेऽपि शार्दूलादयो मार्ज्जारवदाचरन्ति। साधुसङ्गेन कोपनः क्षान्तिगुणखनिर्भवति, धैर्य्यं लभते, दरिद्रस्य गृहमपि सर्व्वसम्पत्सम्पन्नतया शोभतेतराम्, शोकानलसन्तप्तमन्तःकरणं सुधालेपशीतलं विलसति। साधुसङ्गपावकः पापपाषाणराशिं भस्मसात् करोति। उक्तञ्च—

"गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुर्हरेत्।
पापं तापं तथा दैन्यं सर्वं साधुसमागमः॥"

सत्संसर्गतो मरणमपि दुस्तरदुरितार्णवं तारयति। रघुकुल-ललामस्य दूर्वादलश्यामलकलेवरस्य महामहिमसहोदधेः श्रीराम-चन्द्रस्य निस्त्रिंशेन निकृत्तकन्धरो दिव्यदेहमाददानः शम्बूक इह परमसुदाहरणम्। शतशः शास्त्रसमनुशीलनेन यन्न भवति, सहस्रश उपदेशा यन्न विधातुमर्हन्ति, ब्रह्माण्डमभिवर्त्तमानेषु तीर्थेषु निमज्जनञ्च यन्न जनयति, दुश्चरात्तपसोऽपि यन्न लभ्यते, अनन्त-पुण्योपनतः साधुसङ्ग एकस्तत् सर्वं घटयितुं प्रभवति। अहो अनिर्व्वचनीयमहिमा तावत् सज्जनसङ्गमः!

परन्तु सत्संसर्गोऽपि यथा विधातव्यः, असत्संसर्गोऽपि तथा परित्यक्तव्यः। तथाचोक्तम्—

"हीयते हि मतिस्तात हीनैः सह समागमात्।
समैश्च समतामेति विशिष्टैश्च विशिष्टताम्॥"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

"दुर्ज्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययालङ्कृतोऽपि सन् ।
मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥"

न च कथनीयं तावदसत्संसर्गस्य शक्तिरपि महामहीयसी नेति । विविधविद्याविभूषितोऽपि संसर्गदोषात्मनुष्यत्वेन परिहीयते । सद्वंशप्रसूतोऽपि पूर्व्वपुरुषैः सममात्मानमधः पातयति ततः । वसुन्धराधीश्वरोऽपि दुष्टसङ्गप्रभावेन दरिद्रतमो भवति । देव-प्रतिमूर्त्तिरपि अस्पृश्यवपुरकीर्त्तनीयनामा च जायते संसर्ग-दोषात् । किं पुनरधिकम्—

"असतां सङ्गदोषेण को न याति रसातलम् ?
त्रिदशैः पूजिता काली दासेन ह्रस्वतां गता ॥"

अतः सततं "संसर्गजा दोषगुणा भवन्ती"ति मनसि निधाय व्यवहर्त्तव्यं सर्व्वत आत्मानं रिरक्षिषुभिरिति शम् ।

१३ । चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥"

सुखदुःखानि हि सुकृतिदुष्कृतिप्रसूतानि नियतमात्मसंवेद्यानि। एतान्यपि परिवर्त्तिनि जगति कर्म्मसूत्रेण विश्वविधाता प्रतिनियतं चक्रवत् परिवर्त्तयति । इयमैशिकी व्यवस्था तु सृष्टिरक्षाया मूल-मन्त्रस्वरूपा, भगवदाराधनायाश्च प्रधानतमो हेतुः । तथाहि—जगति यदि सुखमेव विच्छेदविरहितं जन्मावधिकं कस्यापि मनु-जस्य भागधेयं घटयेत्, तदा सुखमेतत् किमात्मकं वस्तु, स खलु परिचेतुमिदं न क्षमेत । यतः—"सुखं हि दुःखान्यनुभूय शोभते, घनान्धकारेष्विव दीपदर्शनम् ।" इति । परन्तु नैव मे सुख-विच्छेदो भविष्यतीति निश्चयमतिश्चेत् उच्छृङ्खलतामापद्यमानः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परशिरश्छेद-परस्त्रीहरण-प्रभृतिषु धर्म्मविरुद्धेषु लोकविगर्हितेषु कर्म्मसु प्रवर्त्तेत मानवः, न च कदाचिदाद्रियेत गुरुजनान् देवगणांश्च, पातयेच्च न दृष्टिं कठोरेषु राजशासनेषु। सर्व्वविपद्विनाशनं निखिलसुखनिदानं सच्चिदानन्दचिन्तनञ्च कदापि तस्य चित्ते न समुदियात्। दुःखमपि चेदनवरतं वर्त्तेत, तदा च मानवसमाजो नितरामाकुलतया नाराधयेत् परमेश्वरम्, न चाध्यवस्येत् धनोपार्ज्जनाय, परोपकारादिष्वपि सत्सु कर्म्मसु न खलु प्रवर्त्तेत। आशैव जगति महदवलम्बनम्। आशासूत्रपरतन्त्र एव लोकोऽयं संसाररङ्गमञ्चे नृत्यति। दुःखितोऽपि परिणामसुखाशया जीवन् वाञ्छितेषु कर्म्मसु रमते। सुखमग्नोऽपि सुखस्योपचिचीषया अपचयचिन्तया दुःखापातशङ्कया च सततंन्यायमार्गमनुसरन् व्यवहरति। सुतरां सुखदुःखयोः परिवर्त्तनं जगतः परमकल्याणायेति नास्तितमां कोऽपि वितर्कः।

परिवर्त्तनञ्चेदं सर्वेषामेव घटते,। तथाहि—अदृष्टचक्रविपर्य्यासेन सुरम्यहर्म्यम्र-निवासी महाराजाधिराजः सार्व्वभौमोऽपि कुटीरमाश्रयते,:अधिरोहति च नितान्तदरिद्रोऽपि साम्राज्यसिंहासनम्। स्मरणीयमत्र भारतीयममूल्यरत्नं वैयासिकी महीयसी कीर्त्तिप्रतिमूर्त्तिर्महाभारतम्। तत्रभवन्तः किल युधिष्ठिरादयो धर्म्मप्रतिमूर्त्तयः पूतनामानः सुरपतिसदृशा अपि नरपतयो नियतं नियतिनियन्त्रिततया ज्वलयितुमरातिभिर्जतुगृहं प्रवेशिता आसन्। तदनु बहूनेव वत्सरान् विपिनतो विपिनं विचरन्तो विराटराजभवने तथाविधपरतन्त्रतया पूरितोदरा वत्सरमेकमविदितवास-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मकार्षुः। तेषां तां तावतीं दशामालोच्य पाषाणोऽपि गलति, दलति च नितरां वज्रकठोरमपि हृदयम्। परिवर्त्तनेन तु भाग्यचक्रस्य, ते पुनः कपटापहृतां साम्राज्यसम्पदमापद्यमानाः सुखसागरमनु निममज्जुः। का कथा मनुष्याणां, विश्वनियन्ता भगवान् सत्यसन्धः श्रीरामचन्द्रोऽपि भाग्यविपर्य्ययेण सुखावासामयोध्यां नाम राजधानीं परित्यज्य भ्रातृवनितासहायो नानाहिंस्रजन्तुसमाकुलं वनं जगाम, अनुबभूव च नानाविधानि वनवासदुःखानि। चतुर्दशवत्सरं यावत् अनुवसन् पञ्चवटीनामधेयं वनं, नितरां क्लेशमवाप सीतावियोगेन। अहो कीदृशं भाग्यचक्रस्य परिवर्त्तनम्! स तु कालेन विविधान्यपि दुःखान्यतीत्य प्राप्य च पुनः स्वराज्यमासमुद्रक्षितीश्वरः समराजत।

परश्च आसीदेकः कश्चिदीश्वरचन्द्रनामा ब्राह्मणतनयः, यः खलु सद्गुणगणेन वङ्गीयानां मुखकमलमलमकरोत्। स च महात्मा बाल्ये वयसि बलीयसीं दारिद्र्यदशामुपभुक्तवान्। स हि महोत्साहः परगेहमधिवसन् परकीयेणान्नेन निवारितबुभुक्षः शुष्कवंशपत्राणि सञ्चीय प्रदीपालोकमुपकल्प्य पठितवान् तावत् पठितव्यानि। इत्थमशेषं क्लेशमनिशं सहमानः समयमतिवाहयन् सागर इव सरितामाश्रयोऽभवदशेषाणां विद्यानाम्, अलभत च विश्वविख्यातं विद्यासागररूपं वरिष्ठमुपाधिम्। नीतिविद्वरेण्यः स मनीषिकेशरी भगवत्या भारत्या अनुकम्पया कमलामपि विस्मारयन् सापत्न्यविरोधं निजमालयमाजीवनमन्ववासयत्। कृपापूर्णहृदयोऽयं पुण्यकीर्त्तनः पिताभवदगणितानां दरिद्राणाम्।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इदानीमपि मही-कल्पपादपस्य तस्य कृपया न जानीमहे—कति-शोऽनाश्रयाः संसारवनचारिणो दारिद्र्यदावविदग्धा विद्याशिक्षा-ग्रासाच्छादनादिभिरुपक्रियमाणा जीवनं यापयन्ति।

अपिच—भगवन्तः सूर्य्याचन्द्रप्रभृतयो देवा अपि भाग्यचक्र-गतिमवरोद्धुं न प्रभवन्ति। तथाच कालिदासः—

"यात्येकतोऽस्तशिखरं पतिरोषधीना-
माविष्कृतोऽरुणपुरःसर एकतोऽर्कः॥"

परिवर्त्तनमाहात्म्यं तरुलतादिषु च विलसति। तेषु हि निदाघोपगमे नव-नव-पल्लवानि कुसुमानि च विकसन्ति, त एव पुनः शीतागमे व्यपगतपत्राः काण्डसाराः पशुपक्षिणां मनुष्याणाञ्च विषादमुत्पादयन्ति।

इत्थमालोचनायां सर्व्वेष्वपि चराचरेषु जगत्सु परिवर्त्तनदशा दृष्टिविषयतामापद्यते, साम्येनावस्थितिः खलु कस्यापि ललाटपटे न लिख्यते विधिना। अतः साम्राज्यसम्पत्-सम्पन्नेनापि "चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च" इत्याशङ्कमानेन प्रमादवैरिणा कथञ्चिदप्यस्पृश्यमानमनसा वर्त्तितव्यम्। विपत्पारावारे पतता च तदेव "दुःखस्यानन्तरं सुखम्" इति मनीषिवचनप्लवमवलम्ब्य पौरुषं विधातव्यमिति।

१४। "सर्व्वत्र लभते गर्हां कृपणो यस्तु मानवः।"

यथायोग्यं दानोपभोगावकुर्व्वन् धनानां सञ्चयपरवशो हि कृपणः परिभाष्यते। अनेन तुल्यः पापीयानात्मवञ्चकः कुत्सिता-शयो न खलु द्वितीयो विद्यते जगत्यस्मिन्। यः किल धनव्यय-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शङ्कया नितरामाकुलः, स सबलोऽपि दुर्ब्बलायते, धनवानपि निर्धनतमवद्व्यवहरति। निःशङ्कोपि निखिलाभिरेव शङ्काभिरतिमात्रमाक्रम्यमाणो यापयति तावत् समयम्। साहसिकोऽपि कापुरुषाणां पुरःसरतया परिणमति। किमन्यदधिकं—निखिलानामपि गुणानामाधारः कृपणतामात्रपरवशो जुगुप्साया महदास्पदं भवति। दूरमपसरति कृपणस्य हृदयात् सुहृदनुरागः, पलायन्ते च स्नेहवात्सल्य-दयादाक्षिण्यादयो मूढतमात् कृपणात्।

अहो अद्भुतसृष्टिरयं कृपणः प्राणिषु। स हि आत्मानं पुत्रकलत्रादींश्च वञ्चयित्वा प्रियतमान् प्राणानपि तृणाय मन्यमानः सञ्जीवननिदानं रुधिरं वारि विधाय धनानि सञ्चिनोति। स्वर्गादपि गरीयसी जननीरूपा जन्मभूमिः सर्वात्मना शोचनीयां दशामुपभुञ्जानापि कृपणस्य दृक्कोणपातं नाधिकरोति, प्रत्युत क्लेशमेव लभते बहुधा तं सर्वाप्रियमेकचरं चिराय वहन्ती। धर्म्मचिन्ता च धनानां चिन्तया निरन्तरमाकुलस्य चेतसि कदापि नावकाशमाप्नोति। तानि च तावत् धनानि सरघसञ्चितानि मधूनीव परेषामेव पोषणाय परिणमन्ति। धिक् शतशः परिणामान्धतममात्मवञ्चकमर्थगृध्नुम्।

अपिच कथाप्रसङ्गेनापि यदि कश्चन भोजनात् पूर्वं कृपणस्य नामधेयं कीर्त्तयति, तर्हि श्रोतृनिकरा अङ्गुलिनिरुद्धकर्णविवरा विरक्तिविकृतमुखं "विरम विरम वक्तृताप्रावीण्यात्" इत्युच्चैरुक्त्वा निवार्य्य "न जानीमहे किमद्य विप्रियमापतिष्यति, दिनमेवेदं मृदं कृतवानसि पुरोषाद-पुत्रस्य नाम कृत्वे"ति नितरां तिरस्कुर्वन्ति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वक्तारम् । रन्धनसमयेऽपि पापीयसः कृपणस्य नाम्नि कीर्त्यमाने पाकपात्रभङ्गभिया अतिमात्रसतर्कमिन्धनादिकं प्रयोजयन्ति सूपकाराः । यात्रावसरे च दृश्यमाने कीर्त्त्यमाने वा तस्मिन् पापात्मनि विपदापातमाशङ्कमानाः प्रतिनिवर्त्तन्ते शिष्टवचनविशिष्टास्थायियासवो गमनात् ।

अहो किमिव कलुषितमन्तःकरणं कृपणस्य ! अयं तावत् शिक्षार्थमर्थव्ययमसहमानो गृहसारान् मूर्त्तिमतः स्नेहानिव पुत्रादीन् विद्यारत्नवर्जितान् विधत्ते । आत्मन आत्मजादीनां वा संशयितजीवनेऽपि रोगे न खलु निर्म्ममोऽयमर्थसाध्यां चिकित्सामभिप्रैति । परन्तु तदानीं चिकित्सकादीनामशेषं दोषमुत्कीर्त्य स्वकीयां भगवदनुरक्ततां प्रकटयति । भगवतस्तारकनाथस्य सूत्रं, हरिनाम्नि स्थितिः, प्रकृतिसुखापेक्षिता वा प्रायोऽनेन नैरुज्याय व्यवस्थाप्यन्ते, तत्रापि पञ्चानतिरिक्तान्येव ताम्रखण्डानि पीडायां निवर्त्तिष्यमाणायां हरस्य पूजनार्थं हरेर्वा गुडगुटिकालोटनार्थं कालीघट्टेश्वर्य्यै 'डल्लकप्रदानार्थं वा कुरुते मानसिकानि धनपिशाचः । वस्तुतस्तु—महतीष्वपि विपत्सिषु भग्नमेकं कपर्दकञ्च प्राणेभ्यो गरीयांसं मन्यते मन्दभाग्योऽयम् ।

अहह लालाटिकी लिपिः पापावतारस्य धनपिपासोः ! यानि तावत् पर्य्युषितानि विरसानि विपणेरावर्ज्जनकल्याति वस्तूनि, येषाञ्च विक्रयार्थं नितरामुत्कण्ठन्ते विक्रेतारः, तान्येव स्वयमुपेत्य पण्यवीथिकायां मूल्यनिर्वाचनवचनशतैर्विरक्तीकृतेभ्यस्तेभ्यः किञ्चिन्मूल्येनामूल्येन वा संगृह्य भुञ्जानस्तृप्तिमभिनयत्यसौ दग्धललाटः ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गलितहस्तपदादिर्जन्मान्धो वा तपस्वी महानिःस्वो वासमेत्य मुष्टिभिक्षोपलब्धये प्रतीहारभूमिं कपालतटेनाहत्य ततो गलता रुधिरेण, जठरानलज्वालया समुष्णीकृतया नयननीरधारया च पङ्किलां कुर्व्वन्नपि न खलु कृपाकणं लब्धुमर्हति कृपणात्। "अतिथिर्यस्य भग्नाशो गृहात् प्रतिनिवर्त्तते।" इत्यादि शास्त्रन्तु कृपणस्य छायामपि न स्पृशति। कृपणस्य हृदयं सततमर्थसंख्यामुपचेतुमाकुलतमम्। सम्पूर्णब्रह्माण्डलाभेनापि न खलु कृपणः परिपूर्णाशो भवति। मणिकाञ्चनादिवित्तानां फलमनुपभुञ्जानोऽयं खलु शर्कराभारवाही बलीवर्द इव विचरति संसारक्षेत्रेऽस्मिन्। मनीषिणो हि उपभोगं दानञ्च वित्तस्य सारं कीर्त्तयन्ति। दानोपभोगहीनेन धनेन धनवन्तश्चेत्, जगति के नाम दरिद्राः? अस्यां सप्तद्वीपायां वसुन्धरायां कतिशो धनानि प्रोथितानि वर्त्तन्ते, रत्नाकरे च संख्यातीतानि रत्नानि समुल्लसन्ति, एभिस्तावदात्मानं धनवन्तं कल्पयित्वा सर्व्वे एव धनिषु गणनीया भवितुमर्हन्ति। यथाशास्त्रमापदर्थमंशविशेषं संरक्ष्य परिशिष्टं दानोपभोगादिषु कर्म्मसु नियुज्यमानमेव सार्थकं भवति। अनुपभुज्य सञ्चिन्वन्नेव कृपणः कीर्त्त्यते, निन्द्यते च स नितरामत्र परत्र चेति।

१६। "विद्यारत्नं महाधनम्।"

१६। (क) "विद्यायाः किं फलम्।"

विद्या हि ज्ञानविशेषरूपा, सा च शस्त्रविद्या शास्त्रविद्येति प्रथमतो द्विविधा, प्रथमा वार्द्धक्ये निष्फला, द्वितीया च सर्व्वदैव फलप्रसविनीति सर्व्वैरेव समाद्रियते। अस्याश्च भेदा अनन्ताः।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विद्या नाम मानवानामेकममूल्यं महारत्नम्, यत्तस्करैरपि नापहर्त्तुं शक्यते, प्रभवाश्च न भवन्ति भागहरा यद्विभज्य परिग्रहीतुम्, रत्नादीनां विनिमयेनापि यल्लोकैरधिगन्तुं न शक्यते, यथेच्छव्ययेनापि यदणुमात्रमपचयं नोपयाति, प्रत्युत नितरामुपचयमेव लभते, विरहे तु यस्य मनुष्येषु मनुष्यत्वं नाम देहिजातोनां देवत्वदैश्यं गौरववर्गैर्वरिष्ठं धाम पदं न विन्यस्यति, यद्धि चतुर्वर्गसिद्धेः साधकतमं, तस्मात् प्रियतरं पुनः किं नाम वस्तु जगति चकास्ति।

विद्यायाः किमहो माधुरीमयी मूर्त्तिः। यया तावत् समलङ्क्रियते पण्डितमण्डलीनां विकस्वरपदार्थतत्त्वकमलं विमलं मानससरोवरम्। तया परिहीनानां नरनिकराणां हृदयमन्दिरन्तु कुहूनक्तमिव निविडतिमिरेणावृतं मन्यन्ते मनीषिणः। चर्चया खलु विद्याया मनुष्याणां हृदयादन्तर्द्धत्ते कुसंस्कारनामान्धकारः। अस्या एव कृपया सौभाग्यशालिनां मानसाकाशे विवेकशारदपूर्णसुधाकरः समुदेति, ततश्च इदं सदिदमसदिति विज्ञाय विवेकिनः श्रेयस्कराय कर्म्मणि प्रवर्त्तन्ते निवर्त्तन्ते च तदन्यतः। अतो विद्यैव परमसुखसम्पन्निदानम्। धैर्य्य-विनय-क्षमा-शिष्टताप्रभृतीनाञ्च गुणगणानां विद्यैव प्रसवित्री। केन स्वास्थ्यमक्षुण्णं वर्त्तते, पितरौ प्रति वा कीदृशी भक्तिर्विधेया, केनोपायेन वा परिवारवर्गः पोषणीयः, पुत्रादीनां शिक्षा वा केन पथा सम्पादनीया, सुहृद्भिः सार्द्धं वा कीदृशीं नीतिमवलम्ब्य व्यवहर्त्तव्यम् कथञ्च सौहार्दमविच्छिन्नं तिष्ठेत्, विद्यामन्तरेण किमपि ताव-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

देतदवगन्तुं न शक्यते। विद्याबलेनैव पाश्चात्त्याः सम्प्रति सभ्यतमम्मन्याः श्वेतकाया नरपुङ्गवा बाष्पीयजलस्थलव्योमयानादीनाम् अणुवीक्षणदिग्दर्शन-वायुमान-तापमान-ताडितवार्त्तावह-प्रभृतीनाञ्च यन्त्रनिचयानामाविष्करणेन जगद्वासिनो विस्मयवारिनिधौ मज्जयन्ति। विना च ताडितगुणविस्तृतिं वार्त्ताविज्ञानयन्त्रमाविष्कृत्य यत्ते मानवमण्डलीं निस्पन्ददृष्टिं विदधति, तत्र च विद्यामन्तरा न वर्त्तते किमपि निदानम्। विद्याबलेनैव कतिशो वस्त्रगोधूमसुद्रायन्त्र-सेतु-पयःप्रणाली-प्रशस्त-वर्त्मानि निर्म्माय जगदिदमुपकारपरवशं कुर्व्वन्ति ते।

अमूल्य-हीरकमणिकाञ्चनालङ्कृतोऽपि धनकुबेरोऽपि अनुपमसौन्दर्य्यगर्वितोऽपि ससागराया धराया अधीश्वरोऽपि विद्याविहीनः पशुना सदृशः कीर्त्त्यते कृतिभिः। उक्तञ्च—

"विद्या नीतिकरी जगद्-वशकरो विद्या विशाला दृशा
विद्या बन्धुरसौ विदेशगमने विद्या परं सम्बलम्।
विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं विद्या च रत्नं महत्
विद्या गौरवकारणं त्रिभुवने विद्याविहीनः पशुः।"

अहो विद्यायाः प्रभावः! विद्याबलेन पावकः सलिलायते, सलिलञ्च पावकायते। विद्यायाः प्रभावात् मनुष्यराक्षसावेकत्र मित्रतया निवसतः। कालसर्पेणापि कण्ठदेशमलङ्करोति विद्यावान् मानवः। त्रिभुवनमपि करामलकवदवलोकयितुमर्हति विद्यया। किं पुनः पल्लवेन, यः पुनरणोरणीयान्, महतो महीयान्, तं त्रिगुणातीतं जगदृश्यं जगदाधारं परमेश्वरमपि साक्षात्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पश्यति विद्यालोकबलेन लोकः। अत एव विद्यारत्नं महाधनमिति साधीयः खलु गीयते वागीशैः। उक्तञ्च महामहोपाध्यायेन विष्णुशर्म्मणा—

"सर्वद्रव्येषु विद्यैव द्रव्यमाहुरनुत्तमम्।
अहार्य्यत्वादनर्घत्वादक्षयत्वाच्च सर्व्वदा॥" इति।

१६। "सञ्चयी नावसीदति।"

सञ्चयस्तावदुपार्ज्जितानामर्थानां कियदंशस्य संरक्षणमभिधीयते। धर्म्मशास्त्रकृद्भिश्च विपदर्थं चतुर्थमंशमुपार्ज्जितानामर्थानां संरक्षेदित्यनुशिष्टम्। "विपदर्थं धनं रक्षेत्" इति नीतिकोविदा अप्युपदिशन्ति। गृहस्थानामवश्यकर्त्तव्येषु कर्म्मसु सञ्चयोऽयमति प्राधान्येनोल्लेखमर्हति। यतः सञ्चयमन्तरेण संसारिणां विपत्सहस्रसङ्कुला संसारयात्रा कथमपि न सम्पद्येत। यस्य यावानायो भवति तेन यदि तावानेव व्ययेन शिष्यते, तदा भविष्यति दुर्भिक्षे कथं तस्य पुत्रकलत्रादिपरिवृतस्य प्रियतमाः प्राणा लब्धाहारा रक्ष्येरन्। आवरिष्यति च विपदन्धतमसे विना विभवप्रदीपं कः पुनः पन्थानमालोकयितुं प्रभवेत्। नश्वरं हि शरीरं व्याधिमन्दिरमामनन्ति मनीषिणः। यदि तावत् कयाचित् प्रबलया पीडया नितरामाक्रम्यमाणः षण्मासान् मस्तकमुत्तोलयितुमपारयन् निरायतसर्व्वकायं शयनीयमलङ्कुर्य्यात्, तदा सञ्चयपराङ्मुखं तं जीवयितुं को बन्धुरभयदं करमुत्तोल्य समीपमागच्छेत्, को वा चिकित्सकस्तं चिकित्सितुमर्थमन्तरेण भेषजं वितरेत्। शौवस्तिकविभवविहीनं बान्धवा अपि भृशमवजानीयुः,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परिजना अपि प्रायेण तस्य वशमापन्ना न खलु वर्त्तेरन्; अतः पथ्यभेषजशुश्रूषाविरहात् अकाल एव कालग्रासे निपत्य प्रत्यवाय-मेव लभेत तथाविधो विबुद्धिः। अकृतसञ्चयस्य तीर्थपर्य्यटनादिकं यागादिकं वा धनसाध्यं किमपि पारत्रिकश्रेयस्करं कर्म्म न सम्भ-वति। उपनीते च वार्द्धक्ये विविधदुःखमयी दशा समेत्य पदभरेण सञ्चयविमनसो मूर्द्धानमवनमयति। धनमर्ज्जयितुमसमर्थस्य सञ्चयशून्यस्य हि सर्व्वमेव शून्यतया प्रतिभाति। अतः सर्वेषामेव समुचितेषु भोजनवसनादिषु क्लेशमननुभूय यथासम्भवं सञ्चयन-मवश्यं विधेयम्। अतः साधु खल्विदमुच्यते मनीषिभिः—

"शनैः शनैश्च भोक्तव्यं स्वीयं वित्तमुपार्ज्जितम्।
रसायनमिव प्राज्ञैर्हेलया न कदाचन॥"

तिर्य्यग्योनिष्वपि सञ्चयप्रवृत्तिः परिदृश्यते, पिपीलिकाप्रभृ-तयोऽपि समन्तादाहार्य्यमन्विष्य वासविवरे नीत्वा सञ्चित्य क्रमशो भुञ्जते। विहङ्गमेष्वपि काकादयः सञ्चयशीला आलोक्यन्ते।

अपिच, मुद्रादि समुपार्ज्य यथा सञ्चयनीयम्, एवं वस्त्वन्तर-मपि। यतस्तृणेनापि सञ्चीयमानेन समयान्तरे महानुपकारो लब्धव्यः स्यात्। सांसारिकाणां वस्तुमात्रमेव प्रयोजनीयं, किञ्चिदपि नानपेक्ष्यं परिहातव्यञ्च। कीर्त्त्यते च वङ्गभाषायाम्—"যাহা দেখিলে ছাই, কুড়াইয়া রাখ তাই, খুজিলে মিলিতে পারে অমূল্য রতন।" अलं तावद्भाषान्तरस्य विषयान्तरस्य वा प्रपञ्चेन। यच्च शतशच्छिद्रसमन्वितं ग्रन्थिपूर्णं वा वस्त्रखण्डं, तदपि यत्नेन रक्षणीयञ्चेत् समयान्तरे महतीमुपकृतिं साधयेत्।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तृणखण्डमपि स्थाप्यमानमानुकूल्याय प्रभवेत्। भग्नः कपर्द्दकश्चैको न खलु निष्फलरक्षणो भवति गृहिणाम्। सञ्चयपरवशो हि सांसारिकेषु नितरां सुखमुपभुङ्क्ते, कदाचिदपि तस्य दुःखतमिस्रा नायाति। अतः सुष्ठु तावन्नीयते नीतिनिष्णातैः—"सञ्चयी नावसीदति" इति।

१७। पदं हि सर्व्वत्र गुणैर्निधीयते।"

इह खलु जगति देहवतां पशुपक्षिमनुष्यादीनां सर्वेषामेव गुणा एवोत्कर्षसाधकाः। सर्व्वत्र सर्व्वास्वप्यवस्थासु समाद्रियन्ते गुणिनः खलु धीमद्भिः।

रूपादयश्चतुर्विंशतिविधा हि गुणशब्देनाभिधीयन्ते, तेषाञ्च लोकविश्रुतानां यः कोऽपि देहवतामुत्कर्षाधायको धर्म्मविशेषः स एवैतत्प्रबन्धोपयोगिगुणशब्दवाच्यः। दयादाक्षिण्यादिगुणैरमलीकृतहृदयो हि परोपकाराय विपुलान्यपि धनानि सोत्साहमक्लेशेनोत्सृज्य भिक्षाजीविकया जीवनमतिवाहयितुमुत्सहते। व्यतीतेष्वप्यब्दशतेषु कालिदासादयः कवयः स्वदेशवासिनां पारावारापरपारपुराणां विरुद्धधर्म्माणामपि हृदयग्राहिणा रचनानैपुण्येन कविषु प्रधानमासनमध्यासीना अद्यापि जीवन्त इव प्रतिभासन्ते। प्रतिदेशमधुनापि तद्गुणानहर्निशं कीर्त्तयन्ति मनीषिणः। धर्म्मावतारेण युधिष्ठिरेण च सकलगुणैकनिलयतया मानवीयदेहमभुञ्चतैव स्वर्गपदमधिरुरुहे। सत्स्वपि बहुविधेष्वव्यक्तशब्दकारिषु विहगेषु शुका एव सामाजिकैः सुमधुरकूजनतया बहुमन्यन्ते।

चतुष्पादेष्वनादृत्य बलवतोऽप्यन्यानतिवेगवत्तया वशीभूतत्वेन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शिक्षानुरूपकार्य्यसम्पादकतया च वाजिन एव वाहनाय सादरं समाद्रियन्ते विषयिणो योद्धारश्च। यदेतेषु मानवानामतितरामादरस्तत्र तु गुणविशेष एव निदानतया प्रतिभाति। धनञ्जयश्चात्र प्रथममुदाहरणम्। स हि प्रथमतोऽस्त्रविद्याभ्याससमये तत्प्रयोगनैपुण्येन सर्व्वानिव सतीर्थानतिक्रम्य प्राधान्यमधिरोहन् गुणग्राहिणो द्रोणाचार्य्यात् किमप्यधिकमस्त्रमलभत। द्रौपद्याः स्वयंवरे च विमुखेष्वस्त्रप्रयोगकुशलेषु क्षत्रियकुलधुरन्धरेषु छद्मना धृतब्राह्मणवेशः परिषदि यथास्थानमुपगम्य लक्ष्यभेदं विधाय तत्कर्म्मावधीरितपौरुषान् क्षत्रियपुरुषान् रोषारचितशरप्रहारान् वीरवरानाशु निशितशरसन्धानेन भृशमभिभूय तत्र प्रतिष्ठामधिगतवान्। वनमधिवसता तेन च तत्र तत्र स्वाधिष्ठितेषु स्थानेषु राक्षसादीनुपद्रवहेतूनुपशमयता आरण्यकानुपकृत्य हिंस्रसत्त्वसमाकुलेऽपि कानने प्रतिष्ठा लेभे। ततश्च स जनसङ्गरहिते तपोहिते घोरसत्त्वसमाकीर्णे कान्तारे इन्द्रनीलगिरौ नक्तन्दिनमतिकठोरं तपोऽनुतिष्ठन् दिविषदामपि विषदं मानसमविषदतामापादयामास। अहो चित्रमेतत्, यत् सतताराध्यचरणानामविचलितचेतसां दिवौकसामपि प्रबला परोन्नतिकातरता!

देवराजश्चागणितशरीरपातं तपस्यतः स्वतनयस्य वशीकृतेन्द्रियवर्गस्य धनञ्जयस्य तपसो विघ्नाय नानाविधमुपायमवलम्ब्यापि विफलप्रयत्नः पुनस्तदनुष्ठितेन क्रियाकलापेन भृशं सन्तुष्टहृदयः स्वपरिचयेन हृष्टमानसं क्षत्रियकुलतिलकं तमनश्वरफलाय महेश्वराराधनाय समुपदिश्य तिरोदधे। धनञ्जयोऽपि मृत्यञ्जयं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रभञ्जनाशनोऽनिशमशेषक्लेशसाधितेन तपसा वशीकृतमानसं तत्तेजोभिरुद्वेजितचेतोभिस्तपस्विभिः साध्यगणैश्च भृशमावेदित-तदीयतपःप्रभावं सहानुचरैर्विरचित-किरात-वेशमराति-रूपिणोप-गतं निशितशरनिकरैः शश्वत्प्रयुध्याक्षयतूणीरोऽपि भवविभवेन क्षयितशरनिचयः करप्रहारमारभमाणः पराभवमापन्नोऽपि परं सन्तोषयामास। मुदितश्चातितरां तद्गुणनिवहेन भगवानाशुतोषः छद्मना रचितकिरातनेपथ्यं परिहृत्य पाशुपताभिधानमनन्यसह्य-मवारणीयमरातिशमनात्मकमस्त्रमस्मै प्रतिपादयन् गतवानन्तर्धा-नम्। ततश्च देवराजः पुष्पकाभिधानेन मातलिसारथिना वियच्चारिणा रथेन सम्प्रीणिताशुतोषं निजतनयं धनञ्जयं स्वपुरमानीय देवैरप्य-बध्यानामसुराणां सन्त्रासितदेवलोकानां निधनाय नियोजयामास। अमितविक्रमाणामसुराणां निधनेन सम्पादितदेवकृत्यश्च कञ्चन कालमधिवसन्निन्द्रभवनमर्ज्जुनः शौर्य्यवीर्य्यविनयादिभिर्गुणगणै-र्दिवौकसामपि मनांसि वशमनैषीत्, अशिक्षत च तेभ्यो यथायथं दिव्यास्त्राणि। अज्ञातवासं वसता च विराटान्तःपुरचारिणीनां हृदयं नृत्यगीतादिनैपुण्येन रमयता उत्तरगोगृहाद्गोधनानि बलादप-हरद्भ्योऽनिवार्य्यशौर्य्यवीर्य्यादिभ्यः सबलवाहनेभ्यो भीष्मद्रोणप्रमु-खेभ्यः षड्रथिभ्यः सहोत्तरेण सारथिनानन्यसहायेन तेनास्त्रप्रयोग-कौशलेनातिमानुषविक्रमं वैराटानि तानि गोधनानि समुज्जिहीर्षुणा कदाचिदप्यविहतास्त्रप्रयोगाः प्रथितयशसः सर्व्वशस्त्रभृतां वरेण्या अपि तत्रभवन्तो भीष्मादयः पराङ्मुखीकृताः। किं बहुना, के नाम न पूजयन्ति गुणग्रामानर्ज्जुनस्य ? स हि गुणगरिम्णा सर्व्वत्र

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सर्वेष्वेव विषयेषु परमां प्रतिष्ठामभजत् इति। अतः साधु खलूच्यते साधुसमाजैः—"पदं हि सर्व्वत्र गुणैर्निधीयत" इति।

१८। "नाहङ्कारात् परो रिपुः।

अहङ्कारस्तावदात्मनः प्राधान्यादिबोधजन्यचित्तविकृतिविशेषरूपः। दर्पणकृता च—"अहङ्कारः प्रभावश्रीविद्यासत्कुलतादिजः।" इत्युक्तम्। अस्मिन् विषये मत्तो गरीयान् कोऽपि नास्ति, अस्मिन् कर्म्मणि मम नैपुण्यं सर्व्वतो वरिष्ठम्, अहमेको रूपवान्, अहमेकः क्षमताशाली पुरुषः—सर्वेषु विषयेषु खलु मत्तः परतरः क इह नरलोके चकास्ति इत्यादिज्ञानजन्या चित्तसमुन्नतिरहङ्कृतिनाम्ना निर्द्दिश्यते मनीषिभिः। अस्य पर्य्यायाश्च अभिमानगर्व्वमानप्रभृतयः। मानवानामयमतिप्रमाथी परिपन्थी। प्रायेण चायं गुणहीनानां हृदयालयमधिकृत्य निवसति। मानवीय आत्मनि नियतं कृताधिष्ठानानां कामादीनां षसामरातीनामन्यतमतयासौ निर्द्दिष्टो मुनिवर्य्यैः। अस्य शक्तिस्तावदतिमहती। विविधविद्यापारावारपारीणोऽपि अमुनैषत्संस्पृश्यमानो नैव लभते महतामर्च्चाम्। गर्व्वस्फीतवचास्तपःप्रभावसम्पन्नोऽपि वञ्चितो भवति भगवदनुग्रहेण। परमसुहृदोऽपि गर्वितं प्रति भृशं विरजन्ति। कोऽपि तेन सह वस्तुमालपितुं वा न खलु कामयते। सुतरां साधुसङ्गात् सुहृत्सहवासाद् वा समुद्भवता सुखेन नैवाधिक्रियते गर्विणो मानसम्। नानागुणसम्पन्नोऽपि गर्व्वलेशस्पृष्टहृदयः छिन्नगोमूत्रविन्दुः पञ्चामृतभारवत् अकर्म्मण्यो भवति नितराम्। स हि वक्षोमांसप्रतिमैरर्थराशिभिरगणिततनुपातं धर्म्मग्रमनुष्ठानं निष्फलं विधत्ते

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सकृत् कीर्त्तयित्वा कर्त्तृत्वमात्मनः। स्वकीयां प्रशस्ततामात्ममुखेन प्रचारयन् नितान्तमवज्ञायते च विज्ञवृन्दैः। यश्च मूढतमो गर्वेण परमवधीरयति, कोऽपि नाम तं न श्रद्दधते। उच्चपदाभिषिक्तो वा राजप्रतिनिधिर्वा स्वयं राजा वा सार्व्वभौमो वा गर्व्वमत्तः परोच्चमवधीर्य्यते मानवसमाजैः। कोऽपि गर्विणमान्तरिकमनुरागं न खलु दर्शयते। विश्वसृजः सृष्टयस्तावदपरिच्छेद्या अनिर्व्वचनीयकौशलपूर्णाश्च। अतः कतिशो गुणसिन्धवो जगन्मण्डलेऽस्मिन्नवतिष्ठन्ते, पञ्चाननोऽपि न खलु प्रभवति तान् प्रपञ्चयितुम्। मोहतिमिरावृत इव अहमत्र वरिष्ठ इत्यभिमानिनोन्नमितमूर्द्धा नियतमधः पतति। अभिज्ञतासम्पदागमं प्रति च गर्व्वोऽयमखर्वतमोऽन्तरायः। तथाहि—नहि खलु सर्व्वः सर्वं वेत्ति, जननीजठराच्च निखिलं ज्ञातव्यमवगत्य नैव कोऽपि भूमाववतरति, गृहस्य स्तम्भो भित्तिर्वा न चोपदेष्टुमर्हति, बहव एव विषया आलापेन संसर्गेण चर्च्चया जिज्ञासया वा परतः शिक्षणीया वर्त्तन्ते मानवस्य। गर्व्वोष्मणा निगीर्य्यमाणस्तु आत्मानमन्यस्मादलघु मन्यमानः स्वकीयमभावं सम्पूरयितुं नैव यतते। अपि च अहङ्कारपरवशः कटूक्तिसूचीवेधनेन साधूनामन्तःकरणं व्यथयन् प्रायोऽभिशापसर्पेण दश्यते। अभिमानिनः पतनमवश्यम्भावि। दुर्जयस्य लङ्काधीश्वरस्य वंशेन समं विध्वंसं प्रति गर्व्व एव कारणमसाधारणम्। धनजनजीवनयौवनादिके कुत्रचिदपि वस्तुनि न हि कस्यचिदभिमानो युज्यते। उक्तञ्च विज्ञानचक्षुषा भगवता शङ्कराचार्य्येण—

"मा कुरु धनजनयौवनगर्वं हरति निमेषात् कालः सर्वम्।"

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अपिच—अवलेपपरिलिप्तकलेवरो लोकस्य लोकानुरागमिव भगवतः प्रेमाणमपि नाधिकर्त्तुमर्हति। स हि परमकारुणिकः कमलापतिः प्रणम्रकन्धराणां परवशः। का कथा परेषां, पूर्व्वमसौ सत्यभामात्मना भूमाववतीर्णां प्राणवल्लभां भगवतीं कमलामपि सौभाग्यावलेपकबलितामालोक्य प्रेमाधिकार-परिहीनामकरोत्। अत ऐहिकस्य पारत्रिकस्य च श्रेयसो महान् परिपन्थी गर्व्वोऽयं कथमपि मानसमन्दिरप्रवेशाय कमप्यवसरं यथा न लभते, तथा सर्वैराचरितव्यम्। "उपर्य्युपरि पश्यन्तः सर्व्वे एव दरिद्रति।" सततमात्मनो वरिष्ठान् नरपुङ्गवान् प्रति दृशः पातयितव्याः, तेन सर्वेषु विषयेषु स्वकीया लघुता चिराय हृदयालयमधिवसेत्, अभिमानदानवोऽपि मूर्द्धनि पदमर्पयितुं न खलु प्रभवेदिति शम्।

१८। "जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।"

इह खलु विश्वविधातृसृष्टविचित्रवस्तुजातसमाकीर्णे जगन्मण्डले स्नेहकुसुमपरिमण्डितकारुण्यकल्पलतिकायाः शान्तिच्छायावितरणप्रीणितसुतमानसायाः सन्ततं स्मृतिवर्त्मारोहणेन मनसि कमप्यनिर्व्वचनीयतमं प्रमोदभारमिवावतारयन्त्या जननीरूपाया जन्मभूमितः समधिकशान्ति-निधानतया मनोहारितया च गरिष्ठं किमपि वस्तु न विद्यते।

अत हि सर्व्वे एव निरन्तरवित्तास्वादापहृतचित्ता धनीश्वरा दिनान्तेऽपि च सकृदाहार्य्यसमाहरणविमुखा दुर्गता वा, प्रज्ञाबलकुण्ठीकृतकोविदसमाजाः सन्तः, ज्ञानबलदुर्विदग्धा बालिशा वा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सर्व्वथा दुःखविच्छेदेन निर्म्मलसुखभोगमभिलषन्ति, यतन्ते च नितरां तत्साधनेष्वक्लच्छ्रतमेष्वपि तपोजपादिधर्म्मकृत्येषु। अहो! सुखान्वेषितया समुद्युञ्जाना मनुजा नैव किमपि दुष्करं मन्यन्ते। प्रत्यक्षीक्रियते चास्माभिः शाश्वतं यद्बहवः किलासाधारणप्रतिभाशालिनो महाधियो जगतां सुखसमृद्धिसंवर्द्धनाय निवेशितमानसा बहूनि शास्त्राणि विविधशिल्पविज्ञानकौशलादिकञ्च प्रकटय्य तत्र कृतकृत्या आसन्, सन्ति च साम्प्रतमपि। दुःखत्रयनिरसनेन जगतां नित्यनिर्म्मलशान्तिसंविधानार्थमेव कपिलादिभिर्महामुनिभिः परमार्थतत्त्वनिरूपणादिरूपं सांख्यादिदर्शनशास्त्रं विरचितम्, इत्थं तावत् स्पष्टमेवानुमीयते यत्—जगतीह सर्वैरेव सर्व्वदातिप्रयत्नतः सुखमेव संमृग्यते।

अपिच स्वर्गो हि नाम तत्र सुखसाधनेषु प्रशस्ततर इति सर्वैरेवाप्तमुख्यैः सुसिद्धान्तितं, ततः किल सुखान्वेषिभिः सबहुमानं प्रकटीक्रियते स्वर्गाधिगमनाय सुमहान् प्रयत्नः। केचिद्दानादिसत्कार्य्यसमूहैः परोपकारादिभिश्च, केचन तपोऽध्ययनादिभिरन्यैश्च विविधोपायैस्त्रिदिवसुखसम्भोगाय सर्व्वथा समीहन्ते, नैव ते विगणयन्ति कायमानसावसादकान् शीतवातातपादीन्। प्रयान्ति तु तेषां कतिचिदेव सहस्रशो विघ्नानतिक्रम्य दुःसहासीमक्लेशेन निरामयशान्तिनिलयं तदमरनिकेतनम्।

परमनायासलभ्य-प्रचुर-प्रसादतया सर्व्वत्र प्रतिहतस्नेहप्रसरतया निरुपमहृदयानन्दविसर्जनेन च निर्म्मलशान्तिविधायिनी सन्तानानामशेषकल्याणपरम्परायै धृतातुलस्नेहराशिर्जननीयं देवी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जन्मभूमिः स्वर्गतोऽप्यतिरिच्यते। कारुण्यकल्पलतिकाया यस्याः सुगन्धिकुसुमनिकरैः प्रसाधिताः, कस्तूरिकाचन्दनप्रभृतिभिर्गन्धवस्तुभिः सुवासिताः परिपोषिताश्च सन्तः सन्तानगणाः पुष्टिकान्तिसौन्दर्य्यसुसमृद्धं शरीरमाजीवनमादधति। जननीं जन्मभूमिमन्तरेण जगतीह न कोऽपि तावदप्रार्थितं करुणाराशिं निरन्तरं वितरितुमुत्सहते। एका जननीरूपा जन्मभूमिरेव सन्तानैर्भृशं विप्रकृतापि परं स्नेहपरीतमानसा यावज्जीवं तेषां हिताय यततेतराम्।

जननीनामपि जननी जन्मभूमिरियं पुनर्विपदवस्थायां जननीजठराधिष्ठानवेलायामपि जननीशरीरं द्वारीकृत्य जीवयति जन्तून्। कठोरतपोबलेन स्वर्गधामगतानामपि पुण्यपरिपाकात् परं सुरपुरादवतरणं सम्भवति। त्रिशङ्कुप्रभृतयो महात्मानस्तु दुष्करतरतपसा सञ्चितधर्म्माणोऽपि, दुष्कृतिलवमात्रवशाद् दिवो दर्शनसुखमप्यनुभवितुं नाशकन्। अन्तरा हि ते द्यावाभूमी अवतस्थिरे। इह पुनराजन्मनः कलुषाकुलमतयोऽपि मानवाः प्रतिपदमस्या जननीरूपाया जन्मभूमेः करुणाराशीनधिगम्य नितरां शान्तिसुखमुपभुञ्जते। स्वर्लोकाधिगमसुखन्तु नितरां दुरापम्। आस्तिक्यवादिन एव कतिचित् सुधियः सुरपुरस्य सत्तां, निरामयशान्तिसुखायातिदुष्करैस्तपोभिस्तस्य लभ्यताञ्चाङ्गीकुर्वन्ति। जन्मभूमिस्नेहसम्भोगशान्तिः पुनः सर्व्वत्र सर्व्वजनाधिगम्या। न हि तावदेवंविधाः केचिदिह शरीरिणः सन्ति, येषु न जातु निपतिता जन्मभूमिस्नेहाः। स्वर्गो हि नाम सर्व्वातिरिक्त-माहात्म्यैर्महर्षिभिरनिश-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मीशमाराध्यापि प्रायो न लभ्यते, कारुण्यकल्पव्रततिस्तु महीयसी महीयं सततं साक्षाद्वर्त्तमाना करुणाराशीन् वितरति। आर्य्याः! एतावतैव तावद्विचार्य्यतां स्वर्गापेक्षया जनन्या जन्मभूमेर्गरीयस्त्वम्। अहो नितरामनिर्व्वचनीयं खलु जन्मभूमिमाहात्म्यम्, यत्—युववृद्धबालकाः सर्व्वे एव कुधियः सुधियो वा, अनन्तदृप्तिनिधानं जन्म-भूमिमातुर्नाम ध्यायन्तः प्रचुरतरप्रमोदरसाप्लुतहृदया भवन्ति। महत्यामपि विपदि जनस्य जन्मभूमिं मातरमभि प्रकामं भक्तिरसोच्छ्रितं भवति हृदयम्।

लोकचित्ताकर्षणकारिषु वस्तुजातेषु जन्मभूमिरियं सर्वश्रेष्ठता-पदवीमधिरूढा। नितान्तप्रज्ञाहीनमारभ्य दिगन्तवितानीकृत-कीर्त्तिराशेः सुमतितमस्यापि मानवस्य स्वभावतो जन्मभूमिवत्सलं चेतस्तन्नामश्रवणेन प्रीतिविकाशोज्जृम्भितं भवति। अहो प्रभावो जन्मभूमेर्यत्—नितान्तजघन्यप्रदेशाधिष्ठानोऽपि कश्चित् साभिमानं प्रख्यापयति सर्व्वत्र स्वदेशस्योत्कर्षम्। इदमेवात्र रहस्यं यत्—विपुलप्रज्ञाशालिनोऽपि बहवः सन्तः स्वदेशस्य भूमण्डनायितत्व-प्रतिपादनाय बहुशो विवदन्ते।

प्रायेणैव विद्यते जानानां मनागपि कृतज्ञताप्रकाशनौत्सुक्यं, तद्वशगता एव सर्वे स्वस्वजन्मभूमिमनु भृशमनुरक्तहृदया भवन्ति। यत्र जन्म परिगृह्य यद्देशजातानि च भक्ष्यवस्तूनि समश्नन्तो धृत-जीवना नरा जगदिदं वैचित्र्यमयं निरीक्षन्ते, भुञ्जते च मनोरथानुमतं सुखभोगादिकम्, तस्याः स्वर्गतोऽपि गरीयस्त्वं केन पुनर्नाङ्गीक्रियते? एवं पर्य्यालोचनया सुस्थितमानसै-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

महाजनैरत एव कथितं—"जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"ति।

तत्त्वमिदं विदित्वैव पाण्डवास्तमगणितबन्धुवियोगं त्रिलोक-लोमहर्षणं कुरुक्षेत्रसमरं विधाय जन्मभूमिमुदधरन्। अहो! जन्मभूमिं प्रति नितान्तमनुरक्तहृदयाः क्षत्रियवीरा एकदा चतुर्वर्गसाधनमपि जीवितं तृणाय मेनिरे। किमत्रोक्तिप्रपञ्चेन? साम्प्रतमपि जन्मभूमिप्रेमप्रवणाः कतिशो भारतीयमानवा अपि वाणिज्यादिभिः स्वदेशमुन्नमयितुमनसः समुद्रयात्रादिकमसीम-विपत्सङ्कुलं कतिविधं दुष्करं कर्म्म सम्पादयन्ति। अतः खलु सर्वैरेवास्माभिर्जनन्यां जन्मभूमौ स्वर्गाधिकगुरुत्वबुद्ध्या नितरां भक्तिप्रवणचित्तैर्भवितुमुचितम्।

ये खलु दुर्मतयः सदाश्रयदायिन्यामपारकृपापारावाररूपायां जन्मभूमौ भक्तिविमुखा भवन्ति, कृतघ्नताविहीनान् तानिह त्रिभुवने कोऽपि नाभिनन्दति। पतन्ति च ते विश्वसृजा नव-निर्मितेषु केष्वपि निर्निष्कृतिषु निरयेष्वित्यलं पल्लवितेन।

२०। "सर्वं नष्टं दरिद्रस्य।"

अथवा—"नास्ति दैन्यात् परो रिपुः।"

इह खलु जगति सर्वेऽपि लब्धजन्मानः प्राणिनः स्वातन्त्र्येण सुखानुभवं कामयन्ते। तच्च सुखं विभिन्नरूपतया धर्म्मार्थकाम-मोक्षाणामन्यतमसाध्यम्। तेषु सर्व्वकार्य्यप्रधानसहायतया धनमेव सर्व्वतोऽतिरिच्यते प्रशस्यते च। एकमर्थमुपलभ्यैव नराः सर्व्वविधं सत्कर्म्मनिवहं सम्पादयितुं प्रोत्सहन्ते।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नित्यनिर्म्मलसुखप्रदस्य धर्म्मस्यार्ज्जने धनमेव तावत् सर्व्वाग्रत उपायभूतं भवति, अत एव महात्मभिर्धर्म्मार्थयोरन्योन्यापेक्षितया "धर्म्मार्थकाममोक्षाणा" मित्यादिषु एकत्राव्यवहितसमावेशः कृतः। उक्तञ्च—

"न्यायेनार्जनमर्थस्य सत्पात्रे क्षेपणन्तथा ॥" इत्यादि।

धनहीनाः पुनः संसारेऽस्मिन् सारभूतेषु कुत्रचिदपि नैव लब्धभोगाः सफलमनोरथाश्च भवन्ति, परं दारिद्र्यवशात् सर्व्वत्र क्षीणाः, तेजोभ्रष्टाः, पराभवमापन्नाः, निर्विण्णाः, शोकाभिभूतमानसास्तिरोहितविवेकाश्च सन्तो ध्रुवमेव नाशं गच्छन्ति।

दारिद्र्यं हि नाम पुरुषस्य चिन्ताया निवासः, परमपरिभवकारणं, नितान्तवैरहेतुः, बान्धवानां जुगुप्सास्थानं; तस्मादेव स्वजनविद्वेषकारणञ्च सञ्जायते।

जगतीह प्रायेणात्मसुखान्वेषणतत्परचित्तैः प्राणिभिः स्वार्थहेतोरेव कुत्रचित् सबहुमानमभिरम्यते, वितन्यते च भक्तिसौहार्द्दादिकम्। दरिद्रेषु पुनः स्वार्थसम्पादनावसरमनवेक्षमाणाः स्त्रीपुत्रभ्रातृबन्धुभृत्यादयः सर्व्वे एव सावज्ञं विरजन्ति। फलकुसुमसमृद्धि-विरहित-स्थाणुप्रायेषु महीरुहवनेषु सलिलाभिषेकसंवर्द्धनमिव दारिद्र्यध्वान्तमलीमसमानसेषु सततनिर्वेदपरायणजनेषु गुरवो नैव स्नेहाभिषेकं, नापि कान्ताः प्रेमाभिव्यक्तिं, नो वा तनया भक्तिप्रकर्षं, भ्रातरो न सौहार्द्दं, न च सहानुभूतिं मित्राणि, भृत्या अपि नैव सम्माननां प्रकटयन्ति। आजन्मजातप्रेमबन्धना अपि मित्रादयः सौहृदादतिशिथिलीभवन्ति।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

साधूक्तमत्र कविना, यत्—

"सङ्गं नैव हि कश्चिदस्य कुरुते सम्भाषते नादरात्
सम्प्राप्तो गृहमुत्सवेषु धनिनां सावज्ञमालोक्यते।
दूरादेव महाजनस्य विहरत्यल्पच्छदो लज्जया
मन्ये निर्धनता प्रकाममपरं षष्ठं महापातकम्॥"

अहो! मन्त्रौषधिनिबद्धशक्तयो महोरगा इव दरिद्राः सर्वैः परिभूयमाना अपि तत्प्रतिकर्त्तुं नैवार्हन्ति।

गोमूत्रमात्रसम्पर्कात् पयोराशिरिव सर्व्वगुणविमण्डितोऽपि विपश्चिद्वरो दारिद्र्यदोषसंश्लिष्टतया सर्वेषां विरागमावहति। तथाचोक्तम्—

न विद्यया नैव कुलेन गौरवं
जनानुरागो धनिकेषु केवलम्।
पिनाकिना मौलिधृतापि जाह्नवी
प्रयाति रत्नाकरमेव सादरम्॥"

अहो! चिन्ताबुद्धिसर्व्वविशुद्धिविनाशिनि पौरुषतिरोधाने दारिद्र्ये समुपागते सति पुंसां वर्षासु गिरिनदीप्रवाहा इव विपदो विस्फारीभवन्ति, निदाघे क्षुद्रस्रोतस्वत्य इव सर्व्वाः सम्पदः क्षीणा भवन्ति, जलधरघर्षणसमुद्भूता विद्युद्विलासा इव मनोरथाः समुत्थायैव हृदि प्रलीयन्ते, निशाविलये ज्योतिःप्रकरा इव सत्त्व-धैर्य्यदयाक्षमादयः सद्गुणनिचयास्तिरोदधते, हिमक्लिष्टप्रकाशं सुधांशुबिम्बमिव वदनं परिम्लायति। किं बहुना, शरीरमपि चतुर्वर्गसाधनभूतमचिरमेव विनश्यति, अन्यकृतमपि पापजातं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तत्र लोकैः सम्भाव्यते, प्रयुज्यते च मिथ्याज्ञानकलुषितचित्तैर्धर्म्माधिकरणिकैस्तेषु गुरुतरो दण्डः। अत एवोक्तम्—

"शङ्कनीया हि लोकेऽस्मिन् निष्प्रतापा दरिद्रता।"

निरन्तरक्लेशभोगापहृतविवेका दरिद्रा महानिरयनिदानेषु पापकार्य्येषु च रमन्ते। इत्थं सर्व्वसम्पद्विवर्ज्जितास्ते अहर्निशं दुःखमेवानुभवन्ति। अत एव सुचिन्तितं वचनं महाजनानां यत्—"सर्वं नष्टं दरिद्रस्य" "सर्वशून्या दरिद्रता" इति च। दरिद्रैरनुभूयमानं दुःसहसन्तापराशिं पर्य्यालोचयतः स्वत एव मनसि समुदेति यत्—

"दारिद्र्यान्मरणाद्वापि दारिद्र्यमवरं स्मृतम्।
अल्पक्लेशेन मरणं दारिद्र्यमतिदुःसहम्॥"

निरन्तरसुखसम्भोगलालितानां पुनर्धनेश्वराणां पश्चादागतं दारिद्र्यदुःखं नितरां भवति दुस्तरम्। कथमपि नैव ते दारिद्र्यक्लेशं सोढुं प्रभवन्ति, दिवानिशन्तावन्मुह्यन्ति वै दारिद्र्यविषसंमूर्च्छनया। ध्रुवमेवोक्तं श्रीमता शूद्रकमहाकविना—

"सुखात्तु यो याति नरो दरिद्रतां
धृतः शरीरेण मृतः स जीवति॥"

दारिद्र्यरक्षसा कवलितेस्मिन् भारते कविवरेण समं समस्वरैरस्माभिरपि प्रबन्धोपसंहारव्याजेन साग्रहमुद्घोष्यते—

"तस्मादर्थमुपार्जय प्रिय सखे चार्थेन सर्वे वशाः।" इति।

२१। "अविवेकः परमापदास्पदम्।"

विवेको हि सदसद्विचाररूपः। परमकारुणिको विश्वविधाता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विविधप्राणिपरिपूर्णमिदं पृथिवीमण्डलं निर्म्माय मानवगणान् कतिपयैरितरप्राणिसुदुर्लभैरमलैर्गुणैरलङ्कृत्य महतीमनुकम्पामदर्शयत्। अत एव मानवाः प्राणिजगति समुन्नतमानसतया चकासति। उक्तेषु च गुणेषु विवेकोऽयं वरिष्ठतया समुल्लेख्यः। विवेकविरह एव अविवेकनाम्ना निर्द्दिश्यते। ये तावन्मनुजा दोषेणानेनाभिभूयन्ते, त एव प्रतिपदमापदमापद्यन्ते।

सम्मुखापतितस्य कर्म्मण औचित्येनानौचित्येन वा कर्त्तव्यत्वेनाकर्त्तव्यत्वेनवा विनिर्णयो विवेकशक्तेः व्यापारः। न हि शक्तिरियं सर्व्वत्र समानतया वर्त्तते। कर्त्तव्यावधारणे यस्य यावती भ्रमप्रमादादिपरिशून्यता, विवेकशक्तिश्च तस्य तावदुत्कर्षं भजते। विवेकशक्तिसम्पन्नो मानव एव संसारेऽस्मिन् नानाविधं महत् कर्म्म समाधाय गौरवास्पदीभवति, विधत्ते च सार्थकतां मानवदेहपरिग्रहस्य; विरहितस्तु विवेकेन शतशो गर्हितानि कार्य्याणि समाचरन् सुदुर्लभं मनुष्यजन्मेदमत्यर्थं कलङ्कयति। अस्मद्देशीयाः प्राचीनतमा आर्य्यवर्य्या अनिर्व्वचनीयां विवेकशक्तिं प्रदर्श्य नश्वरे जगत्यस्मिन् अमरतामलभन्त। कतिशो मन्वन्तराणि समतीयुः—न खलु तेषां कीर्त्तिप्रतिमूर्त्तयो बलीयसानेन कालस्रोतसा विलाययितुं शक्यन्ते। अद्यापि विवेकविमलधियां तत्रभवतां पवित्रतमानि नामानि हृदि निधाय, तैरेव प्रदर्शिते पथि यावज्जीवनं वर्त्तितुमुत्सहन्ते, सङ्कल्पन्ते वा बहुशो मादृशास्तद्वंशीयाः। परन्तु दशाननकंसदुर्य्योधनादयश्च केवलमविवेकमाश्रयन्त एव वंशेन समं विध्वंसनमवापुः।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

घोरतरेऽस्मिन् संसारारण्ये विपत्तिराक्षसी खलु निरन्तरं विचरति, अनयानाक्रमणीयो मानवस्तु असम्भवाविर्भावः प्रायेण जगति। ये तावदनवरतं विवेकरूपं रामनामकवचं हृदि निदधतितराम्, ते पुनः कदापि तया सर्व्वग्रासिन्या नाभिभूयन्ते, ते हि प्रसादतस्तस्य नानाविधानुपायानुद्भावयितुमीशते समासन्नायामापदि। इतरे तु तमन्तरा गाढतिमिरोपहतदृशो 'हा हताः स्म' इति मत्वा प्रतिपदमवसीदन्तितमाम्। विवेकपूर्व्वकं कृत्स्नं कर्म्म कुर्व्वन्त एव निखिलां सम्पदमापद्यन्ते अन्यथाचरन्तश्च विपदमिति।

एकदा उज्जयिनीनगरवास्तव्यः कश्चिदर्थपतीन्द्रः सार्थवाहो द्वित्वत्सरवयस्कस्य तनयस्य सहधर्म्मिण्या विभवराशेश्च संरक्षणादिक्रियायां विश्वस्तं बन्धुमेकं नियुज्य वाणिज्याय देशान्तरमगमत्। क्रमेणायं प्रचुरलाभपरवशो बहुतिथं समयं पुत्रकलत्रादिवियुक्तः प्रवसन् अयापयत्। आत्मजस्तु तस्य बन्धुजनेन प्रत्यवेक्ष्यमाणः क्रमशो विविधविद्याशिक्षादिभिः सम्यगुन्नतिपदमलभत। इत्यवसरे कश्चित् कविवर उज्जयिनीमागत्य प्रचारितवान्,—अस्ति ममान्तिके कश्चित् सहस्ररजतमुद्राविक्रेयः श्लोकः, यस्मै रोचते क्रीयतां तेनायमिति। स तु बालकः प्रचारमिममाकर्ण्य कुतूहलाकुलमानसो मातरमनेकशोऽनुरुध्य तेनैव मूल्येन तं श्लोकं क्रीतवान्। अनन्तरमतिधवलोपलखण्डे स्वर्णाक्षरेण तं लेखयित्वा पर्य्यङ्कस्य पार्श्वत ऊर्द्ध्वदेशे प्रतिष्ठाप्य वासभवनमभूषयत्। क्रमेणोदितयौवनो वणिक्तनयो गृहस्थि-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तान्मूर्त्तिमतो गुरोरिव तस्मात् श्लोकात् महतीं शिक्षामाददे। तत एव क्रीतात् कल्पतरोः प्रसूतं फलमुपभुञ्जान उज्जयिन्याः समुज्ज्वलरत्नभूतोऽयमिति आबालवृद्धैरापामरराजभिर्निखिलैरेव नगरवासिभिरगायि। एकदा स धनकुबेरः सार्थवाहः स्वागमनेन जन्मभूमिमलञ्चिकीर्षुः सहधर्मिण्याः पातिव्रत्यं परीक्षितुमना अतीतप्रथमयामायां यामिन्यां स्वजनैरज्ञातं स्वपुरीमुपे : गवाक्षजालेन प्रधानकक्षमधितिष्ठन्तीं पत्नीमनु नयनाम्बुजमुपाहरत्। अपश्यच्च तदानीं केनचिदभिनवयौवनेन साक्षादेव मन्मथेन पुरुषसिंहेन समं निरपत्रपेव तदीया सहधर्मिणी विविधमालपतीति। तत्क्षणादवधारितपत्नीदौःशील्यो दुःसहरोषपरवशस्तयोः शिरसी चिकर्त्तिषुस्तरवारिकरः सवेगं कक्षान्तरालं प्रविश्य प्रदीपालोकसमुद्भासिते तत्र श्लोके शुभदैवपातितदृष्टिः शिथिलितोद्यमः स वेपथुमद्वपुः पत्नीमपृच्छत्—"कोऽसौ ते शयनीयं दूषयति दुःशीले!" सा च तथा पतिमायान्तमालोक्य, 'रक्ष रक्षे'ति तारतरस्वरेण चरणयोर्निपत्य, यथायथमखिलं निवेदयामास। क्रमेणापसृतसन्देहः प्राप्तप्रकृतिर्धिक्कृतनिजमनीषः सञ्जातविस्मयः "कुत इदममूल्यं श्लोकरत्नं सङ्कलय्य कुलमिदमलमकारी"ति पुनः पृच्छन् तद्वृत्तान्तमपि सम्यक् तया सहधर्मिण्या निवेदितो बभूव। अथ वणिग्वरः श्लोकस्य संख्यातीतमूल्यतामुपकीर्त्तयं तनयमङ्कमारोपयन् मुदमतुलामुपलेभे।

सोऽयं श्लोको महाकवेर्भारवेः सुधाकरभूतया लेखन्या सुषुवे। यथा—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

"सहसा विदधीत न क्रिया-
मविवेकः परमापदां पदम् ।
वृणते हि विमृश्यकारिणं
गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः ॥" इति ।

अपरञ्च तस्यैव—

"अभिवर्षति योऽनुपालयन्
विधिवीजानि विवेकवारिणा ।
स सदा फलशालिनीं क्रियां
शरदं लोक इवाधितिष्ठति ॥" इति ।

२१ । "पिता स्वर्गः पिता धर्म्मः"

यस्य खलु प्रसादादयमद्य शरीरिणामन्तिके श्रेष्ठतमं पदमधिकृत्य कर्म्मभूमौ विचरामः यश्च शरीरपातेनापि सततमस्माकं विदधाति मङ्गलम्, यश्च बहुलायासलभ्येनापि धननिकरेण शिक्षादिकं व्यवस्थाप्य मनुष्यरूपेणास्मान् परिणिनमयिषुरनेकानुपायानवलम्बते, शीतातपक्षुत्पिपासाक्लिष्टोऽपि वस्त्रान्नभोजनपानादिदानेन पुष्णातितरामविरतमस्मान्, सततमनुवर्द्धयति च शरीरमिदम्, स परमकारुणिकः पितैव स्वर्गः, स एव धर्म्मः, स एव महतोऽपि महत्तपः । अस्मिंश्च जन्मदातरि देवे सन्तोषमापद्यमाने निर्जरा अपि निखिला नितरां प्रीयन्त इति वचः सर्व्वथा खलु वितर्करहितम् ।

अहो वयं मूढतमास्तावत् । यतः प्रत्यक्षतो विराजमान-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मीदृशमीश्वरं परिहाय नानाविधकूटतर्कवितर्कजालसमाच्छन्नं शास्त्रनिर्व्वाचितमदृश्यमीश्वरमुपासितुं यतामहे। न च तावदित्थं किमपि वस्तु जगतीह वर्त्तते, यत् पुनरनुकर्त्तुमर्हति स्नेहकल्पपादपस्य परमकारुणिकस्य पितुः स्नेहस्य लेशमपि। यावन्न वयमन्नपानादिकं हस्ताभ्यामुत्तोल्य भोजनादौ समर्था भवामः, तावत् सोऽस्मान् भोजयित्वा सर्व्वथा रक्षति। स्वयं क्षुधानलज्वालया दन्दह्यमानोऽपि प्रथममस्मदीयं जठरजातवेदसं सन्तर्पयति। रोगाक्रान्तेषु च पुत्रेषु चिन्ताकुलः पिता, बहुलायाससाध्येनापि धनेन चिकित्सां विधाय रोगमुपशमयितुमनिशं विदधाति यत्नं, कतिविधैर्वा शान्तिस्वस्त्ययनादिभिर्दैवकार्य्यैर्विपदमपनेतुमतितरां यतते च। जीवति तु जीवनदातरि जनके, येन केनापि कारणेन पुत्रः काममपि विपदं नापद्येत, येन च स धर्म्मपरायणो भूत्वा ऐहिकं पारत्रिकञ्च सुखमुपभुञ्जीत, अशेषक्लेशमुपसहमानोऽपि पिता तदर्थमहर्निशं शतश उपायानवलम्बते। निदाघे प्रखरतरं सहस्रकरकरं शिरसा विधृत्य, शीतागमेऽपि विरहितशीतारिवासास्तरुतलमुषित्वा गत्वा च देशाद्देशान्तरं पोषणार्थमात्मजानामुपार्जयति धनम्। शयनशय्याशयानोऽपि निरतिशयवात्सल्येन स्वाभीष्टदेवमपि विस्मृत्य "क्व मे पुत्रः क्व मे पुत्र" इति जल्पयति, चिन्तयति च शेषमुहूर्त्तमपि "कथं मे सुतः सुखी भविष्यति" इति। अहो संसारमहारण्यस्य परममवलम्बनं देवः पितास्माकम्।

अथ यदि दयावतारः पिता जन्मत इत्थं श्रेयोविधानाय न यतेत, तर्हि प्राणानिमान् धारयितुं कथमपि न वयमलं भवामः।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पोषणात् शिक्षादानाच्च पितैव महान् गुरुरिति वेदेषु च कीर्त्तितम्। तस्मादननुसन्धित्सुना दोषान् पुत्रेण सर्वथा पितुराज्ञा पालयितव्या। पितुः शासनावस्थितस्य पुत्रस्यापि हृदयमणुमात्र-मपि न कलुषमाश्रयति। लभते च परमामुन्नतिं पितृपरतन्त्र एव पुत्रः। दैन्यदशाग्रस्तोऽपि, हृतसर्वस्वोऽपि, बलविहीनोऽपि, समाज-च्युतोऽपि, येन केनापि वा कारणेन नितरामशान्तिपूर्णस्वान्तोऽपि सुशीलमात्मपरतन्त्रं पुत्रमवलोक्य सततमात्मानं धनाधिपधुरीणं सर्वस्वपूर्णसंसारं निरामयवपुषं सहस्रमत्तमातङ्गबलशालिनं निखिलसमाजनेतारं विमलशान्तिसुधाप्लावितसर्वाङ्गञ्च मन्य-मानोऽनिर्वचनीयमानन्दमनुभवति पितृदेवः। अविनियतनयः स तु वसुन्धराधीश्वरोऽपि दीनहीनः, बलवानपि बहुतृणं, परिपुष्ट-स्वास्थ्योऽपि महाव्याधिव्याप्तवपुष्कः, रात्रिन्दिवमुदग्रया दुःख-दहनशिखया दंदह्यते। संसारस्तावदेतस्य घनतरतिमिरपरिपूर्ण-तया प्रतिभाति। ईदृशस्तु पिता प्रासादादरण्यं, किंवा जीवना-न्मरणमेव शान्तये कामयते।

किं पुनः पल्लवेन, स एव पिता सम्यगनुभवति—यथा मर्म्म-निकृन्ततितरामवश्यपुत्रता-कृपाणधारा। अतस्तनयेन तथा सततमाचरितव्यं, यथा जनकः कयमपि न विरजति; तस्य सन्तोषविधानमेव पुत्रस्य संसारयात्रां सफलयति। परलोकपारावारं तितीर्षोरात्मजस्य पितृतर्पणं खलु महान् प्लवः। यश्च तनयः पितरं सन्तर्पयितुं पराङ्मुखः स नियतं जगत्पितुरप्यपराध्यति। पितरं द्विषन् अश्वमेधेन यजन्नपि निरयपदवीं निर्म्माति। पितरि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विरजंश्च कृतघ्नतया निर्द्दिश्यते। कृतघ्नस्य निष्कृतिः केनापि कर्म्मणा विधातुं न शक्यते। शास्त्रञ्च तथैव मुनीनां "कृतघ्ने नास्ति निष्कृति"रिति।

पितृतर्पणं स्वर्गमनुवासयति, निखिलं धर्म्मं प्रसूते, सर्वं तपःफलं जनयति च। पितृसेवनेनैव निखिलधर्म्मप्रकर्म्मणः सिद्धिर्भवति, सुराणां तृप्तिरपि तत एव सुतराम्। अतः साधु खल्विदमुच्यते मुनिभिः—"पिता स्वर्गः पिता धर्म्मः" इत्यादि।

२२। "स्वधर्म्मे निधनं श्रेयः परधर्म्मो भयावहः।"

जगति खल्वस्मिन् धर्म्म एव प्रधानसहायो जीवानाम्। आदौ विधात्रा सृष्टिकाले धर्म्माधर्म्मौ विचार्य्यैव जीवाः सृज्यन्ते, यस्य पूर्व्वजन्मकृतकर्म्मणा यादृशमदृष्टम् उपचितमात्मनि नित्ये वर्त्तमानमभवत्, तदनुसारेणैव तत्तदात्मानो देवसंसर्गिणः कृताः, सुखानि दुःखानि च भोज्यन्ते। तथाच पूर्व्वस्मिन् जन्मनि यानि यानि कर्म्माणि संसाध्यन्ते स्म जीवेन, तेषां असत्कर्म्मणा असदृष्टमधर्म्माख्यं, सता च कर्म्मणा शुभमदृष्टं धर्म्माख्यं लभ्यते ; धर्म्मेण स्वर्गादिलाभः अधर्म्मेण च नरकादिभोगः। विधातापि यावान् यस्यात्मनि समुपचितो धर्म्मः—तावन्तमेव विचार्य्य मनुष्यकीटपतङ्गादियोनिषु जीवान् सम्प्रेष्य संसाधयति संसाररचनां, शिक्षयति च तत्त्वज्ञान् शुभकर्म्मणा शुभफलविज्ञापनेन शुभकर्म्मणः कर्त्तव्यताम्, अशुभकर्म्मणा अशुभफलविज्ञापनेन अशुभकर्म्मणः सुतरामात्मना परिहेयताम् ; प्रभावः सत्कर्म्मणा, परिभवश्च असत्कर्म्म-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

णेति। तथा च श्रूयते—शतेनाश्वमेधयागानां शुभादृष्टं समुज्जृम्भितमात्मनि दुःखासम्भिन्नसुखरूपे स्वर्गे परमैश्वर्य्यं निर्वर्त्तयति, निवर्त्तयति साधारणविषयेषु भूयः सम्भूतां स्पृहां पीयूषपानपरमानन्दसम्भोगस्तस्मादेवालौकिको निष्पन्नः, कमलापरिभाविरूपोत्कर्षेण रमणीकुलललामभूता विद्याधर्य्यस्तमेवैकमुद्दिश्य ललितं गायन्ति नृत्यन्ति विलासञ्च बहुलं परिदर्शयन्ति। परितः समवस्थिताश्च देवास्तदाज्ञापालनाय सतृष्णा वर्त्तन्ते। यत्र तदीयाज्ञा प्रवर्त्तते स एवात्मानं कृतार्थं मन्यमानः सोत्साहं कर्मसम्पादनाय प्रतिष्ठते, व्यवतिष्ठते च कियान् सुखसम्पातः परिसमाप्तस्तत्रैव दशायां जगतां पार्थिवसुखानां शान्तिमयोऽवधिः। शिवस्य सुचिरमुपासनेन विभूतिभूषिताङ्गतया रुद्राक्षभूषिततया सर्व्वत्रैव शिवपरिगृहीते वस्तुसमूहे परमासक्तिमुपगत आमरणं शिवमेव सर्व्वदेवानामधीश्वरं मत्वा संसारेष्वनासक्त इवावतिष्ठमानः शिवशिवेति नाममात्रसारमेव शब्दराशिं परिकल्प्य अन्ते शैवमेव लोकमात्मनिवासाय लभते। तत्र नोपतिष्ठते संसारस्य दुःखपूर्णः कोलाहलो नाम। सर्व्वदैव परमानन्दस्तत्र, संसाधयति स्वयम् अन्नपूर्णा क्षुधितानां भोज्यवस्तूनि, चिरं प्रवहन् मलयसमीरो वा तत्स्पृशः सुरभिरपरो वा निर्व्वापयति श्रान्तदेहस्य स्वेदलवान्। निरुपमानि कुसुमान्तराणि विकीर्य्य समन्ततः सौरभराशिं परितर्पयन्ति भक्तानां घ्राणद्वारेण हृदयकेन्द्रम्। ईदृशानि ननु सञ्जायन्ते सुखानि शास्त्रसिद्धसत्कर्मरक्तानां जीवनिवहानाम्। शास्त्रनिषिद्धान् विषयानाचरन्तश्च पातकिनो भूयो भूयः समुपगच्छन्ति कठोरतम-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दुःखधारां तत्फलीभूताम्; तथा चास्ति यमपुरे नरकाख्यं किमपि कष्टभोगस्थानम्, तत् मरणात् परमाकृष्यते जीवो धर्म्मराजदूतेन, आकृष्टश्च नीयमानो यमपुरं स खलु धर्म्माधर्म्मविचारेण मृत्युना दण्ड्यते अभिनन्द्यते च। मुहुः पापकर्म्मकारी नरके निपात्यते, पुण्यकर्म्मकारी च स्वर्गादिभोगाय पुनः स्वर्गादौ प्रेष्यते। अत एव धर्म्मस्य सुखैकसाधनस्य समाश्रयणीयत्वम् अधर्म्मस्य च नरकादि-कठोरदुःखहेतुभूतस्य परिहेयत्वमुपेयते। स च धर्म्मो जातिभेदेन आचारभेदेन च भिन्न एव उपतिष्ठते। तथा च ब्राह्मणानां वेदाध्ययनं कर्त्तव्यं, तेन च कर्त्तव्येन वेदाध्ययनेन समुपजायते ब्रह्म-विज्ञानादिसमुपयोगिपवित्रतासमुल्लासः इत्यादि। तदेव च वेदाध्ययनमकर्त्तव्यं शूद्रादिनीचजातीनां; नीचजातयो हि वेदमधीत्य पुण्यं विना पातकमेव समर्जयन्ति, येन नरकादिनिकृष्टस्थानादि-लाभेन दुःखभोग एव सिद्धः स्यात्। ब्राह्मणानां ब्रह्मगायत्री सम्पूर्णाङ्गा आराधिता कामप्रदा भवति, सैव च अपरेषां सम्पूर्णाङ्गतया आराधिता अनधिकारप्रवर्त्तनजन्यं पापमेव निर्वर्त्तयति। वर्त्तन्ते बहुला एव धर्म्मा जगति प्रचलिताः प्रतिष्ठिताश्च। बहुलादेव कालादारभ्य ते ते धर्म्मा मनीषिभिः सुचिरं स्वीकृताः प्रतिपादयन्ति तद्धर्म्मावलम्बिनां परममेवोपकारम्, अपसारयन्ति च यं कञ्चिद् विकारमुत्पद्यमानं सुसमञ्जसम्। पूर्व्वपुरुषप्रचलितो येषां यादृशो धर्म्मः सिद्धस्तैस्तत्रैव धर्म्मे रतिमास्थाय संसारे वर्त्तनीयं, तेनैव भवति परिणामे शुभं, पुराणसिद्धवस्तुपरिग्रहश्च; तस्मिन्नेव धर्म्मे निष्ठितस्य भक्तिः परिगृहीता भवति। पूर्वपुरुषे-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्तर्पणजलाञ्जलिमात्नतृप्तिसाधनाय कामयमानैः परितोषिताश्च तैरेव धर्म्मव्यवहारैः सकलार्थकल्पद्रुमा देवनिवहाः सर्वमर्थं भक्ताय प्रददति। परिवेपमानाश्च पापप्रवाहास्तत एव समपसर्पन्ति क्वचिदतिगूढे गिरिगह्वरे, यतो न संवीक्षते अपाङ्गसंसर्पणेनापि स पुण्यकर्म्मा जीवः। तद्विपरीतवर्त्ती लोके शास्त्रे च तिरस्क्रियते, यो नाम स्वजातिप्रचलितां धर्म्मपरम्परां तृणाय मत्वा धर्म्मान्तर-मुत्कृष्टं जानन् असङ्कोचं तत्रैव चेतसः सुचिरमासक्तिं संवर्द्धयति। तेन तेन धर्म्मव्यवहारेण व्यवहरंश्च आपातदर्शिभिरपि ह्यालिकैः पूर्व्वपुरुषधर्म्मपरित्यागेन तदपकर्षबोधात् सङ्गमपि तस्य पापकरं मत्वा दूरे स्थीयते। पूर्व्वपुरुषाश्च स्वधर्म्मपरित्यागिनः सन्तानस्य धर्म्मान्तरपरिग्रहेण आत्मनोऽपवित्रतां ज्ञात्वा तेन प्रदत्तां पितृ-पुरुषसमुद्देशेन तर्पणजलधारां ग्रहीतुमपारयन्तः सुचिरं तृष्णातुराः क्षामकण्ठा धूलिषु लुण्ठितोत्तमाङ्गा विषीदन्ति, प्रसादलेशमपि नासादयन्तः स्वसन्ततिं सतीमप्यसतीमनुशोचन्ति। आत्मभाग्य-दौर्गत्यनिर्णयेन च मुहुः परिक्लिष्टाः सकष्टमेव मुहूर्त्तमपि युगसाम्येन क्षपयन्ति। यस्मिन् सम्प्रदाये ये ये आचाराः शास्त्रविहिताः परम्परागताश्च, तद्विपरीतानुशीलनेन धर्म्म एव विपर्य्यस्यति, यतो धर्म्मानुसारेणैव अनुष्ठाननिर्वाचनं शास्त्रकाराणां श्रूयते। निज-जातिगतं भावं परिहाय जात्यन्तरभावादाने कस्यचिद्वायसस्य महदेव दौर्गत्यं यथा—कश्चिद्वायसो वनान्तरे भ्राम्यन् एकदेशे पतितान् कांश्चिन्मयूरपिच्छान् अवलोकयामास। अवलोक्य च तानसौ वायसः सानन्दं चिन्तितवान्—अहो दैवप्रकर्षः! नूनमियं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मम भाग्यवशादेव पिच्छानां सम्प्राप्तिः, एतैश्च पिच्छैः शरीराभ्यन्तरं-सन्निवेशितैरहं मयूरोभूत्वा पदप्रशस्तिं लप्स्ये इत्येवं निश्चित्य प्राप्तान् मयूरपिच्छानात्मशरीरे गहनभावेन सन्निवेश्य निजपक्षस्य कालिमानं प्रच्छाद्य 'मयूरोऽस्मी'ति मत्वा मयूरयूथेन सह मिलितो बभूव। तत्पूर्व्वञ्च काकजातिमभितस्तिरस्कृत्य स्वजातिसङ्गं मनसा कर्म्मणा च परिविवर्जयामास। अथ यदा स्वजातिसमुचितपक्षधारिणमपि वायसमात्मभावगोपनेन मयूरोऽस्मीति वदन्तं वायसमेव मयूरा विज्ञाय चञ्चुभिस्तदङ्गात् पिच्छान् उत्पाट्य सक्रोधं रक्ताक्तदेहं चक्रुः, तदा गत्यन्तरविरहितः पुनः स्वजातीयैः सह मिलनमभिलषंस्तैरपि मुहुस्तिरस्कृतो विवर्जितश्च आत्मनः परकीयवस्तुना समुपाहृतेन कृत्रिमं भावमुत्पाद्य स्वजातिपरिहारेण परजातिसम्बन्धाकाङ्क्षां निन्दन् मनसा निर्द्धारयामास—"स्वधर्म्मे निधनं श्रेयः परधर्म्मो भयावहः।" इति।

२४। "सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः।"

गिरो नाम सरस्वत्यधिदेवताकाः शब्दाः। ताश्च सरस्वत्याः शरीरतया व्यवह्रियमाणाः सरस्वत्या यावद्भिरेव नामधेयैरभिधीयन्ते। गिरो हि लोकानां मनोगतं भावमपरेषु विज्ञापनावसरे समुपयोगिन्यः काम्यसाधनाय नियोजनादिषु महतीं प्रयोजकतामुपयान्ति। तस्याश्च शब्दरूपायाः सरस्वत्या बहुविधाः स्वरूपा भवन्ति—कोमलाः कठोराश्च, ये नाम कोमलाः सुकोमलपदसंघ-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

टनाघटितास्त आपातदर्शिनां केषाञ्चिन्मानसतले समुत्पाद्य सुख-धारां विरमन्ति, रमयन्ति च शब्दालङ्कार-पारदर्शिनो नव्यान् कांश्चित् कविमुख्यान्। त एव कठोरा अपि गभीरार्थतत्त्वमभि-धेयतया समादधानाः शब्दा गभीरार्थविदो लब्धप्रतिष्ठान् मदयन्ति काव्यालापविशदीकृतचेतसो वीतापरागानुरागानभिज्ञान्। पुनः पुनरभ्युदेति दितिसुतानामिव सुधायाः पानवासना तेषां निर्म-लार्थकाव्यकथानुशीलनकाम्या सौम्या निस्तारतम्या। तैरेव शब्द-रूपसङ्केतैरेकः परमवगमयितुमीष्टे स्वं मनोभावं निजावस्थादि-विज्ञापनेन लब्धु मर्हति परतः करुणाधारां, निवर्त्तयितुञ्चार्हन्ति गुरवो मन्दमतीनसत्कर्म्मसम्पाताद् वश्यान् स्निग्धान्। प्रणयं वा भक्तिं वा स्नेहं वा प्रतिपादयन्त्यमी एव शब्दाः शरीरसङ्केतसह-चरिताः साधारणेषु रणेषु वीर्य्यप्रकाशे अरण्येषु महाविपज्जनकेषु हिंस्रजन्तुबहुलेष्वनुपलब्धसहायान्तरेषु विपन्नस्य सिंहादिभीति-विह्वलस्य स्वयमात्मत्राणासहस्य परात् परित्राणे सोत्कण्ठं सोरस्ताडं तारं करुणञ्च विलापेन सहायसंग्रहविधौ विधूतसकल-काननोपकण्ठाः समालोडितारण्यसदजीवनिवहाः समुपयुज्यन्ते शब्दा एव प्रसर्पन्तः करुणरसधारामुल्लासयन्तः समस्तकानन-मन्तरा। सुदूराच्च भयमूढजननिकरसान्त्वनाय प्रयुक्ता गभीर-भावयुक्ताः सुरक्तभावानुषक्ताः समुच्चैरुच्चारिताः सञ्चारितभीताभया व्यक्ता द्रवयन्ति तेषां विपन्नजनानां प्राणावस्थानशङ्कितानामापात-विपत्पातशङ्कां हृदयेनाङ्गीकृताम्। ते च शब्दा देवानां गुणप्रशंस-नाय समवस्थापिताः पूजादिषु प्रयुज्यन्ते, तेन च निर्म्मलप्रयोगेण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समाकृष्टा देवा दिव्यं किमपि पुण्यफलमात्मनि वितीर्य परम-पुरुषार्थादावानुकूल्यमावहन्ति जनयन्ति महान्तमेवाशुभसम्पात-विरोधम्। गुरुजनादिभिः सह विनीतव्यवहारे व्यवह्रियमाणाः केऽपि जगति कामपि शिक्षामसमां प्रचारयन्ति, सन्तोषमापादय-न्तश्च गुरुजनानाम् अन्तःकरणेषु बहुलं शुभमेव उपहरन्ति विनी-तानां वश्यभूतानाम्। प्रायेण एव भूतानि तेन विनीतव्यवहारेण प्रसादमुपगच्छन्ति प्रयच्छन्ति च मधुरवचोभिः सन्तोषनिर्वर्त्तकाना-मुपकारप्रचयं; तैश्च महदुपकृताः फलमनुभवन्ति विनीतवाग्-विसर्जनकर्त्तारो निजसाधुवाग्विसर्जनस्य विनीतभावेन वर्त्तनस्य च निरन्तरम्। केचिच्च साधुजनमुखोच्चारिताः सन्तः सन्ततमसद्वृत्तेर्वि-निवर्त्तका दीपवर्त्तिका इव तमोवृत्तीनां सन्तं पन्थानं प्रदर्शयन्ति, अपनुदन्ति बुधसमाचरितविधिविचारेण तदाचरणकर्त्तव्यता-विज्ञापनेन सांसारिककलुषसम्भावनामुपदिशन्ति नानाविधानेव पारलौकिकानैहिकांश्च विभवसमुदायान्। सदयं वीक्षमाणा इव विनाशयन्ति जनानां दौर्गत्यं, स्वर्गसमानं सम्पादयन्ति तदुपदेश-ग्राहिणः सदभिमानिनो जनस्य पार्थिवमपि संसारगृहम्। धर्म्मतत्त्वेषु नीतिसारेषु प्रणयादिसरसवस्तुषु च सुतरामयमेव शब्दसन्धः शिक्षयति लोकान् शिक्षाभिलाषिणो मन्दानमन्दानपि स्वीयसिद्धस्वभावेन। तथाच बाल्यात् वाङ्मयमेव वर्णशिक्षादि-शास्त्रमालोच्य क्रमेणोपजातशब्दपरिचयाः शब्दशास्त्रं काव्यग्रन्थान् दर्शनस्मृतीतिहासपुराणादिकं बहुलमेव पदार्थजातमालोचयितुं शक्तिमर्जयामः। बहुकालं समाचरितेन तपसेव सुचिरमुपास्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शब्दनिवहान् तत्र तत्र विषये काञ्चित् प्रशस्तां व्युत्पत्तिमुपागच्छामः, यथेष्टमिष्टसाधनाय शब्दान् व्यवहर्त्तुं शिक्षामहे, समर्थयमानाश्च यथाभीष्टमभीष्टपदादिसन्निवेशने परेणाभिलषितसम्पादनाय प्रभावं लभामहे। अमी च शब्दा देशभेदेन बहुविधा इति विदितमेव भाषापर्य्यालोचकानां बहुदेशपर्य्यटनव्रतिनां च मानुषाणां; तत्र सर्व्वे एव स्वीयदेशभाषासु परितृप्यन्ति दृप्यन्ति च तस्या एव भाषायाः प्रकर्षं सर्व्वात्मना साधयितुम्। तत्र न सुनिश्चितं शक्यते कल्पयितुं यत् एकैव भाषा भाषोत्कर्षविशेषं दधाना भाषान्तराणि पराजयते इति। किन्तु इदमस्ति प्रतिपादयितुं सामर्थ्यं यत्—संस्कृतभाषैव सर्व्वोत्तमा, यतः सा देवैरपि स्वभाषात्वेन परिकल्प्य व्यवहारोपयोगितां नीता, तथा चापरं नामास्य देवभाषा इति। अनादिसिद्धस्य च वेदस्य तयैव देवभाषया निबन्धोऽपि तस्याः प्रकर्षातिशयमेव निर्व्वाहयति, भाषान्तराणि च क्रमेण देवभाषामेव मूलभूतां स्वप्रभवतया समाललम्बिरे। सुचिरं जातभङ्गस्य च भाषान्तरस्य नोपलभ्यते लेशतोऽपि संस्कृतभाषासादृश्यस्थितिः, भाषाविशेषेषु प्राकृतादिषु कथञ्चिदस्ति सादृश्यं, किन्तु सा सम्प्रति प्रायेण व्यवहार्य्यतया न लभ्यते, लब्धापि कुत्रचित् सैव प्राकृतभाषा पुनः प्रकारान्तरमध्यारोह "पाली" इति प्रसिद्धभाषासु। तासु तासु भाषासु किमपि वाक्यं नास्ति यत् सर्व्वेषामेव तुल्यवृत्त्या मनस्तुष्टिमातनोति। एकमेव वचनं कस्यचित् तृप्तिसाधकं तदितरस्य कस्यचिन्महाविरक्तिसम्पादकं शत्रुमित्रभावेन सह तत्र तृप्यत्तृप्योः समन्वयो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दृष्टः। तथा च गुणवन्तं कमपि जनं यद्यहं गुणवशीभूतः प्रशंसयामि, सर्व्वतस्तत्र प्रकर्षं प्रकाशयामि, सर्व्वत्र एव पर्व्वतसमानं स्थैर्य्यं सागरसदृशं गाम्भीर्य्यं चन्द्रादिसाम्यञ्च यशःप्रभृतिषु समालक्ष्य यत्र तत्र तस्य सर्व्वोत्तमतामावर्त्तयामि, स एव प्रकर्षवादो यदि तदीयशत्रुजनस्य कर्णे गतः स्यात्, तदा तस्यैव द्वेषं तत्र सम्पादयेत्। युद्धादिषु प्राणैः पणैर्युध्यमानयोः पक्षयोरेकस्य पक्षस्य जयोऽपरस्य च पराजयो निश्चित एव। तत्र पराजितः पक्षो विजयिपक्षस्य प्रकर्षं शृण्वन् आत्मनश्च पक्षस्यापकर्षं भृशमुन्मनायते, विजयी च पक्षः सुतरां तेनैव प्रशस्तिवादेन परपीडाकरेणानन्दमभिविन्दते। एवं पक्षप्रतिपक्षभावेन स्थितयोः सर्व्वविषयेष्वेव एकप्रकर्षवादो न सन्तोषमादधाति परपक्षस्य। पक्षप्रतिपक्षभावविरहेऽपि न सर्वस्य कापि वाणी सन्तोषमुपहरति, सरलार्थे वा हितकरविषयसमावेदके वा प्रकर्षनिर्व्वर्त्तके वा अपकर्षसंसूचके वा—यत्र कुत्रापि वाक्ये जनाः केऽपि स्वत एव कञ्चिद्दोषमुद्भाव्य भावयन्ति प्रयोगकारिणो महामान्यस्यापि निगूढतत्त्वानुशीलनशुद्धमतेरपि वाग्विस्तरे निन्दनीयताम्। सरलमपि वचः कठोरमिति तिरस्करोति, गभीरार्थमपि हीनार्थमिति वाच्यतां नयति, सालङ्कारमपि बहुलालङ्कारतया प्रकृतवस्तुनः स्वभावविज्ञानानुपयोगीति भृशं परिजहाति दूरे। य एव शारदशशाङ्कः कलङ्कितशरीरोऽपि सुविशुद्धसुधास्नापितसकलभुवनः सुमहान्तमानन्दं प्रयच्छतीति सादरं पुनःपुनरभिवीक्ष्यते कान्ताङ्गसङ्गतः, स एव विरहिजनदेहतापाय प्रभवन् अमितसुधावर्षी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दावदहनबोधादिव परिह्रीयते विरहिजनैः, यथा यथा स नापद्यति नयनगोचरतां तथा तथैव चेष्टन्ते विरहिजनाः सुतरां, तथाच प्रमाणमत्र भूयः सम्प्राप्तं कविमुख्यैः "यस्य न सविधे दयिता दवदहनस्तुहिनदीधितिस्तस्य। यस्य च सविधे दयिता दवदहन-स्तुहिनदीधितिस्तस्य ॥" वाचां साध्वीनामपि दोषोद्भासकत्वे कविः श्रीकण्ठः प्राह—"यथा स्त्रीणां तथा वाचां साधुत्वे दुर्जनो जनः।" एवं हि स्थितं पिण्डितं वस्तु यत्—सर्वेषां मनोरमं दुर्लभमिव वाक्यं जगति। तदेव छन्दसा गायन् कविः स्मरणीयो जातः, यथा—"सुदुर्लभाः सर्व्वमनोरमा गिरः"। इति।

२५। "वरमेकाहुतिः काले
नाकाले लक्षकोटयः।"

शास्त्रे हि कालपदं द्रव्यविशेषात्मककालवाचकं, किन्तु अत्र कालपदं योग्यकालवाचकम्, अकालपदञ्च अयोग्यकालपरम्। तथाच योग्यकाले स्वल्पमपि वस्तु विदधाति तृप्तिविशेषं दानीयस्य, अकाले च वस्तुशतमपि दीयमानं कर्मानुपयोगितया कालरूप-सहकारिकारणाभावतो न कार्य्यविषयेषु विशेषतः सार्थकतां लभते। तथाहि जगदिदं जीवति केनापि भोक्तव्यार्थेन नियतं, भुक्ता हि पदार्थाः स्वसारं पार्थिवशरीरेषु संक्रमयन्ति, तेन च सारेण प्रभावशालि जीवकदम्बकं प्रभवति स्वीयेषु कर्त्तव्यार्थेषु। जीवानामस्ति क्षुधा नाम कापि, यया अभिभूता जीविसार्था अर्थादिकं भोज्यसंग्रहहेतुभूतमन्वेषयन्ति, लब्ध्वा च येन केनापि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रूपेणार्थजातं सर्वं परित्यज्य स्वजनानामात्मनाञ्च क्षुधासमुपशमनाय परिचेष्टन्ते, अभीष्टलाभस्य प्रधानतमं कारणं शरीरपरिरक्षण-मिति मन्यमानाः सर्व्वमेव कष्टं स्वीकुर्व्वन्ति। पर्व्वता इव स्थैर्य्यवन्तः सकलामेव विपदमगणयित्वा यापयन्ति। सा च क्षुधा यदि भोज्यसंग्रहेण काले अपहृता भवति तदैव शरीरस्य यथापूर्व्वमवस्थानेन क्रमाद् वृद्धिलाभः। काले क्षुधानिवारणाय भोज्यनिर्व्वहणासमर्थाश्च दूरे तावदास्तां शरीरपरिपोषणं परं क्षुधाक्षीणतया शरीरस्य हानिमेव जनयेयुः। एवं बहुदिवसानेव क्षुधाकाले भोज्यलाभासमर्था अकाले च कथञ्चित् प्रतिपादित-भोजनोपकरणाः क्रमेण कठोरं जीवनान्तकरं रोगं वृण्वन्ति, दैन्यादिदोषनिग्टहीताश्च काले अर्थादिसाध्यां सुचिकित्सामात्मनः सम्पादयितुमशक्ता अनुरक्ता अपि जीवितव्यविषयेषु कठोरात् कठोरतरां दशामुपगताः कदाचित् केनचित् सदयहृदयेन समुप-लब्धाश्चिकित्साव्यवस्थया अभिनन्दिता अपि कालात्ययेन रोगस्य दुःसाध्यतासमुदयात् चेष्टाशतेनापि न शक्याः परिरक्षितुं कराल-कालग्रासादमी वराकाः, परं सदयहृदयस्य तस्य परोपकाररसिकस्य भूयानर्थः परिभ्रष्टो निरर्थं, न जातः कोऽपि फलोदयो नाम। अपि च शैशवकालो नराणां विद्याशिक्षायै सम्यगुपयोगो शास्त्र-सिद्धश्च। तत्र ये शिक्षकोपदेशममलं साग्रहं शिक्षमाणास्तत्र निपुणतामुपगन्तुमभिलषन्तो दृश्यन्ते, गुरुजनानामादेशानुसारेण कर्त्तव्यार्थान् सम्पादयन्ति, रम्यव्यवहारसमागमेनायत्तीकुर्वन्ति गुरुजनानां समवयसाञ्च हृदयानि, त एव क्रमेण शिक्षायाः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रभावेण उन्नतादुन्नततरं मार्गमारोहन्तः प्रभाववद्भिरभिष्टूयन्ते परिचोयन्ते साधुवृत्तप्रकर्षपरिचयेन समुन्नतजनसार्थैः। अर्थानां चिन्ता न तमाकुलीकरोति संसारनिर्वाहे, स्वजनानां कठोरं कष्टं निरीक्ष्य न तेषां परितापो लब्धव्यो लेशमात्रोऽपि, परं स्वीयचरित्र-प्रकर्षेण समुन्नतिसम्पत्त्या च परितुष्टानामविरतमेव प्रमोदस्मित-मभिवीक्ष्यते तेषां स्वजनवदनभागेषु। भागधेयसौष्ठवेन तमेव जना आदर्शीभूतं कुर्व्वाणाः सर्व्वकर्म्मसु प्रतिष्ठन्ते, अनुतिष्ठन्ति च तस्यैव साम्येन विद्योपार्जनं बाल्ये, धनोपार्जनं प्रौढे, सुवि-मलस्य सकलपारलौकिकार्थप्रधानसाधनस्य धर्म्मधनस्य उपार्जनञ्च वार्द्धक्ये। ये च तद्विपरीतं पन्थानमात्मनः समाश्रयितव्यं मन्यमानाः मानापमानमननपरिशून्याः शून्या इव समस्तेन काम्यवस्तुना शैशवे दुष्टबालकैः सह पथिषु कन्दुकादिक्रीडां, प्रौढे च समुन्मेषितरसबोधे मद्यपानादिमत्ततामेव सुचिरमलौकिकसुख-सन्तानसम्पादनपटीयसीं निर्द्धारयन्तः कामरयेण कामिनीं वारवनितामननुरक्तामपि नयनसुभगतामात्रलक्ष्यां जीवनसुखानां प्रधानसाधिकां मन्यमानास्तत्रैव सर्व्वमैहिकमभिलाषं सम्पूर्णं भावयन्ति, चौर्य्येण वा असत्कर्म्मानुशीलनेन धनमुपार्ज्य वा पितृप्रदत्तवधूजनभूषणविक्रयेण वा वेश्याजनभोगयोग्यानर्थान् संगृह्य कामयातनामात्मनः सन्निवर्त्तयन्ति। ये च विलासकर्म्म-निष्पादनाय सर्व्वमेव सद् वा असद् वा विधानं रचयितुं प्रवर्त्तन्ते, नास्ति किमप्यसाध्यम् असत्कर्म्म तेषां दुरात्मनाम्। वार्द्धक्ये च पर्य्यटनादिशक्तिविरहिताः स्वपरिपोषणायाप्रभवन्तः प्रबलेन

१—रचना।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कृतानामसत्कर्मणां परिचिन्तनानुतापेन अभिभूताः कुकूलदहन-ज्वालाभिरिव दह्यन्ते, अभिभूयन्ते च सर्वैरेव सदर्पम्। तथाच प्राचीननिबन्धः—"बाल्ये च नार्जिता विद्या यौवने नार्जितं धनम्। वार्द्धक्ये नार्जितं पुण्यं चतुर्थे किं करिष्यति॥" इति। अचेतनेष्वपि शस्यादिषु कालनियमः प्रशस्यते, यथा प्रथमतः क्षेत्रं कर्षणेन संस्कृत्य हालिकास्तत्र जलादिदानेन भूमेः सरसतामुपपाद्य बीजं निक्षिपन्ति, कर्षणादिनैपुण्येन च यथाकालं मेघमुक्ता वृष्टिः शस्यजननक्षामर्थ्यं क्षेत्रस्य सञ्जनयति। ततः क्रमेण बीजादङ्कुरा अङ्कुरेभ्यश्च बहुलपत्रकाण्डसमुद्भवः। ततस्तत्रैव शस्यानां सम्भवः, परिणतेषु च शस्येषु च्छेदनं धान्यवृक्षाणां, तानि च शस्यानि परिणतानि यदा एव पूर्णाङ्गतामुपयान्ति, तदैव च्छेदनं शस्यानां मङ्गलमयं, तदनन्तरन्तु बहुलतया परिणामे छेदनार्थं स्पर्शमात्रेणैव सलिलादिषु परिभ्रष्टानि शस्यानि हालिकानां महदनिष्टमेव समुपपादयेयुः—शस्यानां शिथिलमूलतया आमूलं पतनेन काण्ड-मात्रस्यैव च्छेदेन लाभात्। आदौ च भूमिकर्षणादीनां यथाकाल-मनिष्पादितत्वे भूमेरुर्वरतैव विनष्टा कर्षकाणामिष्टव्याघात-जनिका स्यात्, विपद्यते च जीवनावलम्बनशस्यविरहेण समस्तो जीवलोकः। अत एव शिक्षादीनां विषयमात्राणामेव शास्त्रकारैः कालनियमः कृतः—यतो बाल्याद्यवस्थासु मेधादिकानां शिक्षा-द्युपयोगिनां बाहुल्ये नावस्थानात् सुव्यवस्थिताः शिक्षादयो भवन्ति। मृत्पिण्डसमर्पितेव रेखा कदाचिदपि परिणामे नापक्रमति शिक्षा। तद्यथा प्राचीनसंवादः—"यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भवेत्। कथाच्छलेन बालानां नीतिस्तदिह कथ्यते ॥" तथाहि काले निर्वर्त्तितः सर्व्व एव विषयः स्वल्पायासेन साध्यते, अतिक्रान्ते च काले जीवनेनापि पणीकृतेन न सम्पादयितुं पार्य्यते अभिलषितो विषयनिवहः। बाल्ये यस्य विषयस्य एकदिवसं परिश्रमेण साध्या शिक्षा, स एव विषयो वार्द्धक्ये मेधादिशैथिल्येन मासं शिक्षयापि नोपधार्य्यते हृदयेन। कालो हि सहकारी सर्व्वत्र विषयेषु, ततश्च य एव कालो यत्रोपयोगी तस्मिन्नेव काले तत् कर्त्तव्यं नान्यत्र, अन्यकाले कृतं हि कर्म्म विफलायते इति आलोचितं परिदृष्टञ्च बहुश एव, तदिदं सूक्तं कस्यापि—"वरमेकाहुतिः काले नाकाले लक्षकोटयः।" इति।

२६। "दुर्बलानां बलं राजा।"

विधातुरिदं सयत्नकल्पितं विश्वम्। अत्र यावन्ति वस्तूनि वर्त्तन्ते, तानि सर्वाण्येव यथायथं विनिहितानि सम्पादयन्ति शोभां जगताम्। यद्वस्तु यथा वर्त्तते, तस्य व्यत्ययेन मन्ये जगति तथा शोभा नाभविष्यत्, अत एव निश्चीयते जगन्निर्म्माणकर्त्तुः कापि समीचीना निपुणता नाम। कान्तारे सन्ति विधात्रा परिकल्पितानि शैलकदम्बकानि तेषाञ्च शिखरेषु श्यामलपलाशशोभिताः पुष्पवन्तः शान्तसमीरविधूतकाण्डाः प्रकाण्डपादपाः,—तत्र च नीडानि सुरचितानि विहङ्गमानां, यतः प्रभाते ताल-लय-शुद्धगीतानीव प्रभवन्तो मधुराः शब्दा मनो मदयन्ति, मदनभावातुराणामिव शान्तरसनिषिक्तमनसां सुतपसाम्; प्रसादपरिस्खलितमलाश्च

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भूयो भिल्ला वा हिंस्रजन्तुनिवहा वा कुतोऽपि विसर्ज्जयन्ति कठोरामात्महिंसनवृत्तिं, स्थानस्य पुण्यप्रभावेण वा तपस्विजनाना-मविरतपुण्यचारित्रशिक्षणाद्वा नैव कदापि तेभ्यः सम्पद्यते दुर्बलानां जीवानां विपत्पातः। अन्यथा तपस एव महिमा विलुप्तः स्यात्, प्रतिपद्येत च भगवतो महामहिमशालिनः परमेश्वरस्य कोऽपि दुर्ब्बलजीवपरिरक्षणप्रयत्नविरहः। सुचिरं जगति सृष्टानां जीवानां वा अचेतन-पार्थिवादिद्रव्यजातानां वा परिरक्षणं काम्यमेव विधेः परमेश्वरस्य, अन्यथा तस्य सृष्टिरेव विफला सृष्टिकष्टञ्च बहुतया विदितं स्यात्; यदि सृष्टस्यैव फलोत्पा-दनमन्तरेणाकालविनिपातः सम्भवेदिति। तथा च दृश्यते— उद्यानपाला बहुलेन यत्नेन असीमाशाप्रपूरितचेतसो वृक्षादिक-मुद्याने रोपयन्ति, तत्परिरक्षणाय च आलबाले जलसेकादिकष्टं बहुलमेव स्वीकुर्व्वन्ति। क्रमेण तेषां रोपितवृक्षाणां शाखादि-वृद्धिमीक्षमाणाः परितुष्यन्ति, महत्या च आशया भविष्यं सुखं कल्पयन्तः कियन्तमानन्दं लभन्ते। ततो यदा तत्रैव वृक्षसमूहे फलोद्गमः सम्भाव्यते,—तदा भूतं कष्टं विस्मृत्य वर्त्तमानं सुखमेव समनुभवन्ति। तद्वृक्षस्य पत्रच्छेदमपि कष्टकरमस्य वृक्षस्य निश्चित्य तदपनोदनाय चेष्टन्ते। त एव यदि उद्यानपाला बहुलं कष्टं स्वीकृत्य प्राणैः पणैर्वोन्नतिं कर्त्तुं नायतिष्यन्त, यद्यङ्कुर-निर्वपणमारभ्य जलसेकादिना वृक्षस्य फलकालं यावत् न वृक्षस्य परिपोषणमकरिष्यन्, तदा असम्भव एव वृक्षस्य वृद्धिलाभः फलोद्गमश्चाभविष्यत्। शैशवे शिशूनां पितरौ परिपालकौ, माता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पिपासितस्य शिशोः स्तनक्षीरप्रदानेन पिपासां निवर्त्तयति, क्षुधातुरस्य भोज्यान्तरनिर्वर्त्तनेन सान्त्वयति, पिता च भोज्यादिकं दूरादाहृत्य बहुलं पर्य्यटनक्लेशादिकमङ्गीकृत्य क्षपयित्वा शारीरं सुबहुलं सारं शिशुं परिरक्षति। यथा यथा बालकस्य नानिष्टमुपतिष्ठते प्रतिष्ठते च दूरे सर्व्वविधमनिष्टसम्भावनमपि, तथा तथा निपुणमिव यत्नविशेषमारचयन्नितस्ततः परिभ्रमति। स च तस्य बालस्य भविष्यज्जीवनमुन्नतं कर्त्तुकामः शिक्षायै समुपदिशति, निर्द्दिशति च शिक्षायाः समुपयोगं, येन स परिणामे विद्यासु परमामुन्नतिमधिगत्य स्वकुलानां यशोराशिमिव सपदि सम्पादयन् भूयो भूयो निस्तरङ्गमिव प्रशस्यते जनसमाजसभ्यैः। स एव यदि पित्रादिगुरुजनसाहाय्यं नालप्स्यत तदा बाल्य एव विपन्नस्य तस्य नामापि संसारादस्माद् विलुप्तमभविष्यत्। असम्भवतान्न प्राप्स्यत् अस्य विपुलस्य स्वकुलसन्दीपनस्य यशःसमूहस्य। एवंक्रमेण सर्व्वमेव वस्तु जगति किञ्चित्साहाय्यमपेक्षते। न स्वयं कस्यापि प्रभवति शैशवे जीवनधारणशक्तिः। नापि वृक्षलतादीनां पालकान्तरमन्तरेण वर्द्धनस्य फलोदयादेर्वा सम्भावना। इत्थमेव साधारणा जना विधात्रा सृष्टा बाल्यादवस्थान्तरादौ न विधातुः स्वीयेन करेण पालिता भवन्ति, अपि तु तत्करसदृशै राजादिभिरेव। तथा च प्रजाः सकलविपत्स्वेव राज्ञा परिरक्ष्यन्ते सकलैः सत्फलैश्च नितरां सुखिताः क्रियन्ते। एवमेव राज्यविधिः प्रचलति, राज्ञः सुव्यवस्थितशासनमन्तरेण राज्यस्य महती विशृङ्खलता स्यात्। राजान एव दस्यूनामत्याचारं निवार्य्य दुर्ब्बलान् परिपाल-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यन्ति शिष्टानाञ्च शिष्टान् विधीन् प्रति दृष्टिं रक्षन्तः—विटादीनां हस्तात् तान् अभिरक्षन्ति, यथा यथा धर्म्मप्रसारः स्यात् यथा यथा च कुत्सिता विषया हीनातिहीनतां लब्धवन्तस्तद्राज्याद् बहिरेव प्रतिष्ठन्ते, नीतिशास्त्रं सूक्ष्मभावेन पर्य्यालोचयन्तः कुशलाः कार्य्यकारिणो महीपतयस्तथा तथैव सर्वासु दिक्षु दृष्टिं निपात्य सर्वेष्वेव विषयेषु सुव्यवस्थां रचयन्ति, तथाभूताश्च महीपतयो मूर्त्तिमन्तो देवा इव सम्पूज्यमाना वस्तुत एवात्मनां देवात्मकतां जनेषु प्रत्याययन्ति। राज्ञो देवस्वरूपतायां मनुप्रमाणानि सन्ति बहुलानि "सर्व्वदेवमयो हि स" इत्यादीनि। यदि जगति दुर्ब्बलानां सहायतया राजानो नावास्थास्यन्त, तदा तेषामवष्टम्भेन दुर्वृत्ताः कति नाम तेष्वत्याचारमाचरिष्यन्त निरीहाश्च सत्कर्मानुरक्ता जीवा दुर्वृत्तैराक्रान्ता आत्मशुभवृत्त्यनुसारेण कर्म्माणि सम्पादयितुमशक्नुवन्तो धर्महानिमेव स्वीकर्त्तुमग्रेसरा अभविष्यन्, दुर्वृत्ताश्च धार्मिकजनास्कन्दनकारिणः परैरप्रतिरुद्धाः शुद्धानि कर्म्माणि आपातदुःखप्रदानि परिहाय आपाततो रम्याण्येव परिणामविरसानि वस्तूनि हृदयेन कर्म्मणा च वृखन्तः शाश्वतिके धर्म्मविधौ विघ्नभूता जगतामपकारमेव महान्तमाचरिष्यन्त। उद्धतभावाश्च ब्रह्महत्यां गोहत्यां स्त्रीहत्यां वा पापसमुत्पादिकामनालोच्य तत्र तत्र प्रावर्त्तिष्यन्त। तत्तद्विषयाभिलाषाश्च दुष्टानां राजभिरेव प्रतिरुध्यन्ते, संवर्द्धन्ते च शिष्टानां दुर्ब्बलानां साधुकर्म्माणि, येन जगतां महानभ्युदयः सम्पद्येत। तथाच शास्त्रं —"शिष्टानां पालको राजा दुर्वृत्तानां निवर्त्तकः" इति।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तादृशस्य राज्ञोऽसद्भावे राज्यं विशृङ्खलं, विधातुः परमयत्न-कल्पितमिदं जगच्च विध्वस्तं पापमयञ्च स्यादिति सूक्तं कस्यापि —"दुर्ब्बलानां बलं राजा" इति वस्तुसंक्षेपः।

२७। "आ परितोषाद्विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्।"

जगति शिक्षा कापि विजयते सकलविषयसंसाधनोपयोगिनी मनुष्यप्रकर्षसम्पादिका। शिक्षया जनाः कालेन समुन्नतं ज्ञानं समर्जितवन्तः सुतरां श्रान्ता अपि चन्दनद्रवविलेपमिव शरीरे समुपन्यस्तमनुभवन्ति। शिक्षालाभाय बहुधा स्वीकृतमायास-राशिमसीममपि फललाभेन विस्मरन्ति, स्मरन्ति च शिक्षायाः फलं लभमानाः सर्व्वत्र विषयेषु समुपकारविज्ञानेन प्रकर्षातिरेकं तस्याः। तथाहि शिक्षा क्रमेण शैशवादारभ्य समवलम्बिता विज्ञापयति गुरुजनानां माननीयतां, स्निग्धानां स्नेहेन व्यवहार्य्यतां, प्रणयिनाञ्च प्रणयेन समादरणीयताम्। अणीयांसोऽपि शिक्षकस्य सुनिपुणशिक्षाप्रदानेन काले शिक्षणीयवस्तुनि सारमुपगृह्णन्तः सारवतां वस्तूनां ग्राह्यतां जानन्ति, जानन्तश्च ग्राह्यवस्तुप्रशस्तिं तमेव वस्तुभागमवलम्बमाना असमानाः सम्प्रतीयन्ते साधारण-जननिवहैः सह। यो हि पूर्वं बाल्ये चौर्य्यवृत्तिपरायणः स्वकीय-सतीर्थानां पुस्तकादिकमपहरति, सुयोगलाभमात्रेणार्थादिकमपि नोपेक्षते; तथात्वेन विज्ञातश्चादौ शिक्षकेण शिष्यते ततोऽ-प्यनिवृत्ततद्व्यापारो गृहस्थानामपरेषां गृहेषु कदाचिदुपस्थितो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

निजस्वभावसुलभां कुवृत्तिं परिहातुमेकान्ततोऽसमर्थः, तेनैव चौर्य्यभावेण अभिभूतान्तःकरणः करोति धनाद्यपहारं, धृतश्च तैरेव गृहस्थै राजपुरुषाधीनतां नीतः, सुबहुना दण्डेन दण्डितः कियन्ति नाम कष्टानि नोपभुङ्क्ते। स एव यदि केनचिद् योग्येन शिक्षकेण शिक्षाविधौ व्यापारितः स्वाश्रितवस्तुनोऽपकर्षं विज्ञाप्य तद्विपरीतपथस्य च प्रकर्षं यथायथं प्रतिपाद्य संस्थाप्यते सद्वृत्ते, तदानीं तस्य चेतसि सद्वृत्तं तथा विरूढं स्यात् यथा जगतां प्रलयेऽपि तस्य सद्वृत्तानुरागो न व्याहन्येत, तन्निदानकञ्च सत्-कर्म्मस्वेव तस्य चौर्य्यभावदूषितस्य भूयः प्रवर्त्तनं कीर्त्तनञ्च सत्कर्म्मणाम्। यश्च मायामये संसारे समासक्तो नितरामशक्तः कर्म्मबन्धमपहातुम् पुत्रकलत्रादिषु भृशं रज्यति। दुष्परिहरमाया-प्रभावेण पुत्रस्नेहमपेक्षमाणो निमेषमात्रमपि तदनीक्षणदुर्मना-यितः प्रबलेन शोकेनाभिभूयते, कलत्रप्रेमप्रवणमानसः सर्व्वमेव जगत्कृत्यं तत्सुखार्थं कल्पयति। प्राणैः पणैरपि प्रियतमायाः प्राणप्रतिमायाः परितोषलेशमपि समुत्पादयितुमग्रेसरति. अनु-सरति च तामेव शुभे अशुभे वा वर्त्मनि। तस्या यदि कदाचिद् विरहः समुपजायते तदा स जगदिदमसारं मन्यते, सर्व्वमेव सुखमयं वस्तु विषवदतिज्वालाजननमुत्प्रेक्षते, मधुरः शब्दो मधुरं रूपं मधुरो गन्धः सर्व्वमेव वस्तु तृप्तिजनकतामपहायातृप्तिमिव भूयसीं निर्वर्त्तयति। वसन्तर्त्तुसमुपगमेऽपि नालोकते जगतः काञ्चिन्मधुरतां, पूर्णचन्द्रालोकललितापि विभावरी गभीरामा-निशान्धकारदूषितेव सम्भाव्यते, स एव यदि केनचिन्मोक्षव्रतिना

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तपस्विना सम्प्राप्तः सम्प्रार्थितकेन कञ्चिद् गुरुमुपगतो वा संसारस्य असारतां निवेद्य दारपुत्रपरिजनादीनां सम्पर्कं पथिकजनेन पथिकजनस्येव क्षणभङ्गुरं विज्ञाप्य मार्गान्तरे समुपस्थापितः स्यात्, तदा सर्वं शोकादिकं मानसपीडाजननं सर्व्वञ्च प्रणयादिकमापातसन्तोषसम्पादकं हृदयादपनीय कोऽपि विमलानन्दभोगीव कृतो भवेत्। ब्रह्मविज्ञानशिक्षादिभिरभितो वृत्तं संसारानुरागं व्याहृत्य मोक्षाभिमुख एव कठोरं तपस्तप्यमानः समुच्छेदयति संसारबन्धम्। तथाच प्राचीनाः—"भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व्वसंशयाः" इत्यादि प्राहुः। स एव गुरुप्रदत्तः शिक्षाविशेषः परिणतिं गतस्तस्य पूर्व्वतस्तथा संसारसमासक्तस्य मोक्षाय कल्प्यमानः सविजयमेव समभिवर्त्तते नूनम्। सामान्यतोऽपि शिक्षैवास्मान् लोकव्यवहारेषु विनयति, तेन शिक्षाप्रभावेण परेषामुपकारकरणं दीनेषु दयां शत्रुषु क्षान्तिं परमधर्म्मतया विद्मः। सकलार्थसाधनीभूतस्य धर्मस्य प्रकारं समधिगत्य तेन तेनाचरितेन प्रकारेण सुविमलं धर्म्मं लब्धा सर्व्वमेव पुरुषार्थमनायासेन लब्धुं क्षमामहे, संसारे च स्वजनवर्गैर्महोत्सवं सम्भावयन्तः स्वजनपरितोषमसीममापादयन्तः स्वजन्मनां सार्थक्यमुपलभामहे। न हि बालो मातृगर्भान्निष्क्रान्तस्यैव जागतिकानि वस्तूनि स्वरूपेण अवगन्तुमर्हति, क्रमेण पित्रादिगुरुजनानां तत्तद्व्यवहारपर्य्यवेक्षणेन तत्तद्विषयेषु शिक्षित एव गोमनुष्यादीनां स्वरूपेषु लब्धविज्ञानो भवति। अत एव सारतो निर्द्धारयितुमिदमेव शक्यं यत्, जगति सर्वार्थसाधनीभूता शिक्षा, शिक्षां विना न किमपि कोऽपि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ज्ञातुमर्हति, अज्ञातस्वरूपश्च गामश्वत्वेन व्यवहरन् परिहासपदवीमिव समाश्रयति अभिज्ञजनपरिषदि। विषादीनामपकारकत्वादिकमजानंश्च तद्भोजनेन जीवनात् परिमुच्यते। सा च शिक्षा यावत् फलदर्शनेन सार्थिका न जाता, तावत् तस्याः ससारत्वमसारत्वं वा किमपि न निश्चेतुं युज्यते। अत एव परीक्षाविधिः प्रचरति शिक्षासमाजे। तेन च परीक्षाविधिना ज्ञातशिक्षासारा उन्नतं पदं लभन्ते, असारतया विज्ञाताश्चावनतिं लभमानास्तिरस्क्रियन्ते स्वपक्षैः परपक्षैश्च कैश्चित् काम्यगुणैः; अत एव च कारणात् पूर्व्वकाले सभासु विचाररूपः परीक्षाविधिः प्रचलित आसीत्। असीमतर्कनैपुण्यप्रकाशमुखराश्च सभ्यैः सिद्धान्तवृत्तान्तपाटवेन च तत्त्वबुभुत्सुभिस्तत्र एवाभिष्टूयन्ते अवष्ठब्धाश्च पण्डितैः पाण्डित्यचातुर्य्यपरिशून्याः सम्मानहीनाः प्रतिभासन्ते। स च परीक्षाविधिः प्रयोजनीयो नूनं तत्तद्विषयनैपुण्यप्रत्ययाय। अन्यथा स्वजनादीनां स्नेहादिपरवशानामसीमस्नेहादिवशेनापि कृता कीर्त्तिसन्ततिरनर्थकमपि प्रशंसनमस्य विस्तारयेद्, येन मुग्धास्तस्य वृथा पाण्डित्ये विश्वासमास्थापयन्ति, वृथा विश्वस्ताश्च स्वीयेषु कर्म्मसु तानेव नियोजयन्तो विफलमनोरथाः कार्य्याणि विध्वंसयन्ति। चिकित्सकादयो बहुकालमध्ययनं कृत्वा तत्र नैपुण्यं लब्धवन्तः, किन्तु सर्व्वे एव न समानाः। तत्र केचित् स्वीयबुद्धिवैचित्र्येण अधिगतायां विद्यायां तथा प्रतिष्ठां लभन्ते—यथा सुव्यवस्थितं परेषां जीवनरक्षणं कृत्वा इह परत्र च काञ्चिदपूर्वां कीर्त्तिकलामुपार्जयन्ति। त एव वस्तुतो विद्यासु लब्धसारा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जीवनरक्षादिविधौ व्यवहार्य्या नेतरे ; तेषामदृष्टशक्तिकतया स्वेच्छया स्वजनानां विनाशार्थमेव वा तदीयहस्ते विनियोगः स्यात्। एवमेव सर्वेषु कर्म्मसु व्यवहारः सर्व्वमेव कर्म्म लोकाना-मिष्टसाधनञ्चेत् तदेव प्रवर्त्तनीयं न चेदिष्टसाधनं तदा परिहेय-मिति। इष्टसाधनस्य सुशृङ्खलया साधनं परं तेनैव स्यात्, यो हि तद्वस्तुषु परं चातुर्य्यमुपार्जयामास, स्वयमपि निपुणो यावदात्मना शिक्षिताया विद्यायाः समग्रं फलं नालोकते, सुबहुशिक्षितामपि विद्यां सभ्यजनसमाजे सफलां प्रत्याययितुं न क्षमते, तावन्न विश्वसिति स्वस्य विद्यायाः शिक्षाप्रकर्षं, नापि समुद्यतं प्रतिपाद-यितुमुद्युक्तो भवति परेषु यदेषा मे विद्या शिक्षिता सुनिपुणं सफला च कार्य्यविधिषु वाढम्। अत एव शिक्षकाः प्राक्तना यदा बहुकालं गुरुगृहे अवतिष्ठमानस्यापि शिष्यस्य सुप्रकर्षमव-गतवन्तस्तदैव तस्य संसारधर्म्मे शक्तिमत्तामनुमाय संसार-धर्म्मसाधनाय प्रारोचयन्त, प्रविष्टश्च संसारे सर्वेषु विषयेषु साफल्यमुपलभ्य शिक्षायाः सारवत्त्वं प्रत्याययन्ति, प्रतीतसारश्च गुरुरिव पुनः कति नाम शिष्यान् स्वपुत्रानिव परिपोष्य शिक्षयित्वा च पुनस्तत्सारं विदित्वा तानपि संसारधर्म्माय समादिशति। अत एव सूक्तं खलु कस्यापि निपुणस्य—"आ परितोषाद् विदुषां न साधु मन्ये प्रयोगविज्ञानम्" इत्यादि।

२८। "रिक्तं हि पात्रं ध्वनति प्रकामम्।"

असारेऽस्मिन् संसारे मायामुग्धा जीवनिवहाः सर्व्वे एव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सर्व्वस्मिन् कर्म्मण्यात्मप्रतिष्ठामतिमात्रमादरणीयां मन्यमाना-स्तामेव सम्पादयितुमभितः कर्म्मसु व्याप्रियन्ते। यो यत्र यत्र कर्म्मणि प्रवर्त्तते तत्र तत्रैवात्मनः कृतार्थतां सम्पाद्य तद्धेतुकं यशः समभिवाञ्छति। नास्ति निन्दावादः कस्यापि काम्यो जगति। नापि साधुष्वेव विषयेषु कीर्त्तिप्राप्तिवासना वासनावासितात्मनां जीवानाम्। तथाच ये सकलमनोमोहनेन रागमयेण सङ्गीतेन व्यवहरन्ति, ते मधुरमूर्च्छनाद्यनुशीलनेन यथा श्रोतृणां चित्त-भूमिमधिकृत्यात्मनः सङ्गीतप्रशस्तिमुपपादयितुं क्षमन्ते, तथैव सर्व्वान्तःकरणेन प्रवर्त्तन्ते। तौर्य्यत्रिकानुशीलनस्य व्यसनदोषदुष्ट-तायामपि तमेव प्रयोगमाश्रित्य लोकेष्वात्मप्रतिष्ठामभिकामयमानाः प्रदृश्यन्ते। ये च विद्याविशेषपारदर्शिनः सुगभीरतत्त्वनिर्णय-पारगास्ते तु तमेव विद्याविशेषमधिकृत्यात्मानं प्रतिष्ठितं कुर्व्वन्ति। यथा—तस्कराश्चौर्य्येण, विद्वांसो विद्याप्रभावेण प्रबलपरा-क्रमशालिनो नरपतयः प्रसिद्धयुद्धादिवीरवृत्तान्तेन, कर्म्मचारिणः स्वानुसरणीयकर्म्मनैपुण्येन, ब्राह्मणाः ब्रह्मविद्याविज्ञातपाण्डित्येन स्वां स्वां प्रतिष्ठामुपजनयन्ति। प्रत्येकमेव यशस्कामनां प्रति कर्त्तव्यं मुख्यतो वा गौणतो वा हेतुतामध्यास्ते। तत्र च ये गुणवन्तः साधुवृत्तयः सत्यमेव प्रशंसनयोग्याः सुविज्ञास्तेषां गुणगरिमभिः प्रचारं गतैः सन्ततमभिवन्दितमानसाः सन्त एव गुणदोषविचार-निपुणाः स्वतः सम्भूय गुणानां प्रकर्षं प्रचारयन्ति प्रशस्यस्येच्छां तद्विरहं वानपेक्षमाणा निजगुणमोहवशादेव स्वयमुत्सुका विनिवारिता अपि तेनैव प्रशस्येन गुणवता न गुणप्रशंसामकृत्वा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तूष्णीमवस्थातुं चमन्ते। स्वहृदयमेव तान् गुणवर्णने नियोजयति, वियोजयति च कुतोऽपि कारणात् स्थितं मानसविकारमपि। तथाच दृश्यते अद्यापि सुचिरं तिरोहितानां कविमुख्यानां कालिदासादीनां रसिकजनमुखेषु कीर्त्तिकलापविस्तारः। यद्यपि तेषां स्वमुखेन कीर्त्तिविस्तारो नोपलभ्यते, तथापि गुणगरिम्णा प्रमुग्धा रसानुभवपारदर्शिनो निरपेक्षवादिनो यत्तेषां गुणप्रकर्षं विस्मर्त्तुमसमर्था रसिकसार्थेषु तं प्रत्यपादयन्, स एव परम्परया प्रसृतो निराविलरससाक्षीभूतो वाक्प्रपञ्चः सञ्चित इव भूयो ललितरसधारया स्मर्य्यमाणः संस्मारयति कविमुख्यानामलौकिक-गुणसम्पदः। तत्तत्पथनिर्देशक्रमेण शिक्षिताः शिक्षाभिलाषिणो जीववर्गाः संसर्गं लभमानाः प्रशस्तशिक्षाविधीनां विधौतमानस-मललेशाः सम्प्रकाशयन्ति तेषां कर्त्तव्यविषयेषु महान्तमेव निपुणभावम्। यत्र यत्र कर्म्मणि ये ये पूर्व्वतनाः प्रशस्तिमन्त आसन्, ते ते तदीयप्रशस्तकर्म्मकलापैरेव मोहयन्तः समस्तमिदं सारबोधानुरक्तं जगत् सङ्गतभावेन स्वधीनीकुर्व्वन्ति। न तत्र बल-प्रयोगः, नापि प्रार्थनाविशेषेण स्वीयकीर्त्तिप्रकाशनायोन्मुखी-कारः। सन्तो हि लज्जन्ते आत्मकृतकर्म्मणां प्रशंसावादमपरेणापि कृतं शृण्वन्तः, अत एव श्रीरामचन्द्रः स्वेन सम्पादितं महावीरस्य परशुरामस्य जयं चित्रसमीपे वर्णयन्तं लक्ष्मणमुपलभ्य "बहुतरं द्रष्टव्यमन्यतो दर्शये" त्युक्त्वा स्वीयप्रशस्तिवर्णनाद्विरतं चकार। अत एव च केचित् सुजनाः परोपकारादिविधिमनुशीलयन्तोऽपि नात्मप्रकाशमभिकामयन्ते; दृष्टञ्चैतत् केषुचिदाधुनिकेष्वपि साधा-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गुणजनोपकारप्रस्तावपर्य्यालोचने। हीनाश्च सुतरामुत्साहमुपगच्छन्ति आत्मप्रतिष्ठामतितरां प्रकाशयितुम्। स्वेन कृतं तिलमात्रमपि परोपकारं तालमात्रकेण परिणमयन्ति। यथा यथा वाक्यप्रपञ्चेनात्मनः समुत्कर्षः सम्पद्यते, यथा यथा च आत्मन एव गुणिषु परकीयगुणापेक्षया गरिमा प्रतीयते, तथा तथा यत्नविशेषं रचयन्ति। तत्र कारणं प्रधानतस्त्वेतदेव वयं मन्यामहे यत्, गुणवतां वास्तविकगुणप्रकर्षेण प्रशंसां सर्व्वे एव कुर्व्वन्ति, विशेषतस्त्वेतत्प्रतिपादितमस्माभिः प्रबन्धप्रारम्भे, अत एव तेषां स्वमुखेन स्वगुणवर्णनं न प्रयोजनीयतामधितिष्ठति, हीनानान्तु गुणप्रख्यापनं नेतरे सम्पादयन्ति, परं तेषां हीनतामेव सभासु प्रतिपादयन्तो लोकानां तत्रावज्ञामेव समापयन्ति। तेन च निरर्थकं जन्म व्यर्था च वासना, प्रतिष्ठाकामनायाः सर्व्वजनेष्वेव नियतत्वादिति। सन्तो हि गुणवर्णनस्य अन्यथासिद्धतया न स्वमुखेन गुणवर्णनामाचरन्ति, हीनाश्च परेणात्मगुणप्रख्यापनमसमीक्षमाणा यया कथमपि आत्मप्रशंसा आपादनीयेति बुद्ध्या समधिकं गुणप्रशंसनं विदधति, यथा विहितगुणप्रशंसनादर्द्धमपि जनाः स्वीकुर्व्वन्तो नितरां प्रतिष्ठामभिजानन्ति। तज्ज्ञापकमित्र निर्म्माणं यथा माघे "वदिता न लघीयसोऽपरः स्वगुणं तेन वदत्यसौ स्वयम्।" इति। सन्ततमेव दृश्यते तथा तथैव प्रमाणं लोकसमाजेषु। व्यवहारदर्शनविज्ञा हि लौकिकनिबन्धारः काव्यार्थान् निबध्नन्ति, अत एव सूक्तं तेषां "रिक्तं हि पात्रं ध्वनति प्रकाम"मिति कथासंक्षेपः।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

२९। "प्रकृतिः खलु सा महीयसः
सहते नान्यसमुन्नतिं यया।"

जगति द्विविधा हि मानवा भवन्ति, तेजस्विनः क्षुद्रचेतसश्च। तेजस्विनो हि जीवाः परेभ्यो नापकर्षमात्मनः प्रत्याययितुमग्रेसरन्ति, परस्मात्प्रकर्ष एव यथा सर्व्वत्र प्रचरति, तथा तथा पन्थानमनुशीलयन्तः शान्तमेव हृदयं व्यवस्थापयन्ति। तथाच दृश्यते—क्षत्रियाणां पूर्व्ववर्त्तिनां राजपदमधितिष्ठतां केषाञ्चित् प्रबलतमानां वृत्तपर्य्यालोचनेषु यत्, ते हि प्राणैः पणैरपि स्वप्रभावमक्षुण्णं परिपालयितुकामाः प्रवर्त्तन्ते क्रियासु, युद्धादिषु न कथमप्यात्मनो लाघवं स्वीकर्त्तुमीहन्ते, सन्धिस्वीकारादिकमात्महीनतासम्पादकं मन्यमानो न स्वत एव कोऽपि पक्षस्तत्र प्रवर्त्तमानो भवति। भाविनीमचिरमेवात्मक्षतिं विवेकपूर्णेन चेतसा समीक्षमाणा अपि न स्वतो विरमन्ति प्रबलतया प्रवर्त्तमानात् समरकर्म्मणः; अनिवृत्ताश्च कठोरतमसमरकर्म्मभ्यः शर्म्मलेशेनापि विरहिता अकाले आत्मजीवनमुपहारमिव कल्पयन्ति धर्म्मराजस्य। हिंस्रस्वभावाः पशवोऽपि परस्परापेक्षया उन्नतिमेव कामयमानाः शरीरचेष्टादिकमारचयन्ति, विहरन्ति च साभिमानमेव नगरारण्यादौ। क्षुद्रजीवाः पिपीलिकादयोऽपि अहमहमिकया गच्छन्तः स्वपक्षमभिजेतुं कामयन्त इति दृष्टं बहुधा। राजा प्रबलपराक्रमेण निजराज्यं पालयति, सर्व्वत्रैव प्रजानां शान्तिविधौ चेष्टमानः कति नाम कष्टानि स्वीकुरुते,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अहरहः सम्भवदपि नानाविषयेषु कष्टं येन केनचिदुपायेन प्रतिनिवर्त्तयति ; सामदानभेददण्डाद्यैरुपायशतैः स्वीयराज्यस्य याथातथ्यमभिरक्षति, ततस्तस्य राज्यस्य सुखसम्पूर्णतामैकान्ततः पर्य्यालोच्य राज्ञां स्वभावतो जातामिवापरराज्यस्वीकारप्रवृत्तिं गतो राज्यान्तरस्याधिपतिं यदि कदाचिदात्मनः प्रबलपराक्रमं ख्यापयन् तद्राज्यमात्मसात् कर्त्तुकामः समुपैति, वाचा व्यवहारेण चात्मनः पराक्रमं परपक्षतः प्रकृष्टं प्रख्यापयति, यतते च यथाकथञ्चित् समुपगन्तुं तद्राज्यं, तच्चासह्यमेव परपक्षीयस्य आक्रान्तराज्याधीश्वरस्य। स यथा निजराज्यस्य सुखमयस्य विशृ-ङ्खलतासमुत्पादनेन क्रोधातिशयं वृणोति, ततोऽप्यधिकं क्रुद्धो भवति निजपराक्रमातिक्रमि विपक्षराजपराक्रमख्यापनं समुपगत्य। ततश्च सिंहविक्रमेणाक्रमणकारिणो राज्ञः समाक्रम्यानुरक्तानां प्रजानामपरेषाञ्च सामन्तनृपतीनां पक्षं निर्जित्य राज्यमात्मनः समुद्धरति, दैवप्रातिकूल्यदूषितो वा आत्मनः सर्व्वमेव कार्य्यं विपर्य्यस्तं समीक्ष्य म्रियमाण इव लज्जया परपक्षसमीपे मुखं दर्शयितुमसमर्थो जनकोलाहलपरिशून्येषु निविडारण्येषु विरागेण प्रस्थितो भवति, न कदाचिदपि पुनः प्रतिनिवर्त्तते। तच्च श्रुतं पुरावृत्तेषु ; बहुलं दृश्यते प्रत्यक्षमविरतमेवाध्ययनार्थिषु छात्र-वृन्देषु विद्यालयादौ। कश्चिच् छात्रो यद्यध्ययनीय-विषयेषु परमामुन्नतिमधिगच्छति, तेनैव समं यदि कश्चिदपर-स्तेजस्वी सुबुद्धिरपि कारणविशेषेण तस्मादवनतं पदमधितिष्ठति, तदा तत्कालमारभ्यान्तगतं पदमधिशयानस्य छात्रस्य सुमहा-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नध्ययनानुरागस्तेन चानुरागविशेषेण परत एव तस्यैव सर्व्वत एवोन्नते पदे समुपस्थानम्, अथवाशक्तस्य तथापि समुन्नतपदोपस्थाने तद्विद्यालये सलज्जभावेनावस्थातुमपारयतोऽन्यत्र कुत्रापि पाठार्थं प्रस्थानम्। एतदेव प्रतिपादितं भवभूतिना कविकुलमुखरतसेन उत्तररामचरिते नाटके—बालकयोर्लवकुशयोर्वाल्मीकिशिष्यभूतयोरतिमात्रप्रकर्षेण आत्रेय्या अपि तच्छिष्याया वाल्मीकितपोवनमपहाय पाठार्थमन्यत्र कुत्रापि प्रस्थानेन। व्यक्तञ्चैतत् "तत्र महानध्ययनप्रत्यूह" इत्यादिना। दृष्टञ्चापरत एव उत्तररामचरिते लवकुशचन्द्रकेतूनां परस्परं संसर्द्दावसरे परस्परं तेजसामसहनं; तत्प्रतिपादकः श्लोकोऽपि यथा—"न तेजस्तेजस्वी प्रसृतमपरेषां प्रसहते, स तस्य स्वो भावः प्रकृतिनियतत्वादकृतकः।" इत्यादि। अत एव परतेजसामसहनस्वभावात् सिंहो यदि कदाचित् सुगभीरं जलदध्वानं शृणोति, तदैव सिंहान्तरस्य दर्पघोषं सम्भाव्य तद्दर्पमसहमानो मेघध्वानदिशमभिलक्ष्य सपरिकरमवतिष्ठते। कदाचित् स्वकृतशब्दानां प्रतिध्वानेन वा तथा भ्रान्तिः सिंहं विमनीकुर्वती बलप्रकाशाय प्रवृत्तं करोति। तद् यथा काव्यग्रन्थे "गर्ज्जन् हरिः साम्भसि शैलकुञ्जे प्रतिध्वनीनात्मकृतान् निशम्य। क्रमं बबन्ध क्रमितुं सकोपः प्रतर्कयन्नन्यमृगेन्द्रनादान्॥" इति। प्रायेण दृश्यते शिल्पप्रकाशाद्यवसरे कस्यचिदेकस्य प्रकर्षवाचमसहमानेन स्वकीयशिल्पवस्तूनां व्यवस्थापनं, यथात्मनस्ततः प्रकर्षः प्रतिपन्नोऽभिमानमच्चुसं परिरच्चति; एवमेव नियमः सर्व्वत्र सकामेषु। सकामा हि येन केनचिदुपायेन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आत्मनः प्रशस्तिमभिवाञ्छन्ति, सा वाञ्छा विफलैव भवति यदि परः स्वतेजसामपराभवनीयतां प्रत्याय्य स्वतेज एव सर्वोत्कृष्टतां नयति। तथा च द्विविधं हि उत्कर्षप्रतिपादनं भवति—परनिन्दा-मुखेन, आत्मनः प्रशंसाया मुखग्रतया विज्ञापनेन च। अपकर्षप्रति-पादनमपि परेषां द्विविधं भवति,—आत्मप्रशंसामुखेन, परेषां निन्दाया मुखग्रतया ज्ञापनेन च। उक्तस्वतेजःप्रकाशनस्य आत्मप्रशं-सात्मकतया गूढभावेन परकीयनिन्दैव जायते इत्यसहनीय-मेव तत्, न हि सह्यमात्मनो निन्दनं केनापि तेजस्विना, सकलस्यैव तदीययत्नस्य व्यर्थत्वापातात्। तेजस्वी नाम निजतेजःप्रशस्तिमेव मुखग्रतया लक्ष्यां मन्यते, तदर्थमेव स सर्व्वकर्म्माणि संसाधयति व्यथयति च विपक्षाणां तेजस्विनां तेजःसङ्घातम्। स्वत एव समुज्जृम्भितभावः सूर्य्यकान्तो नाम मणिभेदः समुद्गिरत्य-नलप्रवाहम्, यदा प्रखरकरसमूहविक्षेपेण प्रतपति भगवानसीम-तेजोराशिदीपितसमस्तभूमण्डलोऽपि सहस्ररश्मिः। वश्यतामुपैति विनीतव्यवहारेणैव सकलो निरन्वयः संसारः, समुन्नतेष्वेव पादप-शिखरेषु सर्व्वथा प्रवर्त्तते प्रभञ्जनो भञ्जनमेव कामयमानो महोन्नतस्य तस्य, न तु मृत्तिकास्तूपस्य वल्मीकविलम्बितस्य। विनीतव्यवहारतस्तत एव तेजस्विनां वा विनीतानां वा वश्यता-सम्पादकः, यतस्तेजस्वी यद्यपि परकीयतेजःप्रकाशं न सहते तथापि सहते परकीयं विनयं, विनयेन वर्त्तनमेव तदन्तिके तस्य काम्यम्, विनीता अपि विनयं स्वत एव समाद्रियन्ते, तत् सूक्तं खलु कस्यापि—"प्रकृतिः खलु सा महीयसः सहते नान्यसमुन्नतिं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यया" अन्यसमुन्नतिवीक्षणेन स्वस्य समुन्नतिकामना स्वाभाविकी नाम इति संक्षेपः ।

३० । "आशावधिं को गतः ।"

विश्वविधातुरतियत्नसम्पादितं जगदिदं नित्यं नियमेन परिचलति। सर्व्वमेव स्वकृतेन पापेन पुण्येन वा सम्पद्यते जीवानाम् । सत्कर्म्मकारिणः परस्मिन्निहैव वा जन्मनि पुण्यमुपार्जयन्तस्तदनुरूपं सुखभोगादिकं कुर्व्वन्ति, पापकर्म्मनिरताश्च दुःखादिसमुत्पादकं पापविधिमपि आत्मनां हितसाधकमेव मन्यमानाः सुचिरं साधयन्तस्तदनुरूपमेव पापफलमुपभुञ्जानाः परिणामे परितापदूषिताः केचित् संसारादपव्रज्यन्ति, केचिद्वात्मनाशमेव सकलज्वालानिर्वापकं स्थिरीकुर्व्वाणाः सर्व्वतो निजप्राणानकाले क्षपयन्ति । किन्तु यो यत्र कर्म्मणि प्रवर्त्तते तत्रैव स किञ्चिदात्महितसाधनाकाङ्क्षया प्रचरति, न कोऽपि जानन् मधुसम्पृक्तसर्पिषो जीवनापहारिणीं शक्तिं स्वेनैव करेणोपभुङ्क्ते, येन महानिष्टभूतं प्राणापगमनं जीवस्य सम्भवति, नापि सम्मुखे गर्जतः फणसमुत्तोलनेनात्माभिमुखमभिधावतो वा भुजङ्गमस्य लगुडाघातेन क्रोधमुद्दीपयति येन क्रोधातिशयेनोद्दीपितस्य तस्य लगुड़ाघातकारिणो जीवनापघातानुकूल्यमिति । दृश्यते च सुखकारणेषु विषयेषु स्वत एव प्रवृत्तिर्जनिमताम् । पशुसङ्घाः पक्षिणो मानवादयो वा सर्व्व एव सुखकरेषु भोज्येषु सुखमात्रमपेक्षमाणाः प्रवर्त्तन्ते इत्यादिकमुपलब्धमेव भुवनेषु । सैवाकाङ्क्षा आशापरनामधेया जगति सर्व्वेषु कर्त्तव्यविषयेषु मूलहेतुतामुपधत्ते

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सर्वेषाम्। तथाच यतिनो निजात्मपरिशुद्धिकामुकाः पार्थिवकामना-विमुक्ता अपि संसारविषयाणामुपभोगातिशयेन शुभादृष्टसमभ्युदयविशेषेण वा जनकोलाहलपरिच्युतेषु हिंस्रपशुवृन्दसमाकुलेष्वपि पापविशेषानुकूलविषयजातशून्येषु प्रविशन्तो निविडारण्येषु सुकठोरपञ्चतपादितपःसमाधानेन सम्पादयन्त्यात्ममुक्तिम्। केचित्तु निरभिसन्धानकृतकर्मभिरेव सम्पाद्यते मोक्षो न तु साभिसन्धानकृतैः कर्मभिरिति वदन्ति, तत्र न वयं प्रणयिनः, यतः पुरुषार्थः काम्यः सर्वेषामेव तत्र परमपुरुषार्थस्य काम्यताविरहो नूनमसम्भव एव। सामान्यतः पुरुषार्थानां काम्यत्वे विशेषतः पुरुषार्थानां काम्यत्वस्यावश्यम्भावात्। तथाच सामान्यपुरुषार्थाः सांसारिक-सुखसम्पत्त्यादयः। यः कश्चित् पुरुषार्थी वस्तूनामुद्देश्यो भवति कर्ममात्रेषु तरङ्गिणी तरलं प्रस्रवन्ती सागरमभि प्रवर्त्तमाना कमपुरद्देश्यमादधाति, अनिलः सुमन्दं प्रवहन् जनानां स्वेदसिक्त-शरीरं तर्पयितुमिवाविरतं प्रवहति, बालकः क्षुधाद्युपशमनाय मातृस्तनमास्वादयति, युवा भविष्यज्जीवनोन्नतिसाधनाय विद्या-मुपार्जयितुं प्रवृत्तिमुपयाति, प्रौढः प्रियजनादीनां सुखादिसंविधानाय धनादिसम्पादनं करोति, तदनन्तरं वार्द्धक्ये परलोके परमोन्नतिकामनया सर्व्वसाधुजनकाम्यं पुण्यमेकान्तेनानुरागेण संसाधयति, तेन तेन चाभीष्टं सर्व्वथा सम्पद्यते। आशा हि हृदयबन्धनं जीवानाम्, आशया जगदिदं सन्धार्य्यते, जगति निराशा आशामूलकं विषयकदम्बकमपेक्षितुमपारयन्तः समस्त-सुखशान्तिविसर्जनं कुर्व्वन्ति, निराशतया न कुत्रापि तेषां चित्तस्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लग्नता भवतीति, आशया च भविष्यत्सुखसंविधानादिकानां लोका जगदवस्थानानुकूल्यं लभन्ते। पुत्रशोकातुराः पुत्रं भाविनं सम्भावयन्तस्ते नैवातीतपुत्रस्य दुःखविस्मरणवाञ्छया जीवन्ति, प्रसृतमपि शोकवह्निं निर्व्वापयन्ति, तदर्थमेव च कानिचिद् धनादीनि संगृह्य सम्पत्तिमारचयन्ति। पतिविरहकातराः शोकातिशयविमुग्धावस्थायामपि परलोके पुनस्तत्समागमाशया तत्पदपरिचिन्तनैकव्रता अभीक्ष्णं व्रतरक्षणेन आमरणमतिवाहयन्ति, सर्वमेव जागतविधिं तदुद्देशेनैव सम्पादयन्त्यः शाश्वतमभीष्टं परतः प्रतिलभन्ते। पितृवियोगवित्रस्ताः पितृप्रवर्त्तितं सत्कार्य्यमनुसमभिरक्ष्य पित्रोः कीर्त्तिकलां यथायथं पालयितुमभिवर्द्धयितुं च कामयमानाः संसारे कर्म्माणि कुर्वन्ति, दीनेषु दयालवः परदुःखमवेक्षमाणाः कातरतया काञ्चिदलौकिकतामुपलभमानाः परेषां दुःखानि धनादिकोपहारेण निवर्त्तयन्ति, निर्वर्त्तितपरोपकाराश्च जगति महान्त इति प्रख्याप्यन्ते, सा च परोपकारवृत्तिः कुत्रचिद् ऐहिककीर्त्तिप्रभृतिनिर्वर्त्तनाकाङ्क्षया कुत्रचिच्च परलोकसुखसंविधानवाञ्छया। तथाच श्रूयते—"दीने दया धर्म्मसारः" इत्यादि। नास्ति च तस्या एव जगन्मूलतामधिगच्छन्त्या आशायाः सीमा। जनो यावदेव वस्तु आशाफलभूतं लभते ततोऽप्यधिकतरं किमपि कामयते। तथाच साधारणो दीनः प्रथमतः कथञ्चिदात्मजीविकार्जनमेव महत् तपःफलमिति निर्द्धार्य्य तत्रैवानुकूलेषु वस्तुसमूहेषु चेष्टां रचयति, तथा तथा चेष्टमानो यदि स्वजीविकाया अनायासेन सम्पादनक्षमतां लभते, तदा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आत्मीयजनानां कमपि स्वल्पमुपकारं कर्त्तुकामो भवति, क्रमेण आत्मीयजनानां केषाञ्चित् परिपोषणादिकर्म्मणात्मतृप्तिं लब्ध्वा सर्वेषामेव परिजनानां यथायथमभिलषित-सम्पादनेन संसारे प्रख्यातिप्रभृतिकमुपगत्य जीवनफलमंशेन समधिगच्छति, ततश्च परेषामुपकारादिकर्म्मणा पारलौकिकं वा ऐहिकं वा पुरुषार्थं संसाधयितुकामः परमामुन्नतिमर्यादिविधौ सम्पादयति। एवमेव क्रमो जगतां तपोवनादिष्वपि। तपस्विनः प्रथमतः साधारण-तपस्यादिभिरात्मदोषनिवहानपसारयन्तः शाश्वतब्रह्मपदलाभोप-योगिनीमवस्थां सुव्यवस्थमनुसरन्ति, प्रतिनिवर्त्तते संसारमसौ, वासन्ती प्रकृतिरिव सुविशुद्धा समुपतिष्ठते कापि चिरन्तनी अवस्था—यया परत्र सोच्चविधिरमानुषः कार्य्यविशेषः प्रवर्त्तते जीवनिवहानाम्। सुखदुःखादिबोधा विरमन्ति, मतभेदे च नित्य-सुखबोधादयः सम्भवन्ति। एवं हि क्रमोन्नतिः प्रभवति जगति, तथैव जगदिदं कार्य्यव्यापृतमविरतं प्रतिभाति। तेनैव कार्य्यबन्धेन विधाता जगदिदं संयतं चकार। न कोऽपि कार्य्यविहीनः परि-लक्ष्यते, व्यवसायिनः साधुनासाधुना वा समीहितेन व्यवसायस्य सुचिरमुन्नतिमेव विधातुकामाः कर्मव्यापृता भवन्ति। क्रेतारः सांसारिका यथोपयुक्तं मूल्यं प्रयच्छन्तो वस्तूनि क्रीणन्ति, शिल्पिनः शिल्पकलानुशीलनेन कीर्त्तिमिव सम्पदमतुलाम् उपार्ज-यन्ति, परेषाञ्च शिल्पकलादिसन्दर्शनेन महान्तमानन्दमुपकल्प-यन्ति। शुद्धविधिसमासक्ताः कल्पान्तेऽप्यविच्छतामात्मशुद्धता-मुपगच्छन्तः शुद्धविधिः सर्व्वथा समुत्कर्षं प्रतिपादयन्ति। क्रमेण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आशाया उन्नतादुन्नततरे विषये प्रवृत्तिरुपगता प्राचीनबहु-कविताभिरेव। तद् यथा कुत्रचित् "निःस्वो वष्टि शतं शती दशशतं लक्षं सहस्राधिपो, लक्षेशः क्षितिपालतां क्षितिपति-श्चक्रेश्वरत्वं पुनः। चक्रेशः पुनरिन्द्रतां सुरपतिर्ब्राह्मास्पदं वाञ्छति ब्रह्मा विष्णुपदं हरिर्हरपदन्त्वाशावधिं को गतः" सूक्तं कस्यापि कवेरतिसत्यं नाम इति कथासंक्षेपः।

३१। "मनसा चिन्तितं कर्म्म वचसा न प्रकाशयेत्।"

जगति सर्वेषामेव वस्तूनां साधनेषु मनसः प्रयोजकता वर्त्तते, यत्रैव कर्म्मणि लोकाः प्रवर्त्तन्ते, तत्रैव मनसः क्रिया तान् प्ररोचयति। आदौ प्रवर्त्तनीयो विषय इष्टसाधको द्विष्टसाधको वेति सन्देहमनुक्षणमेव हृदयमवलम्बते, क्रमेण बहुलपर्य्यालोचनया लोचनागोचरस्यापि विषयस्य इष्टसाधनता द्विष्टसाधनता च ज्ञानविषयतामापद्येते। इष्टसाधनताज्ञानञ्चेत् प्रवृत्तिः, द्विष्टसाध-नताज्ञानञ्चेत् प्रतिनिवृत्तिरेव तत्तत्कर्म्मणो लोकानाम्। तेषु तेषु ज्ञानकदम्बकेषु मनस एव कारणत्वमनुवदन्ति दार्शनिकाः। तथाच—"त्वचो योगो मनसा ज्ञानकारणम्" अपिच "आत्मा मनसा संयुज्यते मन इन्द्रियेण इन्द्रियमर्थेन" इति। एतेन मनसः प्रयोजकत्वमव्याहतमेव प्रतिपन्नं भवति। बहुष्वेव स्थलेषु कर्त्तव्यार्थान् प्रथमतो मनसि यथापूर्व्वमवधार्य्य सम्पादयन्ति जनाः, पूर्व्वतः परिचिन्तितपूर्व्वापरविन्यासाश्च कार्येषु सुशृङ्खलता-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मुत्पादयितुं क्षमन्ते। मन एव कार्य्येषु सर्वेषु प्रवृत्तिसाधकं विजयते पदार्थतत्त्वेषु। तेन च मनसा कल्पितपूर्व्वं वस्तु येषां जनानां फलात् परमेव लोकानां ज्ञातं भवति, त एव प्रशस्याः; ततस्तेषामभीष्टं साधयितुं ये य उपायाः प्रयोजनीयाः, येषामव्याहतेनानुशीलनेन स्वाभीष्टानि सिद्धिपथमनुधावन्ति, ते सुचिन्तिता उपाया यदि फलोदयात् पूर्व्वत एव लोकानां साधारणानामेव गोचरतां यान्ति, तदा शत्रुपक्षीया विघटयितुमपि शक्नुवन्ति अभिलषितानर्थान्। सार्थकतायाः समुदेति व्याघातः कर्म्मसु, शर्म्मसु मर्म्मग्राहकाणां मानसदोषानुत्पादयन्ति धूर्त्ताः, प्रियो वाप्रियो वा साधुर्वासाधुर्वा मूर्खो वा विज्ञो वा सर्व्वस्यैव सविधे गोपनीयः कर्त्तव्यविषयाणां कल्पनप्रकारो नाम। अत एव राजानो महद्भिः सचिवैर्म्मन्त्रमाणं वस्तु सयत्नं रक्षन्ति, प्राणात्ययेऽपि जातु नाभीष्टवार्त्तामन्येषु समुपसर्पयन्ति, मन्त्रिणोऽपि मन्त्रभेदकतया सन्दिग्धान् सव्याधिमिव दक्षिणहस्तं विच्छिद्य दूरे परिवर्जयन्ति, विशृङ्खलचेतसो न मन्त्रसाहाय्याय सम्बोधयन्ति। मन्त्रभेदकारिणो मूढान् विषमिव विसृजन्ति, अत्यनिष्टकारितया सम्भाव्य तेषां सङ्गं कदाचिदपि न कुर्व्वन्ति, वाञ्छन्ति सन्ततमेव तेषामनिष्टमाचरितुम्। श्रुतं बहुलं वृत्तमुपन्यासेषु पुराणादिषु वा पूर्व्वतनेषु—राजभिः शिरश्छेदो नाम साधितः सुव्यवस्थितमन्त्रभेदकारिणां निजपरिजनानामपि प्रियतमानामिति। निजोन्नतिकामनया केऽपि विश्वासघातकाः सचिवादयो निर्दयान्तःकरणाः करणानां नैपुण्यमिव प्रत्याय्य शत्रुपक्षे पक्षपातमारचयन्तः स्वपक्षं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पराजित्य तैरेव विरुद्धराजवृन्दैः समाचरितशासनाः श्रूयन्ते। तद्दर्शनेन च केचिद् विश्वासघातकतादोषं परिहाय साधुषु पथिषु मनः सन्निधापयन्ति समर्पयन्ति च निजपक्षाणां कमपि महान्तमुपकारम। स्मारं स्मारञ्च भूयो विश्वासघातकानां परिणामं कठोरं न भ्रमेणापि तद्दोष आत्मानमर्पयितुमिच्छन्ति। साधारणानामिव संसारधर्म्माणां धर्म्माभिलाषुकाणां स्वपक्षाः प्रतिपक्षाश्चेति द्विविधा एव भवन्ति लोकाः। केचित् सन्ततमनिष्टविघटनपाटवमुपदर्शयन्तः कायेन वा मनसा वा वाचा वा आत्मीयतामिव निरुपमां प्रख्यापयन्तः प्रतिपत्तिं काञ्चिदुपार्जयन्ति। केचिच्च मनसा कर्म्मणा च हितसाधनानुकूला वाक्यमात्रेण तद्विज्ञापकेन परिहीना दृश्यन्ते, वश्यताञ्च नयन्ति राजचरितानि निगूढमभिसन्धाय प्रवर्त्तितकर्म्माणि। केचिच्च प्रतिपक्षहितसाधनानुकूला दक्षतया एव वीरादिचरितेषु प्रवर्त्तमाना विगलितमाना अपि प्रतिपक्षै रभितः सम्मान्यन्ते, ते ते सम्यग्विविच्य यदि शक्यन्ते व्यवहर्त्तुं नियोज्यन्ते च तत्तत्कर्म्मसु यथाव्यवस्थं, तदैव कार्य्यसिद्धिः सुकरा नाम। तानात्मभावेनाज्ञात्वा यदि प्रतिपक्षपक्षीयेषु विश्वासमास्थाप्य गूढविषयं व्यवहरेयुः, स्वपक्षांश्चाविश्वसन्तः प्रतिपक्षबुद्ध्या हितकरकार्य्येष्वनियोज्य तानेव प्रतिपक्षपक्षानात्मगूढविषयविज्ञापनेन कार्य्येषु विनियोजयेयुस्तदा महानेवानिष्टपातः सत्वरमात्मेच्छया एव दत्तहस्तः स्वीयविनाशमेवानुकूलयेत्। अत एव गूढस्वपक्षप्रतिपक्षभावस्य निजचेतसा विज्ञातस्य सुतरां भ्रान्तत्वमभ्रान्तत्वं वा कालक्रमेण फलादर्शनं यावद् विशेषेण

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अविचार्य्य न स्वीयमनोऽभिलाषसाधनोपायाः प्रकाशयितव्याः, येन क्रमेण विश्वासमास्थाप्य प्रतिपक्षपक्षे कार्य्यनाशमात्मनैव सम्पादयितुमग्रेसरो विरूढकलङ्कः फलनाशेन भवेदिति। नाप्येवं चिन्तयितव्यं यदेको नाम मन्मनोगतं शृणुयात्, नापरान् श्रावयिष्यासि, न ह्येकेन तदीयमनोभावस्य विज्ञानेन भविता किमपि विशेषतोऽनिष्टमिति। अथ यदि स एवैको भवतः प्रतिपक्षपक्षीयः स्यात् तच्च स्वरूपतो भवान् नालं विज्ञातुं, तदा तेनैकेनैव शत्रुपक्षीयेषु सकलेषु भवतो मनोगतस्य संक्रमेभिलषितस्य साफल्ये व्याघातः सम्पतितः। अपि च स शत्रुपक्षानुकूलतापरिशून्योऽपि यदि चञ्चलस्वभावः स्यात्, ततस्तेन प्रकाशितस्य क्रमेण मनोरथस्य बहुलजनसंक्रमेण वैरिजनगोचरत्वे तथैव व्याघातः कर्म्मबन्धस्य। अतो हि काम्यसाधनोपायचिन्ता तथा प्रच्छन्नं रक्षणीया—यथा आत्मना विना न कोऽपि तां विजानीयादिति। एतमेवार्थं कवयो गायन्ति छन्दोबन्धेन— "मनसा चिन्तितं कर्म्म वचसा न प्रकाशये"दिति।

३२। "सर्वः स्वार्थं समीहते।"

परमकारुणिकेन भगवता परमेश्वरेण निरतिशययत्नशालिना बहुभिरेव रम्यैरुपकरणैः करणावरणादिविनोदकरवस्तुनिकरसमन्वयेन सम्पादितोऽयं संसारबन्धः। अत्र ये ये जीवा यथा यथा जातौ जन्म परिगृहीतवन्तः, यां यामवस्थामाश्रित्य नित्यमेव जगति समुपतिष्ठन्ति, तत्र तत्र नितरामेव कारणतामध्यास्ते

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तेषां तेषां शुभादृष्टदुरदृष्टपरम्परैव । ये नाम पूतं कर्म समाचरन्तः शास्त्रादेशं पालयन्ति, निर्मलेन मनसा सर्वत्र विहर्त्तुं प्रभवन्ति, आशङ्कन्ते परपीडाकरेभ्यो विधिनिकरेभ्यः, शान्तरसानुकूलानेव सकलान् विषयानन्तरेण स्निग्धा दुःखादिदुष्टभावदिग्धविषयपरिहारेण समुपपादयन्ति, पितृचरणरजःस्पर्शेनात्मानं धन्यं मन्यन्ते, गुरुजनादेशादूर्द्धं स्वप्नेऽपि नावतिष्ठन्ते, परिनिष्ठितपूतप्रकोष्ठा एव परमानन्दपथं परिष्कुर्व्वन्ति, सन्तोषयन्ति च दीनान् वा हीनान् वा समुन्नतचरित्रान् वा हीनस्वभावपरिदूषितान् वा, त एव तेन तेन समाचरितेन सत्कर्म्मशतेन किमपि लोकातिशायि पुण्यमासादयन्तः शान्तान्तःकरणाः सकरुणा एव मुक्तिपथमिवानुधावन्ति । तेषामेव साधुषु सम्प्रदायेषु प्रशंसा भूयसी समुपजायते, ततस्तेषामतिमात्रैव रतिः समुत्पद्यते । सत्सु विषयेषु प्रतिपाद्येषु वश्याश्च तेषां साधुगणाः, कति नाम नूतनान्यपि सत्कर्म्माणि तदर्थमेव निर्वर्त्तयन्ति, जागर्त्ति जगति तेषामेव तथाविधसत्कर्म्मानुशीलनेन महत्यन्धकारे प्रोज्ज्वलालोकरेखेव पवित्रतमा पुण्यप्रभा कापि कलुषजालापहृत-निर्म्मलभावे । आपाततो दृश्यमानामपि शारीरदुःखादिपङ्क्तिं परत्र काञ्चिदुज्ज्वलां सुखधारां कदाचिदपि भङ्गुरताशून्यामालोचयन्तः शास्त्रविधानेषु च तज्ज्ञानसम्पादकेषु "स्वर्गकामो यजेत" इत्यादिषु दृढं विश्वासमारोपयन्तः कठोरमपि कर्म्मशतमात्मना स्वीकुर्व्वन्ति । दुष्कर्म्मरतास्त्वदृष्टचरादृष्टविनिवेदकेषु शास्त्रविधिषु विश्वासशून्याः लुब्धाः सन्मार्गवर्गाद् अर्गलमिव मोक्षपथस्य धर्म्माविश्वासं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समधिगत्य सत्यालोकमप्राप्ताः कुत्सितमेव कर्म्म दृष्टचरशुभसाधकं मन्यमानाः समाचरन्ति, तथा तथा चिन्तयन्ति यथा यथा हीनेनैव कर्म्मणा समनुष्ठितेनैहिकार्थाः सुव्यवस्थितं साधयितुं शक्यन्ते। परेषां पीडामुत्पाद्य वानुत्पाद्य वा शारीरं कष्टमनुष्ठाय वाननुष्ठाय वा यथैव निजाभिलषितसाधकवस्तूनि लब्धुं शक्यन्ते, यथा तथैव वृत्तभागेन जगति सन्ततं पर्य्यटन्तः कालकलाः क्षेपयन्ति। नापेक्षन्ते साधुभावस्य सुचिरप्रसिद्धां प्रशंसाम्, उपेक्षन्ते सदुपदेशकानां प्राचीनतमानामपि परिणामशुभसम्पादिकां वचनप्रयुक्तिं, केवलमात्मबुद्धिमेव आत्महितानुकूलां सम्भावयन्तः शान्तिमन्तः शान्तिलेशमपि समस्तदेशपर्य्यटनेनाप्यकल्पयन्तः प्रान्तरे वा नगरे वा सर्व्वत्रैव तं तमुपायं विचिन्वन्ति। तदयं द्विविध एव जीवसम्प्रदायो विहरति प्रकामं—स्वीयकाम्यसाधनवासनावासितमनाः, प्रमथितकाम्यविरुद्धमार्गश्च। तथाच साधुः सौधमपि परिहाय तपोवनान्तेषु वा गृहप्रान्तेषु वा तमेकं धर्म्ममेव शरणतया समालिङ्गन् प्रत्यङ्गमालेपितभूतिर्वा गृहस्थजनोचितप्रचलितवेशपरिग्राही वा पारलौकिकमिष्टं सम्पादयितुं कति नाम कष्टान्यात्मनि विरचयति। केचित् पञ्चतपया तपस्यया, केचिच्च गृहस्था अपि सर्व्वान् कामान् परित्यज्य भगवच्चरणैकध्यानपरायणतया साधुवृत्तेषु परानपुरन्ध्र स्वीकुर्व्वन्तो धर्म्मस्य प्रसारं वर्द्धयन्ति। ते ते सर्व्व एव स्वं स्वमर्थं साधयितुमेकान्तया वासनया वासिताः परिलक्ष्यन्ते। ये च परार्थमिह कर्म्माणि प्रयोजयन्ति तत्रापि वर्त्तते गौणतः स्वार्थसम्पर्कः। तथाहि शास्त्रं हि नाम परार्थ-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रवृत्तेः सुपुण्यसाधकतां विधिवाक्येनैव प्रत्याययति, तदैव पुण्यमुद्दिश्य प्रवृत्तिरुपलब्धा परार्थेऽपि प्रवृत्तिमतां मानुषाणां, यदि परार्थप्रवृत्तेः पापादिजनकता केनचित् शास्त्रेण निवेदिता स्यात्, तदा न कदापि सत्कर्म्मरतानां जीवानां तत्र प्रवृत्तिर्भवेत् परं विनिवृत्तिरेव। यदि च तपःप्रभृतीनां पुण्यसम्पादकवस्तूनां कलुषसम्पादकता समुपालप्स्यत, तदा तेन तेन कर्म्मणा द्विष्टदुःखाद्युत्पादशङ्कया तत्साधनतावगमेन ततो लोकास्ते विरता एवाभविष्यन्। अनया युक्त्या शास्त्राणां तथा तथा पुण्यादिविनिवेदकतया च सुखतः परार्थकर्म्मादीनां परकीयसन्तोषादिजनकतासत्त्वेऽपि गौणतः स्वार्थसमुद्देशः स्पष्टः। स्वार्थमेव समुद्दिश्य बहुलकष्टस्वीकारेण वणिगादीनां विदेशादिषु पर्य्यटनं, तिर्यग्जातीनाम् आलपवृष्ट्यादिभोगेनेतस्ततो विहारः, बुधानामबुधानाञ्च संसारे असारेऽपि सारवत्त्वबोधात् कियत्सु कष्टकरविधानेषु ध्यानधारणाभिरिव निस्तन्द्रमभिनिवेशसंस्थानम्। योद्धारो भुवनविजयकीर्त्तिप्रशस्ता राज्यादिलाभरूपं स्वार्थमभिलषन्त एव कठोरं युद्धं कुर्व्वन्ति, स्वार्थसाधनव्यग्रतया कथमपि स्वार्थसाधनसमर्था अपि न विसर्जयितुमर्हन्ति तत्कामनाम्। वामनस्य चन्द्रस्पर्श इवासम्भवोऽपि जयो नितरामभिलाषविषयातामापद्यते, अन्यथा तत्र प्रवृत्तिरेव तेषामपलपिता स्यात्। गृहस्थाः क्षुद्रक्षुद्राण्यपि यानि कर्म्माणि विदधते, तत्र तत्रापि स्वार्थ एव समुद्दिष्टः सर्वेषां, स्वार्थं विना जगतः कुत्रापि प्रवृत्तिर्नोपलभ्यते ; इष्टसाधनताज्ञानस्य प्रवृत्तिजनकतया इष्टस्य स्वार्थस्य अभावे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तदभावस्य सिद्धत्वात्। कीटादारभ्य परमेशं यावत् सर्वेषामेव प्रवृत्तिः स्वार्थमूला, येऽपि निःस्वार्था इति लोकैर्व्यवह्रियन्ते अभिष्टूयन्ते च साधारणजनादतिशयं किमपि दधानास्तदपि मुखतः स्वार्थसमुद्देशविहीनतयैव समाधेयं न तु गौणतोऽपि। अतः सुव्यवस्थितमुक्तं केषाञ्चित् परममान्यानां कवीनां, यत्—"सर्वः स्वार्थं समीहते" इति संक्षेपः।

३३। "कालो हि बलवत्तरः।"

कालो हि नाम नवानां द्रव्याणामन्यतमद्रव्यं तदाख्यम्। तथाच वैशेषिका व्याहरन्ति—"क्षित्यप्तेजोमरुद्व्योमकाला दिग्-देहिनौ मन" इति द्रव्यनिरूपणे। मतान्तरे च दिक्कालयोरीश्वरा-नतिरिक्तत्वम्। स च कालो महाकालखण्डकालभेदेन प्रथमतो द्विविधः, महाकालश्च जगतामाधारः। तथाच प्रमाणं "कालो हि जगदाधारः कालाधारो न विद्यते"। तच्च कालस्य जगदाधारत्वं कालिकसम्बन्धेन। खण्डकालाश्च बहुलाः, दिनरात्रि-पक्षमास-वर्षयुगादिभेदेन। तथाभूतेन भेदेनैव वयमविरतप्रचलितं कालं कलयामः। एष हि कालो नियमयति सर्व्वान् जागतिकान् कर्त्तव्यार्थेषु, सर्व्वे एव कालानुसारेण सर्वं विधानमनुसन्दधति, फलञ्च लभन्ते किञ्चित् स्वीयैः कर्त्तव्यकर्मभिर्यथाचारमनुशीलितैः। तथाच सुनीले नभःप्रान्ते सहस्रकिरणः सहस्राणि कराणां विसारयन् विभावरीप्रभाते पूर्वां दिशमात्मनः शोणकरसम्भारेण अरुणिमानमालम्भयन् समुदेति, क्रमेण च गगनमध्यमाक्रम्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सांसारिकान् मध्यवेलां प्रत्याययति, ततोऽपि सायाह्नसमागमे क्रमेणाहृतकरभारः पश्चिमां दिशमभिवर्त्तमानो जगति तमःसङ्घातस्यावकाशमिव ददत्स्तमनवेलायामुपतिष्ठते। प्रातस्तु समीक्ष्य पूर्वामाशामूषारागरञ्जितां व्यञ्जितनिशापगमां यतिव्रतिनः प्रशस्तकर्म्माणो मुहुस्तपःशर्म्मसमभिनन्दिनो नियमस्नानकालमुपागतमभिवीक्ष्य सामगानकर्म्मणा दिशो मुखरयन्तः शान्तान्तःकरणा वीतरागाः संसारस्य असारविषयेषु विषवदनुभवन्त इव मायाप्रपञ्चं पञ्चतपाद्युपयोगिविषयकदम्बकसञ्चारिणो जीवात्ममलापहारिणः प्रचलन्ति ललितगम्भीरा उपभुक्तप्रभातशान्तसमीराः पूतजलां स्रोतोवहां काञ्चित्। मधुरस्वराः सुचतुरविहारा विहङ्गनिकरा विभावरीशेषमवेक्षमाणाः शिञ्जिता इव ललितगीतबन्धे स्वकुल्यैस्तरुशिरोनीडेषु सुप्तोत्थिता निपीतमाध्वीका इव जडितकण्ठाः समुत्कण्ठिताः शब्दायन्ते सुमङ्गलम्। गावश्च गोपालैः सत्वरमेव निःसारिता गोष्ठगृहात् अभितः स्वजातिसमुचितभाषाविन्यासेन परिचालिता मन्थरं धावन्ति क्षेत्रे शस्याद्यवलेहनकामुकाः समस्तां रात्रिमनास्वादितभोज्यलेशाः ससमुत्कण्ठम्। वत्साश्च तासां धावितगवामनुपदमेव लग्नाः स्खलितपादमपसर्पन्ति पथिषु मुहुः, प्रचलन्तीनां गवां मध्यात् केचिदात्ममातरं निर्द्धारयितुमसमर्थास्तारं शब्दायन्ते, श्रुतवत्सरावाश्च इतस्ततो निक्षिप्तनयनाः साग्रहमन्वेषणपराः पश्चादेवावतिष्ठन्ते काश्चित्, आप्तनिजवत्साश्च क्षणं सस्नेहमालीढवत्सगात्राः पुनर्गन्तव्यां दिशं प्रत्यभिवर्त्तन्ते इति। अथ समस्तमेव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दिवसमतिवाह्य क्षेत्रेष्ववलीढतृणस्तोमा मध्याह्ने निपीतपल्वलादिसलिलभाराः क्रमेण सायं सूर्य्यमस्तमनवेलायामासीनमवलोक्य परित्यक्ततृणगुच्छा मन्दं रोमन्थायमाना नीयन्ते पुनरेव गोष्ठगृहं प्रति गोपालदारकैः। पुनरपि अतीता निशा अभ्युदितो विभावरीविगमे पुनः शोणकिरणविसारी भगवान् सहस्ररश्मिः, प्रचलिताश्च गाः सह कृत्वा क्षेत्रं प्रति गोपालबालकाः। शैशवे मातुरङ्कमात्रसम्बलः शिशुर्म्मातृस्तनमेव चिरं सम्बलं जीवनस्य जानाति, जीवति च तस्यैव प्रधानसाहाय्येन, नान्येन वस्तुना सम्भवति तदानीं तस्य जीवनसन्धारणसामर्थ्यम्। परतश्च यदा क्रमेण तस्य वयो वर्द्धते सह च समुपजायते वस्त्वन्तराभ्यवहारशक्तिः, तया च समुपचितया साधारणोचितवस्तुभिरेव सम्भवेदस्य जीवितव्यविषयसुव्यवस्था, तदानीं न केवलं तस्य माता नापि मातृस्तन्यं सम्बलं प्रतिक्षणमेव समुपचिता क्रमेण समीपस्थापत्यस्य स्वयमेव जीवनसन्धारणक्षमता। पुनर्यौवने समुपगते स एव परानपि कांश्चिदभिरक्षति तदवलम्बनाः कतिचित् पुनरुन्नतिमतिमात्रामवलम्बन्ते, सन्ततञ्च कीर्त्तिः प्रसरत्यस्य दिग्दिगन्तेषु बहुधा। ततोऽपि तस्यैव यदा वार्द्धक्यमुदेति तदा विशीर्य्यते कर्म्मशक्तिः, परिस्फुरति किमपि शारीरं शैथिल्यं, लुलितं भवति संयतं शरीरचर्म्म, सन्दिग्धमिव सम्पद्यते शर्म्म ऐहिकं नाम। यस्य प्रौढे वयसि प्रबलां शक्तिं विवेचयन्तो नरा विज्ञतमा भूयो भूयः प्रशंसां कुर्व्वन्ति स्म, सर्व्वमल्लानां प्रौढामपि शक्तिं शिथिलितां नीत्वा यो नाम जगति भीमतामात्मनः प्रत्याय्य सिंहसाम्यमुप-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लब्धवान्, स एव काले करालकालशक्तिमतिक्रमितुमसमर्थः परार्थे वा स्वार्थे वा सुतरामनुपयोगं गतः, शतविधदुःखदारिद्र्य-विकृतो विकारमेवाधिगच्छति भूमौ। कियतो दिवसानतीत्य च स एव कठोरेण रोगेण समाक्रम्यते लुप्तविक्रमलेशः पराधीनतां गच्छति, आत्मशक्तिसाहाय्येन पदात्पदमपि चलितुं नेष्टे, किमप्यभीष्टमाप्तुमशक्तः केवलं दुःखेनैव जीवनकालमवशिष्ट-मतिवाहयति, प्रवहति च भूयानेव हृदये संसारकालिमा। पुत्रो वा कलत्रं वा स्वजना वा केऽपि नाऽलमग्रेसरन्ति तस्य सदभीष्टानि कानिचित् सम्पादयितुम्, सन्ततमभ्यर्थ्यमानोऽपि मानपरिशून्यः, केनापि सांसारिककठोरपातकानुबन्धेन न सुखलेशमपि वृणीते। एवमेव कालक्रमेण सर्वं जागतिकं वस्तु विपर्य्यस्यति, कालेना-विरलप्रवाहिणा सहैव सर्व्ववस्तूनामवस्थाविपरिणामो भवति, नास्ति तथाविधं किमपि वस्तु यत् कालस्य अधीनतामनुपलभ-मानमेकमेव भावं चिराय समुपैति। स्थावरजङ्गमानां प्रत्यक्ष-दृष्टानां कालेन भावान्तरमभिवीक्ष्य अदृष्टचराणामपि कल्पयितुं शक्यं कालाधीनत्वम्। न हि सकलमेव लोके प्रत्यक्षप्रमाणतः परिगृह्यते, संगृह्यते हि अनुमानादिनापि प्रमाणान्तरेण आत्मादिकमप्रत्यक्षीभूतं वस्तु। तथैवेदमपि दृश्यते—जगति—किमपि कर्म्म केनचित् सुचतुरेण शतैरपि चेष्टाभिः संसाध्यमान-मनिष्पन्नं तदेव कर्म्म कदाचित् तेन एव जनेन स्वल्पायासेनैव निष्पादितं कालातिक्रमेण। एवं बहुशो दृष्टं कालस्य कर्म्मावली-साधनेषु परमुपयोगित्वम्। बलीयानयं कालो नाम प्रतिरुणद्धि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सर्वेषामेव स्वतःसञ्चारिणीं शक्तिम्, सम्पादयति च स एव कस्यचित् महान्तमर्थम्। तत् सूक्तमिदं निपुणकवेः—"कालो हि बलवत्तर" इति।

३४। "अर्थस्य पुरुषो दासो दासस्त्वर्थो न कस्यचित्।"

अर्थो हि नाम चतुर्णां पुरुषार्थानामन्यतमः। स च संसारे सकलकाम्यसाधनीभूतः परमप्रयोजनीयतामध्यास्ते सांसारिकजीवानाम्। सर्व्वे एव विषया अर्थेन साध्यन्ते बाधयन्ते च कियन्तः पुरुषार्था अनिष्टभूतास्तैरर्थैरेव नूनम्। गृहस्थाः प्रातरारभ्य सध्याह्नं यावत् कठोरसूरकिरणतापवित्रस्ता अर्थमात्रमेव परिजनादिपरिपोषणस्य प्रधानसाधनमवगत्य इतस्ततो मुहुरुत्कण्ठिता धूलिविलुण्ठितचरणाः करुणापात्रभूता भूतार्थत एवार्थहीनतया दुर्दशां कामपि सुचिरं प्राप्नवन्तः सन्तोऽपि सर्व्वजनानां घृणापात्रतामेव संश्रयन्तः प्रस्तुताश्रुप्रवाहा वाह्यन्ते कर्त्तव्याधीनतयेव मूर्त्तया, तेनापि कठोरप्रयत्नेन रत्नादिलाभाय विफलमनोरथाः प्रतिरुद्धरथा इव महारथाः परावृत्तमुखा अभिमुखमापतितां महतीं विपदमेव मनसि सन्धारयन्तः संसाराद् वैराग्यमेव व्रजन्ति शून्यमनसश्च विषीदन्ति। केचिच्च आशायाः सयत्नपरिपोषितायाः सुचिरं परिवर्द्धितायाः काम्यगुणं फलं लभमानाः समुदितपरमानन्दा वृन्दारकवृन्दवन्द्या इव सम्मानिता अनुभूयन्ते साधारणजनैरेव। आकाङ्क्षापरिपूरितमानसैः सकलैरेव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वजनगणैर्वासनात्प्तिमुपगतवद्भिस्ते सुतरामेव सम्मान्यन्ते आराध्यन्ते चान्यैरपि कैश्चित् स्वकार्य्यसाधनकामुकैरहरहः समवधीरितजनान्तरसम्मानैः। तेन च कीर्त्तिराशिः सुविस्तृत इव सर्वासु दिक्षु अप्रतिरुद्धभावेन प्रसरति, सह च नानाविधैरेवोपायैः संवर्द्धते अर्थानां प्रसारः। तस्कराः काम्यसाधनीभूतानर्थानेव समुद्दिश्य चौर्य्यमतिमात्रमपकृष्टमपि समाचरन्ति, परिहाय महाजनसमाजनिन्दां, विस्मृत्य दुष्टशासकेन शिष्टजनपरिपालकेन सुनीतिपरेण महीपालेन निर्दिष्टानां कठोरदण्डानां भीतिलेशमपि, घोरान्धकारप्रच्छादितमलिनप्रच्छदावृतशरीराः सशङ्कपादविक्षेपमुपेत्य गृहस्थानां विशिष्टगृहेषु निपुणं सन्धिद्वारमुपपाद्य प्रविष्टवन्तस्ततः कियन्ति रत्नजातानि निष्कासयन्ति, दीनानामपि अवस्थाविपर्य्ययमनालोचयन्तः प्रशान्तधर्मबोधाः पानपात्रमात्रमपि दीनसम्बलमपहरन्तस्तेनापहृतेन अर्थं संगृह्णन्तः परिपालयन्ति स्वजनादीन्। राजानो नीतिनिपुणा यथा यथा नीतिसमाचरणेन प्रजाः सुखं तिष्ठन्ति, राज्ये न किमप्यनिष्टमुपजायते, तथा तथा चेष्टन्ते, तत्रापि कारणमर्थो धर्मश्च। तथाच राजभिः सुव्यवस्थमेव शासिताः प्रजा राजनि स्वीयाभीष्टफलसम्पादके परितोषमुपेत्य तदिष्टमुपपादयितुं यतन्ते, परैः क्षितिपालैस्तस्यैव राज्ञो राज्ये समाक्रान्ते राजभक्त्यनुप्राणितप्राणा निरभिमाना अपि साभिमानाः प्राणैः पणै राज्यरक्षायै प्रवर्त्तन्ते, प्रवृत्ताश्च कर्मसु सफलतामुपलभ्य राजानमेव सार्थकोद्यमं कुर्व्वन्ति, प्रजासु अननुरक्तो नीतिपरिशून्यञ्च व्यवहरन् राजा प्रजाभिर्नाभिनन्द्यते,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नापि तस्य कार्य्येषु कथमपि प्रजाः सचेष्टा भवन्ति, ततश्च राज्ञः कार्य्यहानिरर्थहानिश्च राज्यादिपरिभ्रंशेन। वाणिज्यकारिणो बहुषु देशेषु गत्वा कति नाम कष्टानि स्वीकृत्य नानावस्तूनि संगृह्णन्ति विगृह्णन्ति च कर्म्मानुबन्धेन बहुभिरेव प्रधानव्यवसायिभिर्बहुवारम्, ततो व्यवसायकाले तूलदण्डेषु निपुणहस्तचालनेन स्वल्पं वस्तु मापयन्ति, वस्तूनां क्रयमूल्यादिकमधिकं विवृण्वन्ति, विभ्रामयन्ति च बहुलैरेव मिथ्यावचनैर्वस्तुक्रयकारिणो मनुजान्। तत्र तत्र सर्व्वविधिष्वेव असदाचरणेषु कारणतां लभन्ते अर्थाः, यथा यथा अर्थवृद्धिः स्यात्, यथा यथा च विभ्रान्ताः क्रयकारिणो मूल्यमधिकं वस्तूनां प्रददति, तथा तथा एव यदमी प्रवर्त्तन्ते, तत्कथमन्यत् कारणमस्त्वर्थमन्तरेण तेषां तथाविधव्यवहाराणाम्। राजपुरुषा अपराधलेशं सत्यमसत्यं वा प्रचुरतरमेव विज्ञाप्य अपराधितया प्रख्यापितेभ्यस्तेभ्योऽनर्थकमेवार्थजातमुत्कोचविधया प्रार्थयन्ते, लभन्ते च बहुलम्, अप्राप्ताश्च शुद्धचरितानपि भूयो भूयो निर्य्यातयन्ति। वयमत्र कर्म्मबहुले संसारे प्रभातमारभ्य पुनः प्रभातं यावद् यानेव जनान् कर्म्मनिरतानवेक्षामहे, तेषु तेषु गौणतो वा मुख्यतो वा अर्थ एव उद्देश्यरूपेण वर्त्तते, अर्थमेवोद्दिश्य जनाः सर्व्वत्र सर्वं कुर्व्वन्ति प्रायेण। अर्थेन न कुर्व्वन्ति ईदृशं कर्मैव नास्ति। अर्थमात्रमुद्दिश्य घातुकाः निरपराधमपि जीवमकाले एकपद एव कालकवलं प्रापयन्ति, नापेक्षन्ते कोमलतां, नापि साधुभावं—येन ततः प्रतिनिवृत्ताश्चिराय पारलौकिकं कमपि सारमारचयन्तः साधुभावेषु चिरस्मर-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

णीयतां गच्छन्तु इति। उच्चा वा नीचा वा मध्यमा वा विज्ञा वा मूर्खा वा सर्व्वे एव अर्थसाधनमनुसरन्तः संसारेषु चलन्ति—यतः सुसिद्धमर्थस्य एव सर्व्वार्थसाधनत्वं, प्रयोजनं यत्किञ्चिदुद्दिश्य चास्ति लोकानां वर्त्तनम्। सर्व्वत्रैव प्रयोजने अर्थः प्रधानं हेतुरित्यत्र नास्ति विसंवादः केषाञ्चिदपि मुख्यतमानाम्। स चार्थो बहुभिरायासैरेव जनैः सम्प्राप्यते न तु चेष्टाहीनतया वर्त्तमानैरितरलोकैः। ये तु अदृष्टमेव सर्व्ववस्तुसाधकं मन्यमानाः पदात् पदमपि न चलन्ति, आलस्यसहायतया वा अदृष्टमात्र-समुद्देशाद्वा गृहमेव तावदधिवसन्ति, ते तु निश्चितमेव कार्य्यभ्रष्टा अनासादितार्थबन्धा मनोरथाद्विश्राम्यन्ति। उद्यम एव मेरुदण्डो निखिलार्थानाम्। तथाच श्रूयते—“उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्य्याणि न मनोरथैः” इत्यादि। न खल्वर्थाः कस्यापि स्वयमुपेत्य पादान्तमवलम्बन्ते, यदि बहुलचेष्टा सुप्रयुक्ता स्यात्, तदा सैव अर्थसाधनविधौ उपयुज्यते। तपोभिरिव पुरुषार्थाः यत्नविशेषैः सम्पादितैरुदेति भूयानर्थः येन सर्व्वसंसाराः प्रकर्षं सुखसम्पदश्च भूयो विभावयन्ति भावान्तरेण लोकसार्थान्। प्रार्थितास्त एव धनवन्तः परानुपकर्त्तुं शक्नुवन्ति स्वार्थञ्च बहुल-मुपपादयितुं प्रभवन्ति, अत एव यत्नः कर्त्तव्यः सुमहानेव अर्थस्य कृते, दासेनेव तदनुसरणं कर्त्तव्यम्, येन अचेतनोऽपि स परितुष्ट इव स्वयमुपैति, न तु स एवार्थो वशीभूत आगन्तेति मन्तव्यम्, यतः सूक्तमिदं कवीनाम्—“अर्थस्य पुरुषो दासः” इत्यादि।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

३५। "दृश्यं तमसि न पश्यति दीपेन विना सचक्षुरपि।"

संसारोऽयं कर्म्मबहुलः। कर्म्माणि च नानाविधानि नाना-जनभेदेन नानास्थानभेदेन च। तानि च कर्म्माणि बहुलकारणानां सहकारितामपेक्षन्ते, उपेक्षन्ते च विरुद्धानां सहस्रसंख्यकानामपि समवधानम्। तथाहि यथा अन्नभोजनादौ सूपादीनि बहुलतया एवोपकारकतां वहन्ति, तैर्विना अन्नादिमात्रेण भोजनस्य साधनतासत्त्वेऽपि न सुष्ठुतृप्तिसहकारेण शरीरपोषणादिषु भृशमुप-कारि जायते, तृप्तिमन्तरेण भुज्यमानं वस्तु उदरस्थं भूत्वा परि-णतिविशेषमुपलभ्य न शरीरदृढ्ढ्यादिकं प्रत्युपयुज्यते। यथाच तपः प्रभृतिषु नियमानां शास्त्रविहितानां परिरक्षणं सहकारमापद्यते सद्यस्तेन तेन च सहकारिभूतेन नियमरक्षणेन तपस्यादीनां सम्पूर्णाङ्गतया सिद्ध्यादिषूपयोगिता व्यवतिष्ठते। असम्पूर्णाङ्गं हि कर्म न फलजनकतां लभते पूर्णाङ्गं हि फलजनकं स्यात्, अत एव पूजादिष्वङ्गहानिभयात् तन्त्रधारकादिसाहाय्यमवलम्बन्ते, तन्त्रधारकस्य पूजकापेक्षया समुत्कर्षविशेषभागी प्रयोजनीयो भवति, तत्साहाय्येन पूजकास्य प्राणायामादिबहुलसहकारिवस्तुसमव-धानेनात्मनः सुगभीरचिन्ताशक्तिमुद्भाव्य आराध्यरूपमविकल-मात्मनि संक्रमयितुं शक्तिमुपगच्छन्ति। स्वच्छा च प्रसरति तत एव काचिद् मुक्तिरिव दशापरम्परा। रूपकाभिनयादौ रमणीय-चरितप्रस्तावमालोचयन्तः काव्यरसानुशीलनतत्पराः काव्यरसग्रह-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चतुरा वा प्रधानरसानुगुणविषयाणां सन्दर्शनं कुर्व्वन्तः सहायीभूतक्षुद्रचरितसाहाय्येनैव प्रधानरसभाजः, अन्यथा येनांशेन अभिनयस्य रसोद्रेकः सहृदयानां दर्शकानां चेतसि तन्मात्रसन्दर्शनेन तन्मात्रपर्य्यालोचनेन च न कथमपि तथा गभीरं रसं लब्धुमलमिति। मलापहृतचेताश्च सामाजिकः परमानन्दमधिगच्छति ब्रह्मानन्दसहोदरं, येन तिरोधीयते सर्व्वमेव वस्तु मनःसमीपतः। एवमेव सहकारीणि वस्तूनि प्रधाने वस्तुनि उपयुज्यन्ते, सहकारिणः क्रमेण रसोल्लासकतया अनुप्राणितं रसान्तरेण सामाजिकहृदयम्। प्रधानपर्य्यालोचनतः प्रतिपद्यते प्राधान्येन शृङ्गारं वा वीरं वा शान्तादिकमपरं वा कमपि प्रकृष्टरसं; तत्रैव यदि क्षुद्रस्य कस्यचित् चरितस्य परित्यागः स्यात्, अंशविशेषस्य वा अनुपनिबन्धः स्यात्, तदा विच्छिन्न इव मूलरसप्रवाहो विशृङ्खलतामिव काञ्चित् समुत्पाद्य विरागमेव रसानुरक्तानां काव्यभक्तानां परिणमयेत्। अपि च चित्रकर्म्मणि बहुलान्युपकरणानि व्यवह्रियन्ते, समाह्रियन्ते च बहुलचेष्टाभिस्तानि तान्युपकरणानि। तैश्चित्रकर्म्म सुव्यवस्थितं जातं लोकानां लोचनेष्वतिमात्ररमणीयतया समुल्लासमानं चित्रितदेशानामविकलप्रतिबिम्बसम्पातनेन मनोमुकुरे परमां तृप्तिमेव जनयति निरन्तरम्। सजीवा इवाभासते चित्रिता मूर्त्तिः, जल्पन्निव हसन्निव धावन्निवावतिष्ठमान इवोत्पतन्निव च समुपलक्ष्यते चित्रे तथा तथा कल्पितो जीवः। तत्रैव चित्रे यदि प्रकृतप्रतिकृतिसारूप्यसमुपस्थानोपयोगिनी यथायथवर्णव्यवस्था न स्यात्,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तदा चित्रकर्म्म असम्पूर्णतामेव संश्रयद् विघटयेदेवादर्शीभूत-मूर्त्तिसाम्यं, तेन चित्रदर्शनाधीनरसोपस्थितिविरोधः समापतेदिति तत्सहकारितया निर्दिष्टा यथायथवर्णव्यवस्था तत्र प्रयोजनीया। प्रयोजनीयतामधयासते च वर्णरचनासाधनीभूतास्तूलिकादयः, तान् विना चित्रकर्म्मणामेकान्तत एवासम्भवापातात्। किञ्च चाक्षुषप्रत्यक्षादौ आलोकसमवधानमाश्रयमहत्त्वमुद्भूतरूपादिकञ्चेति कारणानि सहकारीणि बहूनि विद्यन्ते ; तत्र तत्र एकस्यैव कारणस्याभावे यत्प्रत्यक्षादिविघटनमिति शास्त्रसिद्धमनुभवसिद्धञ्च। तथाच दृष्टं—यस्यैव घटस्य प्रत्यक्षमालोकसमवहिते भूमिभागे तत्रैवालोकापसारणे प्रत्यक्षासत्त्वं पूर्व्वतश्च सति अन्धकारे यत्र सतोऽपि घटस्य न प्रत्यक्षं तत्रैव पुनः क्षणान्तरे आलोकानयने प्रत्यक्षं तस्य। एतत् सर्वं विविच्य किमपि विशिष्टं वस्तु आश्रित्य प्रोक्तं कविना—"दृश्यं तमसि न पश्यति" इत्यादि।

३६। 'भगवान् भक्तियन्त्रितः।"

जगदिदमद्भुतं निर्म्माणं विश्वविधातुः सृष्टिवैचित्र्यसम्पादनकुशलस्य महामहिम्नो महनीयप्रभावस्य। अत्र सन्तुन्नता अवनताश्चेति द्विविधा एव लोकसम्प्रदायाः। अवनता उन्नतानामधीनतामाश्रयन्तः श्रयन्ति संसारेषु निजजीविकानां परकीयजीविकानाञ्च परिपालनक्षमताम्। प्रभूणां चरणरजःस्पृष्टशिरसो विनीतभावेन तेषामेव मानसं सन्तोषमुपनयन्तः—पुरुषार्थानभिलक्षयन्तः—लक्ष्मीमतुलां जनयन्तः—शान्तिमनन्तामन्तःकरण-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तत्त्वेषु समनुभवन्ति, उन्नताश्च अवनतेषु स्नेहपरवशा वा तदीयसेवाजनितपरितोषविशेषेण वा सेवकानामुपरि कृपापूर्ण-हृदयेन कटाक्षमभिक्षिपन्तो निरपेक्षभावेनैव समुत्सृजन्ति जन्तुमात्रसमादरयोग्यामिव समुन्नतजनभोग्यां समुन्नतिमुन्नीयन्ते च क्रमश एव तैस्तैः प्रभुभिस्ते ते अधीना नानाविधविलास-कलादिसम्पादनोपयोगिषु समुन्नतपदेषु। उन्नतिजनितमहानन्देन च जागतं जन्मप्रकर्षं लभन्ते। अस्ति जन्तुमात्राणामिव मानस-वशीकारयोग्यः कोऽपि विषयो मादक इव द्रव्यविशेषो विशेषयति समुपहितो जीवानामन्तःकरणतत्त्वस्य बन्धनम्। तथाच गुरवः शिष्यगुणपरितुष्टाः शिष्यनिवहेषु तदीयबुद्धिप्रकर्षमिव महाशान्ति-जननमुत्प्रेक्षमाणा गुणवत्सु शिष्येषु अनुरज्यन्ति, रूपादिकं न तत्र शिष्याणामुपरि महत्याः प्रीतेर्निदानतामधत्रास्ते, समस्तमिव हृदयग्रन्थिमेकधा परिवर्त्य गुरूणां गुणवशेन शिष्या गुरुगृह-वर्त्तिजनसाधारणानामिव सम्पादयितुमर्हन्तः काञ्चित् परितुष्टिं सुखं निवसन्ति। परितुष्टेन च गुरुणा स्वेच्छया साग्रहमर्पितेन विद्यावस्तुना महतीमुन्नतिमिव समासादयन्ति शिष्याः। वश्येषु स्वत एवान्तरः स्नेहः प्रवर्त्तत इति। दृष्टं बहुषु स्थलेषु स्नेहे हि वश्यतया अधीनतास्वीकारः कथञ्चिदुपयुज्यते। तथाच पितरावपि पुत्राणां मध्ये ये अधिकतया वश्यतामुपलभन्ते पित्रोरुपरि महता-नुरागेण तयोः शतैस्तैश्चित्तसन्तोषमापादयितुं चेष्टन्ते स्वस्य कायिकेन मानसिकादिना वा कष्टविधिना स्वकृतेन पित्रोः सन्तोषलेशमप्युपार्जयितुं शान्तिमुपगता आत्मनां काममपि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कृतार्थतामनुभवन्ति, न श्रोतुमर्हन्ति लेशेनापि पितृनिन्दा-वादम्, अभिभवन्ति च निन्दावादकारिणः कदाचिदुपलभमानाः। नानाविधैरेव पितृपुरुषप्रवर्त्तितैः प्रशस्तचरितैरुपपाद्य प्रकर्षवतीं कीर्त्तिधारां पितृपुरुषाणां कीर्त्तिकलापस्य अक्षुस्रतां परिरक्षन्ति। परिपालितपितृपुरुषकीर्त्तयश्च पुरुषपदवाच्यतां स्वीयां प्रतिपादयन्ति। त एव समस्तं पित्रोः स्नेहमुपगच्छन्तः शैशवावस्थात एव यथायथं साग्रहं शिक्ष्यन्ते परिपाल्यन्ते च पितृपरिजनैरविरल-यत्नपरम्परया। अङ्कुरावस्थायामेव विज्ञायते प्रकारसन्दर्शनेन यत् कियत्परिमाणां परिणामि वटवृक्षः समुन्नतिं विस्तारञ्च समुपलप्स्यते, तदवगमेन च रोपयितारो वृक्षमूलेषु सलिलसेकयत्नं स्वीकुर्व्वन्ति, अन्यथा च तस्य परिचर्य्याविशेषमारचयति। अस्ति च शरीरवर्त्तिविद्युतामिव नियमः यद् यो यं बहुमन्यते तस्य स एव बहुमानः स्वस्य उपरि बहुमतस्यापि जनस्य बहुमानमुपजनयति। तथाच प्रणयिनोर्द्वयोरेव नैकदा परस्परं प्रणयसंक्रमः स्यात्, परमेकस्य यस्य कस्यचिदेव आदौ तदनन्तरञ्चापरस्य, यस्य आदौ प्रणयः प्रगाढो जातस्तस्यैव गभीरप्रणयमार्गः परस्य हृदये तथा वैद्युतविधिना कञ्चिद्भावमुपधारयति येन न तदीयहृदयस्य स्थिरतया प्रणयपराङ्मुखतया वर्त्तनं सम्भवतीति। मनःशक्तिरति-प्रबला नाम जीवानाम्, तया च निर्जीवेष्वपि प्रस्तरादिषु चिन्तितस्य देवविशेषस्य शक्तिराविर्भवन्ती विश्वासवतां शुभादिविधौ प्रवर्त्तते। तथाच पुराणवार्त्ता यथा—एकलव्यो नाम कश्चित् चण्डाल-बालो द्रोणसमीपतः शस्त्रशिक्षामुपगन्तुकामः प्रार्थयमानोऽपि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आचार्य्यं द्रोणं तेन प्रत्याख्यातः कुत्रचिदतिगहने कानने प्रस्थाय द्रोणस्य मूर्त्तिं पार्थिवीं निर्म्माय तामेव द्रोणमूर्त्तिं गुरुत्वेन परिकल्प्य तथा युद्धविद्यापारदर्शितामात्मनैव समुपगतवान् यथा स्वयं द्रोणेन शिक्षिताः सुनिपुणा अपि गुरुकृपाराशिमधिगता अपि अर्जुनादयो नैव लेभिरे, तथा प्रत्यक्षीकृत्य च विस्मितो द्रोणः अर्जुनाय सर्व्वयोद्धॄणां प्रकृष्टतादानाय प्रथमतः प्रतिश्रुतिं कृतां रक्षितुकामो गुरुदक्षिणाच्छलेन एकलव्यस्याङ्गुष्ठं शरक्षेपप्रधानसाधनं ययाचे, सोऽपेिग्रकपद एव तमेवाङ्गुष्ठं गुरुदक्षिणाविधया विसर्ज्य सन्तुष्टान्तःकरणः प्रतस्थे। किमधिकेन, भगवानपि जागतजनैः कथमप्यनभिवीक्षितस्तापसैर्वा सांसारिकैर्वा केवलया प्रगाढभक्त्या एव समाकृष्यते, सर्व्वमेव परित्यज्य एकस्य भक्तस्य कृते कति नाम अलौकिकान्यपि कर्म्माणि निर्वर्त्तयति। असम्भवं वस्तु सम्भावयति सम्भाव्यञ्च कालक्रमेण कर्म्मगत्या च विनिवर्त्तयति। तथाच भगवान् सकलशक्तिसम्पूजितः श्रीकृष्णः सुनिष्णातो विविधविधिष्वपि पाण्डवकुलचन्द्रमसो धर्म्मानुरक्तस्य भक्तिसुधाप्रक्षालितमानसमलस्य युधिष्ठिरस्य भक्तिगुणेन कौरवकुलं दूरे विसर्ज्य पाण्डवकुलस्यैव मङ्गलचिन्तायां नियतं व्यापृतो बभूव, अर्जुनस्य रथे सारथ्यमपि हीनकर्म्म स्वीचकार, प्रह्लादस्य हिरण्यकशिपुतनुजस्य भक्तिगुणबद्धो यत्र यत्र तस्य विपदमभिलक्षयामास तत्र तत्रैव तां विपदं प्रतिहन्तुकामः प्रवव्रते, हिरण्यकशिपुना पित्रा करिणो मदमत्तस्य पदतले मर्द्दनेन मारणमभिप्रेत्य क्षिप्तं प्रह्लादं परिपालयामास तस्यैव मदमत्तस्य करिणः समुद्धतभावं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विनीय निजप्रभावेण, महोन्नतशैलशिखरात् राजपुरुषैः प्राण-विनाशनकाम्यया भूमौ क्षिप्तो रक्षितो नारायणेन तूलशय्यामिव विस्तीर्य्य धरणीतले, पित्रा समुपपादितञ्च तस्यैव पुनर्जीवनापहरणाय विषलड्डुकं मधुरमोदकत्वेन परिणमय्य परिपालितो भक्तः प्रह्लादः। यो हि कृष्णनाममात्रस्मरणेनापि भक्तिरसाप्लुतो नान्यत् किमपि कर्म्मापेक्षितुं क्षमते, केवलं कृष्णचिन्तनमेव जगति सारवदिति विज्ञाय तत्रैव लग्नो भवति, भाविनः सर्व्वस्यैवाशुभस्य तत एवासम्भवतां निर्द्धारयति प्रकृष्टो ह्यसौ भक्तिभावः, यस्य प्रभावेण ऐश्वर्य्यपर्य्यायाधीश्वरोऽपि भगवान् बालस्य अपरिस्फुटसकलविज्ञानस्याप्यधीनतामुपजगाम। परतश्च हिरण्यकशिपुना पित्रा पृष्टो बालकः प्रह्लादो यदा कथयामास—'सर्व्वत्रैव वर्त्तते मे नारायणः।' पितरि 'सर्व्वत्र यदि ते नारायणस्तदत्रापि समीपवर्त्तिनि स्तम्भे वर्त्ततां स' इति उक्तवति वाढमिति यदा प्रह्लादः प्राह, तदैव तेन सवेगमभिहतात् स्तम्भात् भगवानसौ नरसिंहरूपमुत्कटं प्रकाश्य भक्तस्य प्रतिकूलचारिणं हिरण्यकशिपुं नखैर्विदारयन् पञ्चत्वमापयामास। प्रह्लादश्च तत्रैव राज्ये समभिषिच्य निरुपद्रवं भक्तस्य भगवच्चिन्तासाहाय्यं सम्पादयामास। एवमेव च ध्रुवस्य पञ्चवर्षवयस्कस्य हिंस्रजन्तुकदम्बकसमाकीर्णे निविडारण्ये रक्षां चकार—तस्य परमया च भक्त्या सुतरां सन्तुष्टः स्वकीयवैकुण्ठलोकस्य ऊर्द्ध्वं कञ्चिन्नूतनमेव लोकं तदर्थं निर्म्माय दर्शितवान् भक्तजने कमपि स्नेहातिरेकम्। एवं हि नाम युगे युगे भक्तिपारतन्त्र्यं भगवतः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परिचिता। ऐश्वर्य्यवतामस्ति सर्व्वान्तर्यामिता नाम काचिच्छक्ति-र्यया सर्व्वालच्यस्याप्यान्तरतत्त्वस्य विज्ञानेन मानसगुणविशेषस्य भक्तेरपि विज्ञानं भगवता सम्भवति, तस्यैव च ज्ञातभावस्यानुसारेण भक्तेषु भगवन्तः परितुष्यन्ति। द्वापरे द्रौपदी यदा दुःशासनेन केशेषु परिगृहीता कौरवसभायां विवस्त्रा कर्त्तुम् अभिलषिता, तदैव एकान्तया भक्त्या समभ्यर्थितो भगवान् तस्या वसनरूपेण परिणम्य लज्जां परिरच्य दर्शितवान् आत्मभक्तिमर्य्यादां, सुप्रथितञ्च प्रचारयामास सतीकुलशिरोमणिभूताया द्रौपद्याः पातिव्रत्यप्रक-र्षम्। उद्धतं वर्त्तमानाश्च भगवति तदुत्थेन पापेनैव परिणामे महतीमवनतिं लभन्ते विरमन्ति च सर्वा एव सम्पदस्तेषामेकपद एव। तत्र प्रमाणं शिशुपालजरासन्धादयो दानवादयो वा—उक्ताया भक्तेः प्रणयस्य स्नेहस्य हृदयानुरागरूपस्य दृष्टः सुमहान् प्रकर्षो वृन्दावनलीलायामेव भगवति। तथा च वृकभानुनन्दिन्या राधायाः प्रणयपर्य्यायेण बद्धो नारायणः शैशवावस्थायामेव कियतीं लीलां चकार। कालिन्दीसैकतवर्त्तिनो नीपपादपस्य तलदेशे विलास-भोगयोग्ये मधुरस्वरं वेणुमुपादाय प्रोच्छ्वासितेन रागविधिना पशूनामपि मनो मादयन् कोऽपि संसारदुर्लभ इव प्रतीयते स्म। तत्र हि भक्त्या—प्रणयादिवस्तुना वा समाकृष्टो हरिः सर्वेषामेव काम्यफलं सम्पादयामास। बालोऽपि शिशुजनैरसाध्यानि कानि-चित् कर्म्माणि वृन्दावने विरचय्य आत्मन ईश्वरतां स्पष्टमेव लोकानामन्तःकरणेषु प्रतिफलितां चकार। यत्प्रस्तावोऽद्यापि प्रकर्षमेव प्रत्याययति भगवतो वृन्दावनबान्धवस्य। ईदृशवृत्तः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विशेषाणां शास्त्रवाचाञ्च बहुलानां पर्य्यालोचनेन विज्ञायते संक्षेपादिदमेव यत्—"भगवान् भक्तियन्त्रित" इति।

३७। "काव्यप्रकर्षः कविप्रकर्षश्च।"

काव्यं काव्यकुशलैः कविभिः सुरसपारदर्शिभिर्भागद्वयेन विभज्य प्रतिपादितमलङ्कारशास्त्रे काव्यप्रकरणे दृश्यं श्रव्यञ्चेति। साधारणकाव्यलक्षणन्तु—"वाक्यं रसात्मकं काव्यं", दृश्यन्तु अभिनेयं नाटकादिकं, श्रव्यञ्च महाकाव्यखण्डकाव्यादिकं गद्यमयं पद्यमयं तदुभयमयञ्च। तत्तत्काव्यानां प्रकर्षापकर्षविचारोऽपि प्रतिपादितः काव्यालङ्कारशास्त्रेष्वेव। तथाच अलङ्कारादयः काव्यगुणा एव काव्यानां प्रकर्षसाधकाः अपकर्षसाधकाश्च दुःश्रवत्वादयो दोषाः—येन अलङ्कारेण वाक्यस्वरूपस्य काव्यस्य तथा वैचित्र्यविशेषः समुपजायते, येन हृदये लग्नमिव भवति काव्यजातं, दुःश्रवत्वादिना च काव्ये किमपि माधुर्य्यमुपलब्धु-मासक्तिविशेषः प्रथमत एव तिरोभवति, अर्थदोषश्च काव्यस्य प्रकृतार्थबोधविधौ प्रतिकूलतामाचरति, तथाहि यथा पुरुषाणां काणत्वखञ्जत्वादयः परम्परया आत्मनो निकृष्टतां जनयति, तथैव दोषाः परम्परया काव्ये कमपि विरागमुत्पाद्य रसप्रतिबोधप्रतिरोध-कतामेव समादधति। अत एव तस्य दोषस्य काव्ये सत्त्वे काव्यस्य प्रकर्षस्तावदास्तां परमप्रकर्ष एवांशविशेषेष्वाशङ्क्यते। तथाच "निर्दोषं गुणवत् काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम्" इति पूर्व्वप्रसिद्धकविकुल-मुख्यैरुपपादितं वस्तु तथ्यतामेव सन्धत्ते। दृश्यकाव्ये यानि यानि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लक्षणानि आलङ्कारिकैरुक्तानि तेषां सकललक्षणानामिव यदि समन्वयः स्यात् तदेव दृश्यस्य सुमहान् प्रकर्षः, सकललक्षणाना-मुपयोगेऽपि बहुलानां समन्वयोऽपि सम्पादयति काव्यानां प्रकर्ष-पर्य्यायम्। श्रव्यकाव्यानि पुनर्महाकाव्यलक्षणादिषु कस्यचिल्ल-क्षणस्य समन्वयेन दोषादिकाव्यापकर्षकवस्तुपरिहारेण च प्रकर्षं लभन्ते। परं सुरीतिगुणालङ्कारयुक्तस्य काव्यस्य सुघटितशरीरस्य गुणवतः सालङ्कारस्येव चात्मनः प्रकर्षो महानेव। काव्यप्रकर्षे अर्थगाम्भीर्य्यादीन्यपि लक्षणबहिर्भूतान्यपराणि वस्तून्युपयुज्यन्ते, यैरुपहितैर्गुणैः प्रतिपाद्यविषयास्तथा गभीरतया आत्मप्रकाशं पर्य्यालोचकानामात्मसु निर्वपन्ति, यथा बहुकालात्ययेऽपि नापक्रा-मति हृदयादीदृशः काव्यकथावादः। तथाच काव्यप्रकर्षवर्ण-नावसरे श्रुतमस्माभिः “उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्। नैषधे पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः॥” इति। यत्र यादृशः प्रतिपाद्यविषयस्तत्र तथा तथा पदभावादिसन्निवेशनेन विना यद्यन्यथा निबध्यते कविभिः काव्यबन्धः, तदा अर्थस्य असमञ्जस-तया रसविरोध एव सम्भवन् व्याघातमेव प्रकृतरसस्य कुर्य्यात्, अत एवोपयोगी प्रकृतरसानुकूलपदभावादिसन्निबन्धः काव्येषु। यथा,—प्रणयविकाशाद्यवसरे यदि माधुर्य्यप्रसादाभ्यामुपनिबध्यते सन्दर्भस्तदैव कोमलविषयस्य प्रेमपर्य्यायस्य सुतरां विकाशः सम्भवेत्, न त्वोजोगुणसमुपयोगि-कठोरतरपदवाक्यनिबन्धेन। रौद्रवीभत्सादिरसे च कठोरतरपदभावनिबन्ध एव भूयसोपयुक्तः, अत एव तत्र तत्र तथा तथा निबन्धः प्रकर्षमुपजनयति काव्यमार्गे

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कवीनाम्। अन्यथा उन्मत्तस्येव असम्बद्धप्रलापः सम्मतिमात्रं घृणामेव समुत्पादयति काव्यरसरसिकानां सुविमले भावानुप्राणिते अन्तःकरणे। प्रकृष्टकाव्यानां केषाञ्चिदत्र केचन गुणाः समालोच्यन्ते। तद्यथा—प्रथमतो माघे प्रायेण सर्वं एव काव्यगुणाः परिलक्ष्यन्ते, भावानां सरलता, अलङ्कारनिवहानां स्वारसिकता, प्रयोजनीयेषु स्थलेषु नीतितत्त्वस्य गभीरपर्य्यालोचनं, गभीरभावानामपि सरलभावेन प्रतिपादनम्। अपिच नीतितत्त्वादिपर्य्यालोचनप्रस्तावेऽपि जागतिकानामुन्नतिविशेषं प्रति महदनुकूलत्वम्। तथाच—"नीतिरापदि यद्गम्यः परस्तन्मानिनो ह्रिये। विधुर्विधुन्तुदस्येव पूर्णं स्तस्योत्सवाय सः।" "यजतां पाण्डवः स्वर्गमवत्विन्द्रस्तपत्विनः। वयं हनाम द्विषतः सर्व्वः स्वार्थं समीहते॥" "सम्पदा सुस्थिरम्मन्यो भवति स्वल्पयापि यः। कृतकृत्यो विधिर्मन्ये न वर्द्धयति तस्य ताम्॥" सन्ति च नानाविधदर्शनमतसमन्वयोऽपि यथा यज्ञवर्णनावसरे यज्ञवृत्तान्तनिवेदका मीमांसादर्शनवृत्तांता अन्तरान्तरा च वेदांतसांख्यवादाः—येन पर्य्यालोचितेनानेन सर्व्वत्र विषयेषु विज्ञता प्रसरति, धर्म्मतत्त्वं नीतितत्त्वम् आत्मतत्त्वं समाजतत्त्वं सर्व्वमेव विषयजातं सूक्ष्मानुसूक्ष्मभावेन ज्ञानविषयतामुपलभमानं जगति महान्तमुपकारमेव सम्पादयति। काव्यस्य चतुर्वर्गसाधनतां सम्यक् तदेव काव्यं साधयति, यद्धि काव्यं नानातत्त्वविनिवेदकं नानाविषयेषु महतीमभिज्ञतामापादयति, विनोदयति च मानसमलीभूततमःसङ्घातम्, शान्तयति सुकठोरदुःखवितस्तमस्तमित-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समस्तसुखसम्पत्तिकं विशृङ्खलं मुग्धमन्तःकरणम्, तथात्वमेव च परिदृश्यते अभिज्ञानशकुन्तले माघे नैषधे उत्तररामचरितादौ च प्रकृष्टे काव्ये। तेषु तेष्वालोच्यमानेषु दुःखवृत्तान्तपर्य्यालोचनावसरे अभिभूयते सहृदयानां शान्तसम्पन्तरं गभीरदुःखधारास्कन्देन, समस्तमेव सुखमयं जगत् प्रतिभासते मूर्त्तिमदिव दुःखजालं, ज्वालाव्याप्तमिव हृदयस्य भावजातं विषविषमतामेवोपैति। सुखवृत्तान्तवर्णनायाञ्च गभीरशोकविदूषितं चेतः सचेतसां क्रमेण परिक्रामति कुत्रचिदतिसौम्ये भावप्रवाहे, येन सर्व्वमेव दुःखपूर्णभावजातं विलुप्यते, समाप्यते च तत्रैव कोऽपि हृदयद्रवः। उन्मत्तकृत इव वाक्यबन्धः सहसा विस्मर्य्यते प्राक्तनः कष्टमयो भावः, आस्तीर्य्यते पर्य्यङ्कलग्नतूलशय्येव कापि परमानन्दशय्या। एवमलौकिकभावसमुद्दीपकमेव सत्काव्यं प्रकर्षमुपलभते, न तु सरलभावादिमात्रसमलङ्कृतमेवेति काव्यप्रकर्षप्रकारः। कविप्रकर्षस्तु यद्यपि काव्यप्रकर्षेणैव युज्यते, तथापि काव्यस्य प्रकर्षसाधकादपरमपि वस्तु वर्त्तते कविप्रकर्षसाधकं विलक्षणं, तच्च अलङ्कारादिकानां वाक्यसौन्दर्य्यसंवर्द्धकानां विरहेऽपि सरलभावावेदकसरलपदनिबन्धनम्। तथाच समाजशिक्षासु लब्धनैपुण्य एव विजयते कविषु काव्यकलाकुशलः, सा च समाजशिक्षा यथा सरलेन भावेन सरलेन च पदनिबन्धेन लोकानां काव्यार्थस्य अनायासेन हृदयङ्गमतया सम्पद्यते, न तथा दुरूहार्थानां पदानां दुरूहभावानाञ्च सन्निवेशेन। तथाच श्रूयते "कटुकौषधोपशमनीयस्य रोगस्य सितशर्करोपशमनीयत्वे कस्य वा रोगिणः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सितशर्कराप्रवृत्तिः साधीयसो न स्यात् ?" दृश्यते स्वत एव सरलेषु काव्येषु जनानामनुरागविशेषः अशेषतश्च तेषामेव सरलकाव्यानां हृदये सञ्चारणं स्वाभाविकानामेव विषयाणां हृदयजातभावनिवहेन साम्यप्रत्ययात् अनायासं हृदये तदुल्लासः, तथात्वेनैव च नातिकष्टं तद्वस्तु हृदये धारयितुमिति। शिक्षा हि हालिकसाधारणानामेव जनानामधिकप्रयोजनीया, शिक्षितानान्तु स्वतोऽपि बुद्धिवृत्तेः सुप्रकर्षात् कविसमावेदितविषयविज्ञानं सुसम्भवम्, अतः साधारणजनबोधगम्येन विषयेणैव शिक्षार्थसाधेयानां वृत्तानां विनिबन्धः समुपयुक्तः, तथाविधरचनाकौशलवानेव च कविः कविकुलललामभूतः सामाजिकशिरोमणिभूतैरभ्यर्थ्यते, तद्विपरीतश्च साधारणजनानामतिमात्रमनुरागमनधिगतो नूनं समाजशिक्षासु अनुपयुक्त इव परिहीयते। व्यर्थकामश्चासौ गभीरशास्त्रार्थमात्रपरिदर्शीति प्रख्यायमानः पण्डितसमाजेष्वेव कीर्त्तिं गच्छति, न तु साधारणजनेषु। तथाच प्रकृष्टकवयस्तत्रभवन्तः कालिदासशूद्रकादयः—येषां वाचि श्रुतमात्रायामेव स्वल्पभाषाविज्ञैरपि अदृष्टबहुलोकव्यवहारैः समधिगम्यते लोकवृत्तशिक्षा, वर्णितं तत्त्वं परिस्फुरदिव दर्पणविम्बे सुस्पष्टमाभासते, किमपि हृदयस्य अनिर्व्वचनीयं वस्तु अव्यस्तमुपतिष्ठते रसमयभावकदम्बकेन सह। तथाचैतदेव मतमालम्ब्य सूक्तं केनापि—"काव्येषु माघः कविकालिदासः" इति। अन्यथा यदि काव्यमार्गेणैव कविः प्रकृष्यते तदा माघकाव्यस्य सर्व्वतः प्रकर्षे कविरपि माघ एव प्रकृष्टः स्यात्, न कालिदास-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इति निरुक्ता वार्त्ता उन्मत्तजनप्रलाप इवोपहसिता परिह्रीयते इति कथासंक्षेपः ।

३८ । "चित्रकाव्यसङ्गीतानां रसाविष्कारे प्रभेदः ।"

विदधाति हि चित्रं काव्यं सङ्गीतञ्च तद्वर्णनीयविषयकदम्बकसम्मुखे समुपस्थापयदात्मनि तत्तद्वस्तुप्रत्यक्षजन्यसुखधाराम् । निपुणा हि चित्रकराः शिल्पशिक्षासु परमं नैपुण्यमधिगच्छन्तः समाचरन्तश्च भूयोभूयो निपुणं चित्रानुशीलनकर्म्म सागरं नीलिमनिर्म्मलरुचिं निस्तरङ्गं वेलाविचुम्बिजलभूषितं तथा चित्रे परिदर्शयन्ति यथा दूरादभिवीक्षमाणा वृद्धा वा युवानो वा बाला वा सत्यमेव सागरपतनमाशङ्कमाना नोपयान्ति सागरचित्रसमीपं, निवारयन्ति च परानपि तत्समीपगमनादिति दृष्टमनुभूतञ्च बहुशो बहुषु स्थलेषु । तथाच रङ्गे अभिनयदर्शनाद्यवसरे तत्तत्स्थानपरिचयाय पटा एव व्यवह्रियन्ते, येन नाटकीययोग्यस्थानानि दृश्यतया सहकारीभूय प्रकृते रसे अनुकूलतामुपलभन्ते, यदि तथाभूतस्थानं तथात्वेन न दृश्यते, तदा प्रकृतरसहानिरेव स्यात्, चित्रस्य तत्तत्प्रदेशतया अप्रत्यक्षे वस्त्राञ्चलमिव तत् अभिनेतॄणां पश्चादवतिष्ठमानं प्रकृतवृत्तस्य कृत्रिमताबुद्धिमनुकूलयत् प्रस्तुतं रसं तिरोधापयेत् । कृत्रिमोऽपि विषयः सुतरां सत्यतया कल्प्यमानः सम्पादयति पारिषदानामसामान्यं धन्यं रसप्रवाहमन्तःकरणतत्त्वेषु । अपि च यस्य स्वरूपं कदापि न दृष्टं पार्थिवनयनाभ्यां

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यस्यातिकाङ्क्षितो नियतमेव काम्यते समीक्षितुं नयनयुगलेन, स केनचित् प्रतिबन्धकेन समवहितेन यदि न शक्यते निरीक्षितुं तदा तददर्शनजन्यमन्तःकरणवर्त्ति दुःखजातमेकान्ततो हृदयमवसादयत् कार्य्यान्तरेषु प्रतिहन्ति समुत्साहम्, असाधारणजनदर्शनाद्यभाववशाच्च नैव शक्यते सञ्चेतुमलौकिकपुण्यप्रवाहम्। पतिव्रता चिरमाकाङ्क्षन्ती पतिरूपदर्शनसुखं शिल्पे न तदाकाङ्क्षां प्रतिनिवर्त्तयति, पुत्रवत्सला जननी प्रवासिनः पुत्रस्य चिरं विरहमसहमाना तदीयचित्रमालोकमाना कल्पितमूर्त्तेः शिरसि चुम्बनमारचयन्ती च कथञ्चित् तत्समागममेवानुभवति। मृतभर्त्तृका परलोकगतस्य कथञ्चिदपि पार्थिवशरीरेण लब्धुमशक्यस्यापि भर्त्तुरेकान्तकाम्यं चरणं साक्षादनीक्षमाणा शोकविवशा यदैव परमवसादमुपगच्छन्ती संसारं शून्यमभिवीक्षते, निरालम्बनम्मन्या सर्व्वमेव जागतिकं विषयं विषमिव व्यथाजननमुत्प्रेक्षते, सुधाकरकरेषु सन्तापकतां मलयानिलेषु मुहुरेव दावानलतुल्यतां सुधामयेषु सङ्गीतेषु मधुरकोकिलकाकलीषु च ज्वालामात्रसमुपहारकत्वमुन्नयति, तदैव स्वीयशयनगृहकुड्ये चित्रफलकगतं प्रकृतमिव पतिमुपस्थितं चित्रितं पतिमीक्षमाणा मरुभूमाविव प्रबलतरङ्गिणीसम्पातं दावानलदग्धारण्येष्विव द्रोणवृष्टिवर्षं समुपलभते निराशे सावसादे हृदये महान्तमाशाबन्धम्। पुनरपि समुदेति मानसे जगतः सारवस्तुबोधः, क्षणात् पूर्वं विषदृष्ट्योपेक्षितेष्वपि मधुरवस्तुषु क्षणेनैव माधुर्य्यबोधः समुपतिष्ठते, अप्रतिष्ठितोऽपि सुखबन्धः प्रतिष्ठित इव पदमादधाति मनसि, सर्व्वमेव जगदिदं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पीयूषमयमिव सुखं मूर्त्तिमदिव चन्दनरसप्रक्षालितमिव पर्य्येवेक्षते। साक्षीभूत इव तदानीमात्मनो हृदयदेवः शाश्वते पवित्रविधौ प्ररोचयति कालक्षेपमनपेक्षमाणः। दृष्टं निपुणतया चित्रिते लतापुष्पचित्रे मुग्धानां मधुपिपासुतया पतनं भ्रमराणां, पुष्पग्रहणाभिकाङ्क्षया प्रवर्त्तनं मुग्धबालकानां, पूजापुष्पसंग्रहकामुकतया पुष्पाहरणाय समुद्यमधावित्वं वृद्धानामास्तिकानाम्। सुविमलगगनं शशाङ्कलेखया तारकानिकरैरपरग्रहकदम्बकैश्चोपगतं चित्रितं समुपपादयति कामपुरदासीनताम्। नास्ति कोऽपि प्रभेदः प्रकृतवस्तुदर्शनजन्यभावबन्धात् तच्चित्रदर्शनजन्यभावानुबन्धानामितदेवोपवर्णितं महाकविना सकलकलाकुशलेन कालिदासेन विरहावस्थायां शकुन्तलाया वदनमभिवर्त्तमानस्य भ्रमरस्य शासनोपक्रममुपलक्ष्य—तथाच पूर्वं पूर्व्वरागावसरे बालतरुषु सलिलसेकसम्भ्रमोद्गतस्य शकुन्तलावदनमभिवर्त्तमानस्य तथावस्थाचित्रणेनात्मविनोदनमभिप्रेतं राज्ञा, ततस्तदेव चित्रं कालेनाक्षिगोचरीकृत्य सहसा तमेव भावं सत्यं सम्भाव्य दुर्विनीतव्यवहारशासनार्थमिव प्रस्तौति—"त्वां कारयामि कमलोदरबन्धनस्थम्" इत्यादिना। दृष्टश्च तस्यैव कवेर्मेघदूते यक्षसंवादे विरहतापोपशमनाय निजपत्नीरूपं निर्म्माय तच्चरणपातितया स्वचित्रपरिकल्पनेन कथमपुरभयोः सङ्गतावस्थासमुद्भासनेन विरहतापनिराकरणसमुद्यमः, यक्षस्य तत्तत्सर्व्वमावेदयति चित्रस्य प्रकृतसत्यवृत्तस्येव मनस्तापनिवारकत्वं कुत्रचिच्च सन्तापदायित्वमिति। अत एव चित्रं वचनविन्यासपरिशून्यमप्यशून्यमिव प्रतिभाति, नाना-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विधाङ्गभङ्गीसमन्वयेन सुखभावादिना जायते चित्राणां वचनोपक्रमप्रवृत्तिरपि। दृष्टमेकान्ततो राजकुमारादिसादृश्यवत्सु चित्रेषु शुकस्य वास्तवपुरुषभ्रमेण वाक्प्रवर्त्तनं यथा—"राजन् राजसुता न पाठयति मां देव्योऽपि तूष्णीं स्थिताः, कुब्जे भोजय मां कुमारसचिवैर्नाद्यापि किं भुज्यते? इत्थं राजशुकस्तवारिभवने मुक्तोऽध्वगैः पञ्जराच् चित्रस्थानवलोक्य शून्यवलभाविकैकमाभाषते॥" इत्येवं चित्रस्य यथायथमेव प्रकृतभावोपस्थापकत्वं दृष्टं बहुषु स्थलेषु। उन्नतावनतप्रदेशभेदेषु विचित्रवर्णिकासन्निवेशेन परिलक्ष्यन्ते आदर्शीभूतशरीरगता यथावस्थिता उन्नतावनतभावाः, तेनैव च सुसमञ्जसरससमुद्रेको महानुपस्थीयते हृदयान्तराले दर्शकानामिति पर्य्यालोचितमग्रत एवात्र। काव्यमपि कलाभेदः सम्भेदयति सामाजिकचित्तं नीतिचित्रमन्यादृशञ्च जगति प्रयोजनीयं वस्तुजातं, तेनैवातीतवृत्तविज्ञानेन वयं जानीमः सत्यं केषाञ्चिदस्मिन् जगति महाप्रतापेन प्रथितयशसां देवासुरवृत्तानाम्, उपचीयते च ज्ञानगरिमा सुतेजसां क्षत्रियनरपतीनां प्रतापसान्निध्येऽपि तदभिभवेन वर्त्तमानानामप्रतिहतकर्म्मणां ब्रह्मतेजसां पर्य्यालोचनेन ब्रह्मतेजोविषये, तेन च स्वीयधर्म्मेषु समुपजायते सुमहान् समासङ्गः काव्यादिपर्य्यालोचनकारिणामन्तःकरणेषु, फलञ्चास्य महदात्मन औन्नत्यम्। कावेग्रन कवयः शकुन्तलादीनां नायिकापदमध्यासीनानां दुष्मन्तादीनां च महाप्रभावाणां तथा तथा रूपवर्णनमुपक्रामन्ति यथा शकुन्तलादिकानां किमप्यलौकिकी लावण्यकला दर्शनपथमिवाधिष्ठाय चन्द्रबिम्बमिव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मूर्त्तिमाधाय समीपतो वर्त्तमानं समुपजनयति महतीं तृप्तिम् अन्तस्तत्त्वेषु। दुष्मन्तादीनां वर्णितरूपाणाञ्च काविप्र पर्य्यवेक्षणेन तदानीन्तनाः केऽपि महाप्रभावा नयनगोचरीभवन्ति, जागर्त्ति पुराणराजानां कोऽपि भावानुबन्धः, येन सुप्रतिष्ठितेन तदानीं न समुदियाय जगति किमप्यनिष्टं प्रजावृन्देषु, दैवादुपजायमानञ्च प्रतिहतमभवत् तेनैव प्रथिततेजसा धर्म्मैकव्रतेन राज्ञा। तत्प्रमाण-मप्यस्माभिरुपलभ्यते उत्तरचरिताभिज्ञानशकुन्तलादौ—यथा शम्बूकेन शूद्रेण तपसि समारब्धे 'अब्रह्मण्यमब्रह्मण्य' मित्युद्घोषिते राजापचारमन्तरेण राज्ये पापसञ्चयमन्तरेण वा प्रजासु नाकाल-मृत्युश्चरतीति निर्द्धार्य्य रामस्तदपनुनोद। अपिच—"कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्। अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यकासु॥" इत्येवं प्रक्रमः शाकुन्तले। अनेनैव श्लोकेन पौरवस्य राज्यकाले प्रजासु किमप्यनिष्टं नोपजज्ञे, जाय-मानञ्च न राज्ञा सोढमित्येव सम्यक् शक्यते निर्द्धारयितुमिति। अपि च यस्यामवस्थायां यादृशो भावः प्रसर्पति जीवानां तत्र तत्र तादृशं तादृशं भावमुपनिबध्य प्रत्यक्षमिव नयन् कविः परिपूज्यते काव्यरसिकैः सुकविवादेन, तत्तदभ्युन्नेयं काव्यानु-शीलनशुद्धबुद्धिभिरनल्पेन स्वल्पतरेण वा परिश्रमेणैव, वयन्तु केवलं यत्किञ्चित् स्थूलमेव दृष्टान्तत्वेन संगृह्णीमः, तद्यथा शाकुन्तले रथवेगवर्णनावसरे "यदालोके सूक्ष्मं व्रजति सहसा तद्विपुलताम्" इत्यादि, राज्ञः सुतरामवसादवर्णनावसरे—'निषेवते श्रान्तमना विविक्तं' 'शीतं गुहास्थानमिव द्विपेन्द्र' इत्यादि। अपिच

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मातलिना भूमिं प्रति आकाशदेशात् परिचालिते रथे सन्तिष्ठमानो दुष्मन्तो भूभागस्यावस्थां वर्णयतीति प्रक्रमे "शैलानामवरोहतीव शिखरादुन्मज्जतां मेदिनी" इत्यादिश्लोकनिर्म्माणे महदेव काव्य-कौशलमभ्युपगम्यते। तेन तेन कविकल्पितेन निपुणपरिचिन्ता-प्रसूतकाव्येन सुतरामिवोद्दिष्टा भावाः प्रतिफलन्ति सविधे श्रोतॄणां, तेन यथैव चित्रेणाभीष्टवस्तूनि हृदये यथायथमुपलभन्ते उप-लभ्यमानाश्च ते ते पदार्थाः प्रतिपादयन्ति कल्पनासाहाय्येन प्रकृतबोधसहकारान् नानाविधानेव विमलरसप्रवाहान्। तथाच "आङ्गिको वाचिकश्चैवमाहार्य्यः सात्त्विकस्तथा" इत्युक्तचतुर्विधा-वस्थानुकारवशादेव रसादीनां यथार्थावस्था दर्शकानां हृदय-मन्दिरमध्यास्ते, एवञ्च तत्तदवस्थापर्य्यवेक्षणजन्यं रसान्तमन्तरो-करोति पूर्व्वतनं कमपि गाढमपि विकारं, कारं कारञ्च वञ्चना-मिव लौकिकवृत्तानामलौकिकेन केनापि प्रगाढपिपासापनोदकेन पीयूषप्रवाहेण अभ्युक्षितमन्तःकरणं कुत्रचित् आनन्दधामनि समुपस्थाय पुण्यानां फलविशेषमधिकरोति। अथ तदेव काव्यं मधुररागरागिणीभिः समभिनन्दितंताललयादिपरिशुद्धं सङ्गीत-पदेन व्यवह्रियते। अस्य च सङ्गीतस्य सामवेदानुशीलनादेव प्रारभ्य समुल्लासः, तथाच सामानि तालेन लयेन न गीयन्ते, वेदस्य च अनादिसिद्धतया सामसमकालीनतैव सङ्गीतस्येति सङ्गीतस्या-प्यनादिसिद्धत्वमवगाहतम्। अथवा प्रथमतो यदि साम्नां तालादिहीनतयावस्थानेऽपि परतया कदाचित् क्रमेण प्रकर्ष-समुत्पादेन ताललययोगस्तदा साम्नामिव न सङ्गीतविधेरनादि-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सिद्धत्वम्। तद्धि सङ्गीतं काव्यप्रयुक्तगुणगरिमाणं स्वत एव समादधत् काललयादिपरिशुद्धतयाधिकां तृप्तिमुपजनयदात्मनि जीवानां महोपकारकारिणः काव्यस्य हृदये धार्य्यतां सम्पादयति, तेन च महानुपकारः सम्पद्यते। सङ्गीतस्यायमेव विशेषः। तथाच काव्ये यावन्ति वस्तूनि वर्त्तन्ते, येन येन वस्तुना काव्यं सहृदय-हृदयमासादयितुं शक्नोति—समाद्रियन्ते च काव्यरसिकैः काव्यानि, तत्तत् सर्व्वमेव वर्त्तते सङ्गीतेषु, काव्यानामेव स्वराणा-मारोहावरोहक्रमेण कञ्चिद्विशेषमुपलभ्य सङ्गीतरूपेण परिणमनात्, किन्तु साधारणे काव्ये स्वराणामारोहस्य अवरोहस्य च मानसो-न्मादविधायकस्यासत्त्वमेव उभयोः प्रभेदसाधकं काव्यस्य सङ्गीतापेक्षया अपकर्षमुपगमयति, सङ्गीतस्य च काव्यापेक्षया सुमहान्तमुत्कर्षम्। तदावेदकञ्च शास्त्रमेव, यथा—"काव्येन हन्यते शास्त्रं काव्यं गीतेन हन्यते" अनुभूतं सर्व्वैरेव बालैस्तरुणैर्वृद्धैश्च सहृदयप्रामाण्येनैव मधुरस्वरानभिनन्दितकाव्यकलापेक्षया प्रकर्ष-योगित्वं हृदयरञ्जकत्वञ्च सुरसवाहिस्वरसहकारेण गीतस्य-सङ्गीतस्य, किन्तु चित्रं तत्तत्पदार्थानां स्वरूपं प्रत्यक्षत एव परि-दर्शयत् काव्यसङ्गीतापेक्षया प्रकृष्टतामादधाति हृदयसन्तापनिव-र्त्तकं भावानुबन्धसमुद्भासकम्, अभिलषितपदार्थस्य चाक्षुषप्रत्यक्ष-मुपजनयच्च चित्रं यथा प्रकृतरसोपयोगि स्यात् न तथैव कल्पना-साहाय्येन काव्यसङ्गीताद्युपस्थाप्यं वस्तु। साम्प्रतमपि भूयो भूयः सन्दृश्यतेऽस्माभिर्यत्—यदि कदाचित् केनचिद् घातकेन कस्य-चिदेकस्य नृशंसभावेन हननं केनचित् प्रबन्धपाठकेन वर्ण्यते,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तस्यैव यदि वृत्तान्तस्य प्रत्यक्षं स्यात् तदा मूर्च्छापि केषाञ्चित् अविरलाश्रुसम्पातोऽपि केषाञ्चित् विरुद्धशोकावेगानामपि भङ्ग इव हृदयद्वारस्य। स्वत एव सञ्जायते तेषां हृदयेषु मुहुर्मुहुः दुर्वृत्तजनचरित्रनिन्दाप्रस्तावः संस्तवश्च मृदुतमभावेन दक्षुप्रवृत्तेरपि मानसस्य। तादृशमेव चित्रे प्रकृतवृत्तं प्रत्यक्षायमाणं सुतरामुपजनयति प्रबन्धश्रवणापेक्षया हृदये पूर्व्वकथितवद् भावसमुदायम्। सङ्गीतस्य स्वराणामारोहावरोहादिरूपस्य काव्यापेक्षया वैशिष्ट्यस्य सत्त्वेऽपि चित्रस्य तदपेक्षया वैशिष्ट्यं, तेन यथायथभावानामक्षिसमीपे समुपस्थानात्, काव्येन सङ्गीतेन च कल्पनासाहाय्येन कष्टातिशयस्वीकारेणैव प्रकृतवृत्तस्य मनोमात्रगम्यतया सुस्पष्टमप्रतिभातस्वारूप्येण तथा रसानुकूल्यविरहादिति यदि काव्यं चित्रादिसम्बलितं रसजनने अनुसन्धीयते यथा नाटकाभिनयादौ, तदा काव्यस्य चित्रमात्रापेक्षया उत्कर्ष एव, किन्तु स समुत्कर्षश्चित्रसहकारेणैव सम्भवतीति चित्रस्य सिद्ध एव प्रकर्षः काव्यपदार्थतः। दृश्यकाव्यस्य प्रायेण चित्रसादृश्यमभिलक्षितं, श्रव्यन्तु सुस्पष्टमात्मप्रतिपादितपदार्थाना मनुज्ञासकतया बहुलमनुशीलनमन्तरेण प्रकृतभावानावेदकतया भाषापाण्डित्यादिप्रयोजनकतया च दृश्यकाव्यादपकृष्टं, दृश्यकाव्यस्यापि तत्तदर्थाधिगमहेतुभूतप्रज्ञाद्यपेक्षणात् साधारणै रशक्यसूक्ष्मार्थतया च चित्रादपकर्ष इति स्थितं साधारणकाव्यापेक्षयैव चित्रस्य वैशिष्ट्यम्, तेनैव साधारणकाव्यकलापेक्षया ततोऽप्युत्कृष्टस्य सङ्गीतस्यापेक्षया च चित्रस्य महानादरो रसिकजगति। चित्रं दृष्ट्वा तत्तत्पदार्थतत्त्व-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सम्भारणे निरक्षरा हालिका वा प्रवीणतमा विज्ञानदर्शनेतिहास-विदः कोविदा वा अनुद्भासितज्ञानशक्तयो बालाः सुचिरमावर्त्तित-सांसारिकभावप्रसरा वृद्धा वा सममेव समर्थयन्ते समधिगन्तुं प्रकृततत्त्वानि, सत्यवृत्तसाक्षात्कारेणेव परितृप्यन्ति कठोरदुःख-स्तम्भितान्तःकरणा अपि शान्ता अपि निरालम्बना अपि। शाक्ताः सततं शक्तिमूर्त्तिसाक्षात्कारकामनया शक्तिचित्रं निजगृहे समवस्थापयन्ति, शैवाः शिवमेव सकलदेवेषु परमोत्तमं मन्य-मानास्तन्मूर्त्तिसाक्षात्कारं परमपुरुषार्थसाधकं निर्द्धारयन्तः शिव-मूर्त्तिमात्मनो नेत्रपथे निवेशयन्ति। वैष्णवा राधायाः कृष्णस्य च परस्परं सम्बद्धं मूर्त्तियुगलं सांसारिकदुःखभोगविनिवर्त्तकमनु-भावयन्तः सुन्दरीं युगलमूर्त्तिं समभिनन्दन्ति, लभन्ते च तत्तन्-मूर्त्तिपर्य्यवेक्षणेन कमपि पारलौकिकं पुरुषार्थम्। असामान्य-गुणसम्वलितो हि भगवान् स्वरूपेण नैव दृश्यतां भजते पार्थिव-पुरुषाणां, तस्यैव भगवत आप्तवाक्योपदिष्टपथावलम्बनेन शिल्पिन-श्चित्रमारचयन्ति, तच्च चित्रं समीपे समुपतिष्ठमानं सर्व्वथा प्रकृतरूपस्य साक्षात्कारेणेव हृदये धार्य्यमाणं विनिवर्त्तयति कठोरसंसारकोलाहलसंस्रवम्, अभिजनयति च किमप्यलौकिक-मपूर्वं येन मोक्षविधिरुपक्रियते परम्परया। अर्थसाधकत्वञ्च दृष्टचरमेव बहुशः सुचित्रशिल्पदर्शनसन्तोषेण राजादिभिरुपहार-विधया चित्रमूल्यविधया वार्थानामुत्सर्जनात्, कामप्रदत्वञ्चार्थ-द्वारा, धर्म्महेतुत्वन्तु दर्शितमेवेति चित्रसमुत्कर्षचिन्तासंक्षेपः।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

३९। "गुणालङ्काररीतीनां काव्यप्रकर्षे उपयोगित्वम्।"

"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्" इति काव्यलक्षणम्। तथाच यथा देही नानाविधशरीरादिसौन्दर्य्येण जनानामन्तःकरणे प्रतिपादयति कामपि तृप्तिम् अपनोदयति च यत्किञ्चिज्जन्यमानसावसादविशेषं, शिक्षादिसंविधाने च सम्पादयति शिष्यविशेषाणामलौकिकीमुन्नति-परम्परां, तथैव रसात्मकवाक्यरूपं काव्यं जनयति स्वीयदेहसौन्दर्य्येण काव्यरसिकानाममन्दानन्दसन्दोहम्, अपनयति च कठोर-संसारदुःखानि, येन संसारदुःखविद्रावणेनात्मविशुद्धिसम्पादनेन चोपयुज्यते कुत्राप्यलौकिक आत्मभावे। बहुधा ह्युपकारकं काव्यं जगति, तद् यथा "काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे" इत्यादि। तथाच काव्यं साधुतया परिगण्यमानं काव्यरसिकेषु कर्त्तुः प्रकर्षमनुसन्धाय भूयसा परेष्वपि प्रतिपादयति, तेन च मृतानामपि कवीनां काव्यप्रचारेण जगति सजीवानामिव सम-वस्थानमुपलभ्यते, तथाच चिरमन्तर्हिताः कवयो महामहिमानः कालिदासश्रीकण्ठमाघश्रीहर्षभासधावकादयः कविमुख्याः तेषा-मनुपमरससुधानिषेकानुकूलमुपलभ्यते बहुलमेव काव्यजातमुप-लभ्यमानानि च काव्यानि तेषामसीमप्रकर्षमेव विज्ञापयन्त्यस्मान्। तत्प्रतिपादितरसविमुग्धान्तःकरणाश्च कुतोऽपि पार्थिवभावनां परिवर्जयन्तः सन्तोषामृततृप्ता ब्रह्मज्ञानजन्यमिवानन्दसन्दोहमुप-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लभामहे। अपि च विद्योत्साहिप्रकृष्टा धनिसम्प्रदायाः काव्यरसिकेभ्यो वा कविभ्यो वा रससम्पृक्तकाव्यमाकर्णयन्तः कविप्रकर्षयोग्यं पुरस्कारं विसृजन्ति, तेन च कवयोऽपि धनवन्तः सम्भवन्ति। श्रूयते कियदेव वा पुरावृत्तं विक्रमादित्यभोजप्रभृतीनाम्। ते हि पुरा काव्यप्रकर्षानुसारेण कविभ्यः पुरस्कारविशेषान् प्रयच्छन्तो विद्योन्नतौ अनुकूलतां कुर्व्वन्ति स्म तेन चानुकूल्येन विद्योन्नतिमापादयितुमुत्साहवन्तः पूर्व्वतोऽपि काव्येषु महान्तमुत्कर्षं सम्भावयितुं सामर्थ्यमुपगच्छन्ति स्म। अपि च केन सह कीदृशं व्यवहर्त्तव्यं, गुरौ विनीतेन वर्त्तितव्यं, कनिष्ठे वात्सल्येन, प्रणयिनि निर्म्मलप्रणयेनेत्यादि व्यवहारो विज्ञायते काव्यानुशीलनेन, असद्विषयपरीहारः कर्त्तव्यः सद्विषयसन्धारणञ्च, तदपि विज्ञातव्यं सुप्रकृष्टकाव्यवृत्त्या, तद् यथा रामादिवत् प्रवर्त्तितव्यं न रावणादिवदित्यादिनियमस्य रामादिसदृशवर्त्तनेन सुखादिसम्पर्कः, रावणादिसदृशव्यवहारेण च दुःखादिसमागम इति सुस्पष्टं प्रदर्श्य तद्विषये दृढता प्रत्याय्यते। तथाच काव्येषु प्रायेणैव दुश्चरितानां परिणामे दुर्गतत्वं सुचरितानाञ्च परिणामे सुखभागित्वं तद्दर्शनेनैव काव्यानुशीलनकर्त्तारः सत्सु विधिषु प्रवर्त्तन्ते, विरमन्ति चासत्काव्यानुशीलनात् दुःखसम्पादकतया विज्ञापितेभ्यश्च बहुविधासत्कर्म्मभ्यः, तेनैव च न जायन्ते काव्यरसिकानां तेषां शिवेतराणि, पूर्व्वाहितानि च देवतादिचरितसमालोचनेन विनिवर्त्तन्ते। श्रोतारश्च नानारसाधिगमेन ब्रह्मानन्दसहोदरसुखपरम्परामलौकिकीमधिगच्छन्तो जगति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सजीवा अपि मुक्ततामनुभवन्ति सहसा। बहुविधनीत्युपदेशेन च विपदः परित्राणकारणत्वं सर्व्वत्र सम्पत्सम्पादकत्वञ्चेति सर्व्वमुक्तमुपपन्नम्। तत्र च काव्ये गुणाः प्रसादो माधुर्य्यमोजश्चेति। ते हि गुणाः पुरुषान् शौर्य्यादयइव काव्यं प्रकर्ष विधौ अनुकूलयन्ति, तथाच यथा कश्चित् पुरुषो दुर्बलो बलसाध्ये कर्म्मण्यसमर्थो बहुभिरेवोपहस्यते, स्वार्थसिद्धिविषये निष्फलश्च निर्वेदादिना स्वजनान् परितापयति, कदाचिदक्षतकृत्यतया च न संगृह्यते कैश्चिदपि स्वार्थसाधनविधौ, तथैव काव्यं यदि गुणविहीनं स्यात् तदा न तृप्त्यादिकमापादयेत्, परेषां वा तृप्तिसम्पादनाय नोपगृहीतमिदं कर्त्तुर्निर्वेदमेव जनयेत्, ततः काव्यजन्म तस्य निरर्थकमेव स्यात्। अलङ्काराश्च नराणां कटककुण्डलादय इव शरीरशोभासंवर्द्धकाः काव्यस्य सुभगतां सम्पादयन्ति। तथाच सुखं भाति इति निरलङ्कारवाक्यस्य यथा कविजनचित्तहारकत्वं तदपेक्षया विचित्रताशालित्वेन चन्द्र इव मुखं भातीति वाक्यमाह्लादकत्वरूपातिरिक्तधर्म्मस्य मुखे बोधनेन जनयति महान्तमेवार्थप्रकर्षं, तादृशार्थप्रतिपादकतया च तथाविधकाव्यस्य वाक्यप्रकर्षोऽपि, स एव च वाक्यात्मककाव्यप्रकर्ष इति भावः। अलङ्काराणामलङ्कारशब्देनाभिधानस्य बीजमप्येतदेव। अलङ्क्रियते शोभायुक्तं क्रियते काव्यं यैः ते, तथाच यथा—केषाञ्चिद्रसवतामलङ्कारव्यतिरेकेण शरीरं शोभाशून्यमिव केनचिदुत्कृष्टवस्तुना विरहितमिव नातिमात्रामुपपादयति तृप्तिधारां रसिकहृदयेषु, अलङ्कारयुक्तञ्च सत् तेनैवोत्कृष्टेन वस्तुना समासक्तमिव काव्य-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मतिशोभाकरमात्मनि विसृजति महान्तमानन्दं, न तु अलङ्कार-विरहे काव्यस्य काव्यत्वमेव व्याहन्यते, परं प्रकर्षहीनत्वमेव। अलङ्कारहीनवाक्यापेक्षया सालङ्कारस्य वाक्यस्य विचित्रातिरिक्तार्थ-प्रतिपादकतया काव्यप्रकर्षोपयोगित्वम् अलङ्कारस्यैव, सालङ्कारनिरलङ्कारवाक्ययोरलङ्कारमपहाय वैलक्षण्यसाधकाभावात्। एकविधस्यैव वाक्यस्य अलङ्कारसाधकांशसमागमेनोत्कर्षदर्शनात्। रीतिश्चाङ्गसंस्थानवत् काव्यात्मभूतानां रसानामुपकारिका। तथाच यथा शरीरिणां शरीरस्य घटनानां विशृङ्खलत्वे शरीरिण एवापकर्षः सुशृङ्खलत्वे च शरीरिण उत्कर्ष एव। प्राक् सुघटितशरीरा यदि कदाचित् कारणान्तरेण भग्नशरीरा रोगादिना विस्रस्तदेहा वा स्युस्तदा दृष्टः प्रात्यक्षिकतयैव तेषामपकर्षः, तथैव पदानां घटनाया विशृङ्खलत्वे काव्यस्य महानपकर्षो निश्चीयते काविदकैः। पदानां सङ्घटनायाः सुशृङ्खलत्वे तु तत्तदर्थ-प्रतिपादकमेव काव्यं प्रकृष्टमिति समाद्रियते, एतदेवोद्दिश्य व्यवहरन्त्यालङ्कारिकाः "उत्कर्षहेतवः प्रोक्ता गुणालङ्काररीतयः।" एतैरेव गुणजातैः काव्यप्रकर्षात् तादृशकाव्यनिर्म्मातार एव प्रशस्यन्ते, तादृशमेव च काव्यं "काव्यं यशसे" इत्यादि शास्त्र-व्यवहारस्य विषयः, तद्विरुद्धञ्च काव्यं फलमपि तद्विरुद्धमेवोपपादयतीति परिहाय तादृशमसत्काव्यं सत्काव्येषु प्रवृत्तिः सतामसताञ्च सदसद्विषयनिर्द्धारणाक्षमाणामसत्स्वपीति, किन्तु गुणालङ्काररीतीनां सदसतां सर्वेषामेव काव्यानामुपयोगावहत्व-मिति नात्र काव्यशब्दस्य विशेषकाव्यपरत्वम्, अपि तु

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

साधारणकाव्यमात्रपरत्वमेव ; तत्र च गुणालङ्काररीतीनां यथा प्रकर्षसाधकता तथा पर्य्यालोचिता प्रागेवेति संक्षेपः ।

४० । "दर्शनस्य पुरुषार्थानुकूलत्वम् ।"

दृश्यते साक्षात् क्रियते परमात्मादिसंज्ञारञ्जितः परमपुरुषो येन तद्दर्शनम् । सांख्यादिमते तु दृश्यते भेदेनोपलभ्यते सत्त्वं पुरुषश्च येन तद्दर्शनम् । तथा हि जागतिकानां पार्थिवादिवस्तूनां स्वरूपमाविद्य तत्तद्वस्तुभिन्नत्वेन च परमात्मादिपदार्थविशेषविनिवेदनेन दर्शनं परमात्मादिज्ञाने अनुकूलतामापद्यते । परिस्फुरति च तत एव ज्ञानविशेषेण मोक्षाधिगमो जीवनिवहानाम् । सांख्यादौ च पुरुषस्य नित्यशुद्धबुद्धमुक्तत्वादिकं स्वं भावं प्रकृतेश्च तद्विरुद्धं स्वरूपं प्रतिपद्य तत्तद्भेदकधर्म्मेण भेदमुपलभ्य मोक्षलाभः, स एव च मोक्षः पुरुषार्थो दर्शनसम्मतः । यथा हि साधारणेन रोगादिना दुर्गतः पार्थिवौषधादिव्यवहारेण तमपनेतुकामः कश्चित् कष्टविशेषमारचयति, निवर्त्तते च तेनैव कष्टकृतेन भेषजेन कठोरोऽपि रोगः, तथैव संसारज्वालाप्रज्वलितमानसो मुहुर्मुहुः पार्थिवसारबोधविदूनः सुमहद्वैराग्यमापन्नः कालेन दुःखविद्रावके शास्त्रविधौ प्रवर्त्तते, प्रवृत्ताश्च तत्र केचित् प्रतिपक्षपक्षनिराकरणपाटवेनैव चरितार्थम्मन्या धन्यतामात्मनां प्रख्यापयन्तः सन्त इवाभिष्टूयन्ते जगति महाजनैरपि सारबोधसम्बलितैः । केचिच्च वस्तुत एव जगति कामपि घोरामसारतामभिगच्छन्तः शान्तरससम्प्लुतान्तःकरणा बाह्यकरणकृत्यविच्युताश्चुताः संसार-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सङ्गात् पुरुषार्थस्य प्रधानसाधनं दर्शनशास्त्रमेवाप्तवाक्यतः सम्भवधार्य्य तत्र प्रवर्त्तन्ते इतरविषयेभ्यः सत्त्वपुरुषयोः परमात्मनो ब्रह्माभिधानस्य भेदमुपलभमानाः सुतरामात्मनिर्वृतिमुपगच्छन्ति। परमपुरुषार्थश्च मतभेदेन परमात्मसाक्षात्कारो ब्रह्मसाक्षात्कारो वा सत्त्वपुरुषान्यताप्रत्ययात् पुरुषस्य चैतन्यात्मकस्य स्वरूपावस्थानं त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिप्रयोज्यम् इत्यादिकम्। तथाच यत्किञ्चिद्दर्शनानुशीलनेन एव यथाक्रमानुशीलितप्राणायामादिप्रकारपरिज्ञानादात्मशुद्धिसमुदयः ततो मोक्ष इत्येवं दर्शनस्य परम्परया मोक्षानुकूलत्वमिति। न्यायशास्त्रस्य अनुमानादिबहुविषयप्रतिपादकतया अनुमानादिना च परमात्मविज्ञानोपयोगित्वमनुमानञ्च क्षितिः सकर्त्तृका कार्य्यत्वादित्यादिना क्षितिधर्म्मिकसकर्त्तृकत्वसिद्ध्यात्मकं, तेन च अनुमानेन कस्यचित् कर्त्तुः परमात्मरूपस्य सिद्धिरिति अन्यस्य कस्यापि पार्थिवकर्त्तुः शैलादिकुञ्जतो जातान् वृक्षादीन् प्रति कर्त्तृत्वाभावात् कार्य्यद्रव्याणां तेषां कर्त्तृव्यतिरेकेण च जननासम्भवात् इति। सांख्यदर्शनादौ तु प्रकृत्यादिस्वरूपप्रतिपादनेन पुरुषस्वरूपप्रतिपादनेन च क्रमशो भेदेन द्रव्योपलम्भात् सत्त्वं पुरुषञ्च भेदेनोपलभन्ते, तेन च उपलब्धभेदेन आध्यात्मिकाधिभौतिकाधिदैविकदुःखानामत्यन्तनिवृत्तिः दुःखप्रागभावासमानाधिकरणदुःखध्वंसरूपा। तथाच साधारणकारणतः साधारणदुःखानां निवृत्तेः परं पुनरपि दुःखसमुत्पादो दृष्टः, तत एव न तादृशदुःखध्वंसः दुःखप्रागभावासमानाधिकरणः किन्तु दुःखप्रागभावसमानाधिकरण एव, अत एव न साधारणदुःखनिवृत्तेरत्यन्त-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दुःखनिवृत्तित्वविरहात् मोक्षपदवाच्यत्वं, शास्त्रानुशीलनस्य निष्प्रयोजनकत्वञ्च। पातञ्जलदर्शने सांख्यमतेन विशेषतो नास्ति प्रभेदः, सृष्टिवादे सांख्यमतेन सर्व्वथा सम्यक् परमेश्वरस्य प्रकृतिपुरुषातिरिक्तस्य नित्यपदार्थान्तरस्य स्वीकार एव तन्मते विशेषः। तथाच सांख्याः—"ईश्वरासिद्धेः प्रमाणाभावादि"ति पातञ्जलसूत्रे च "क्लेशकर्म्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः" इति तस्यैव इच्छया प्रकृतिपुरुषयोः संयोगः, तेनैव च जगत्प्रवृत्तिरिति। तत्र च पातञ्जले योगविधीनां सुतरां निर्द्देशः। सांख्यमतानुयायिनोऽपि पातञ्जलमतानुसारेण योगविधिष्वप्रवृत्ता न शक्नुवन्ति परमपुरुषार्थं लब्धुं, नापि पातञ्जलमतानुयायिनः शक्नुवन्ति सृष्टितत्त्वं सविशेषमधिगन्तुमिति परस्परमपेक्ष्यापेक्षिभावः। तथाच पातञ्जले प्रथमत एव "योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" इत्यादि योगविधिरारब्धः, तेन चारब्धेन योगोपदेशेन योगप्रकारमधिगच्छन्तः अन्तःकरणशुद्धिमापादयन्तः शुद्धबुद्धमुक्तस्वभावतामात्मनः समुद्भासयन्ति, न तु केवलं सृष्टितत्त्वनित्यानित्यत्वतत्त्वविनिर्वेदककपिलमतानुशीलनेनेति। मीमांसकादयः अपि परमापूर्व्वसम्पादकयागादिविधिमारचयन्तः जीवाः क्रमेण ब्रह्मज्ञानोपयोगितामात्मसु निर्व्वाहयन्ति। मीमांसादर्शनं हि पूर्व्वमीमांसावादेन वेदान्तदर्शनञ्च ब्रह्ममात्रप्रमाणभूतम् उत्तरमीमांसावादेन लोके व्यवह्रियते; तत्र कारणमिदमेव यागादिकर्म्मणा अपूर्वं जातं सत् वेदान्तदर्शनोक्तं ब्रह्मज्ञानमनुकूलयति, अत एव परम्परया मीमांसादीनामपि दृष्टमनुकूलत्वं परमपुरुषार्थं प्रति। वैशेषिक-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मतसिद्धपदार्थस्वीकारिणश्च नैयायिका इति वर्त्तते द्वे द्वे दर्शने अधिकृत्य परमपुरुषार्थसाधनेषु उपयोगित्वं सामञ्जस्यञ्च मत-वादानां। सन्ति च बौद्धादीन्यपि बहुदर्शनानि तेषामपि आदिसोपा-नेषु मतवैलक्षण्येऽपि परमपुरुषार्थस्य सर्व्वदर्शनानामेव उद्देश्यत्वं सिद्धम्। नास्ति तथाविधं किमपि आस्तिकं दर्शनं यस्य मोक्षो न पुरुषार्थः, अत एव सर्वेषामेव प्रसिद्धानाञ्च दर्शनानां दृष्टं मोक्षोपयोगित्वं नामेति पदार्थचिन्तासंक्षेपः।

४१। "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति।"

भुवनेषु शरीरिणां किमपि कर्म्मजन्यमदृष्टं समुपतिष्ठते आत्मसु, तदेवादृष्टं द्वेधा विभक्तं शास्त्रकारैर्धर्म्माधर्म्मभेदेन परिणामे सुखदुःखरूपं फलद्वयं निर्वर्त्तयति। तथाच शास्त्रं "धर्म्माधर्म्मावदृष्टं स्यात् धर्म्मः स्वर्गादिसाधनम्। अधर्म्मो नरकायैव" इति। तौ च धर्म्माधर्म्मौ कर्म्मणा एव जायेते, तथाच सत्कर्म्मणा धर्म्मः असत्कर्म्मणा च अधर्म्मः समुत्पद्यते आत्मनि, अत एव नैयायिकाः धर्म्माधर्म्मयोरात्मगुणत्वं व्याचक्षते। अपरेऽपि दार्शनिकाः अपूर्वा-द्याख्यया तावेव प्रख्यापयन्तः आत्मादिवृत्तितामनयोः स्वीकुर्वन्ति, तेनैव च आत्मवृत्तिगुणविशेषेण प्राक्तनकर्म्मकृतेन स्वर्गनरकरूपयोः फलयोरन्यतरत् समुपलभन्ते जीवाः, सत्कर्म्माणि धर्म्मोपपादकानि बहुविधानि देवपूजादीनि, तथाच प्रथमतस्तावदिदं मुख्यं यत् स्वीयसम्प्रदायशुद्धस्य आचारस्य परिरक्षणं नाम साकल्येन। निपुणा हि अस्माकं धर्म्मादिप्रस्तावप्रणेतारः पण्डितमुख्याः समुपलक्ष्य सम्प्रदायशुद्धव्यवहारप्रकारान् यथा यथा हितकरतामेव व्रजन्ति,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तथैव तांस्तानुपनिबध्नन्तः जागतिकान् साम्प्रदायिकान् परिचालयन्ति, येन येन भोज्येन अस्माकं शरीरधातवः सुशृङ्खलतामुपगताः शारीरिकं बलादिकं प्रति उपयुज्यन्ते किञ्चिद्विकारमनाप्नुवन्तो देहाः यथायथं धर्म्मविधानं प्रति अनुकूलाः सर्वेषामेव-उपकारकविधया इष्टसाधनताज्ञानविषयीभूताः प्रवृत्तिविषया भवन्ति। शरीरस्य अनिष्टसम्पाते तत्प्रयोज्यस्य परमार्थसाधनानुकूलधर्म्मस्य एव व्याघातं विविचयन्तः तत्परिहाराय कति नाम नियमान् प्रवर्त्तयन्ति, स्वास्थ्यतत्त्वादिषु नितरामभिज्ञाः सुयोग्ये पदे सुयोग्यमेव व्यवहारजातं निबध्नन्ति, तेनैव च सुव्यवहृतेन नियमजातेन धर्म्मस्य प्रधानसाधनीभूतं शरीरं परिपाल्य परत्र काञ्चिद-सीमां सुखसम्पदमभिविन्दन्ते सुनिश्चितम्। तथाच श्रूयते "शरीरमाद्यं खलु धर्म्मसाधनम्"। तथा हि तपस्यायां सुकठोरायां महदेव शारीरं कष्टं भवति, पञ्चतपाद्युपभोगेन सर्व्वथा अव्यवस्थितशरीरधातुकस्य कदाचित् सुमहान् रोगोऽपि वा समुपगतः प्रतिहन्यात् कष्टसाध्यं तपःसञ्चयं, तेन च तज्जन्यपुण्याद्यनुपगमेन भावि सुखंम फलं सुखभोगो मुक्तिरूपपरमपुरुषार्थो वा विघटितः पुरुषचेष्टावैफल्यं सञ्जनयेदिति। प्राणायामादिबहुलकर्म्मवर्गः सुस्थशरीरस्य एव साध्यः न तु असुस्थशरीरस्य, तथाच दृष्टं बहुशः केषाञ्चित् नवीनतपसामाचारव्यत्ययेन समाश्रितपुण्यमार्गात् पतनम्, असदाचारतया क्षीणतेजस्कस्य राजयक्ष्मादिकठोररोगाद्युपगमेन जीवनादपि विच्युवो नाम। अत एव तत्तद्विचारेण पूर्व्वतनमुनीनां जगन्नियामकतया धर्म्मविधेरविचलितभावपरि-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रक्षणैकव्रततया स्वास्थ्यादिकं सुबहु विचार्य्य शरीरोपयोगिव्यवहारनियमं प्रति तथानुरागः, समोहितञ्च तत्तथैव इति। तस्य च आचारादिक्रियाकलापेन जातस्य धर्म्मस्य असत्क्रियाप्रचयेन च समुत्पन्नस्य अधर्म्मस्य अस्ति कश्चित् कालनिर्द्देशः, यथा हि कर्म्मभृतिविनिमयेन कर्म्मचारिणः केऽपि कञ्चन निर्द्दिष्टमेव कालमास्थाय कर्म्म कुर्वन्ति नाधिकमल्पं वा कालं कर्म्मव्यापारेण वर्त्तन्ते तन्मात्रञ्च कालं प्रभुजनस्य अधीनतामाश्रित्य स्वेच्छया न किमपि कर्म्म सम्पादयितुमीशते, सन्तिष्ठन्ते, कर्म्मकालावसानमपेक्षमाणाः, तथैव धर्म्माधर्म्मफलभोगिनः केऽपि यावत्कालं धर्म्मस्य अधर्म्मस्य वा उपभोगो योग्यः तावन्तमेव कालं तत्फलमुपभुज्य पर्य्यवसाने पुनः कर्म्मानुबन्धेन यथापूर्व्वमवतिष्ठन्ते। तथाहि कति नाम इन्द्रपदमध्यासीना अदृश्यन्त, ये नानाविलासपरिभोगेन तृणमयमिव जगन्मन्यन्ते दुःखलेशमपि न स्पृशन्ति, अविरतमेव देवैरभ्यर्थ्यमानचरणारविन्दाः वृन्दारकाभिनन्दनरूपम् आत्मनो महान्तं प्रकर्षमनुभवन्तः सार्थकं जीवनमुत्प्रेक्षन्ते संवीक्षन्ते च सर्व्वमेव जगदिदं सुखपीयूषप्रवाहपरिषिक्तम् अभिव्यक्तसत्त्वसारमिव भूयसा पुलोमजावदनकमलमधुपानमनुपममेव कर्म्म समुपगच्छन्तः जीवनभारं भारतया स्मर्त्तुमपि नावकाशमासीदन्ति। विलुप्यते अवसादस्य लेशोऽपि, विद्याधरजनस्तुतिगीतैरभिनन्दिताः जहति प्रभातनिद्रां, सङ्गीतसहचरितैः किन्नरीजनचामरव्यजनकर्म्मभिः सुमधुरतौर्य्यत्रिकचातुर्य्यसाहचर्य्येण सर्व्वदेवानन्दसन्दोहसमभिनन्दितचित्ताः परितः प्रकाशन्ते साधा-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रणजनकाम्यगुणा एव, त एव पुनः काले तम् अनन्तसुखसन्तानम् अञ्जसा परिवर्ज्य निराकाङ्क्षीकृता इव अनायासलब्धेषु सुखादि-सम्पर्केषु सव्यथीकृताः कठोरदशाविपर्य्यासवार्त्तया तस्मादेव स्वर्गात् कर्म्मक्षयेण परिभ्रंश्यन्ते। कदाचिदसुरा अपि इन्द्रपदवी-मुपगताः परिभ्रष्टाः, कदाचिच्च इतरेऽपि कर्म्मविशेषैर्लोकविशेष-मुपाश्रिताः कालेन ततस्ततः परिच्युताः। सुखं दुःखञ्च क्रमेण कर्म्मबन्धानुसारेण सञ्जायेते, नास्ति जगति केवलं सुखं दुःखं वा, यतः सांसारिकेषु केवलं सुकर्म्म दुष्कर्म्म वा न प्रायो दृश्यते कुत्रचित् अंशे सुकर्म्म कुत्रचित् अंशे दुष्कर्म्म इति, तन्नियामकञ्च शासनं यथा "चक्रवत् परिवर्त्तन्ते दुःखानि च सुखानि च" इति। अपिच "एष क्रीड़ति कूपयन्त्रघटिकान्यायप्रसक्तो विधिः" इति। सावधिकानां पुण्यानां क्षये तत्फलीभूतस्वर्गादिपरमोत्तमस्थानेभ्यो विच्यवः, पापानां क्षये च तत्फलीभूतनरकादिनिकृष्टप्रदेशतः प्रस्थानम्, अपिच सुकृतदुष्कृतानुसारेण यादृशे देशे आत्मनो यावान् भोगो नियतः तत्र तावत्कालमेव भोगमास्थाय आत्मा ततो विच्छिद्यते, विच्छिद्य च तत एव देहादात्मा शरीरान्तरसमा-लम्बनेन पुनः जन्मान्तरसञ्चितानां कर्म्मणां फलीभूतानि पापानि पुण्यादीनि च उपभुङ्क्ते, पुनरपि तदवधिपर्य्यवसाने शरीरान्तर-मायातीत्येवं हि नाम कर्म्मकृतपापपुण्यानुबन्धेन आत्मनः सुख-दुःखादिभोगनियमः। तत्प्रमाणञ्च गीतायां यथा "वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि। तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही" इति।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एवमेवार्थसमूहं हृदये कृत्वा प्राज्ञाः प्राहुः "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ती"ति कथासंक्षेपः ।

पुरा कवीनां गणनाप्रसङ्गे अनामिकाधिष्ठितकालिदासाः ।
अद्यापि तत्पूर्व्वकवेरभावात् अनामिका सार्थवती बभूव ॥

इह हि काव्यसंसारे कति नाम कवयः प्रादुरभवन् । प्रादुर्भूय च बहुलान्येव काव्यानि निर्म्माय काव्यरसिकानामसोमरसानुकूलतामुपपादयामासुः । यथा कालिदासकल्पितमभिज्ञानशकुन्तलं नाम अभिनेयं वस्तु सर्व्वथा काव्यं कविमुखख्यानामक्षीणमस्य कवेः कल्पनापटवमुपपादयति काव्यरसाभिज्ञेषु ; तदिदानीमपि सर्व्वकाव्यानामुच्चतमं पदमधिकृत्य वाह्यसौन्दर्य्यैर्वा आन्तरप्रकर्षैर्वाहरति मानसं सुमनसां शिक्षाञ्च वृत्तानुसङ्गेन समुपहरति वृत्तशिक्षार्थिनां केषाञ्चित् । तत्र सरला भाषावली सुविमलार्था च कवितासन्ततिः, मनोरमञ्च कल्पनाकुशलस्य कवे रूपकयोग्यचरित्रसमुपस्थापनं येन येन आस्था जायते काव्येषु सुतरामभिज्ञजनानां तत्तदेव वस्तु अहीनमेवात्र प्रतिभाति बहुलतया, अस्य हि महाकविपदवीमलङ्कुर्व्वतः सर्व्वकविप्रधानभूततया केषुचित् प्रख्यातस्य भाषावली भावावली च सुतरामुपयोगिनी समाजशिक्षासु, तथाच विज्ञानां शिक्षापेक्षया प्रयोजनीया ह्यालिकानां साधारणानामेव जगति शिक्षा, यतो विज्ञाः स्वेनापि गभीरशास्त्रार्थतत्त्वमालोचयन्तोऽपि शक्नुवन्ति विज्ञातव्यविषयसमूहमुद्धर्त्तुम् । न तु ह्यालिकाः स्वेन शास्त्रार्थतत्त्वं गभीरमालोचयितुम्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अपारयन्तो मूढ़ाः। अत एव ते ते सरलभावभाषादयः समुपयुज्यन्ते कवीनां कर्त्तव्यार्थेषु। ते च यथा कालिदासस्य काव्येषु समुपलभ्यन्ते न तथा प्रायेणापरत्र, अतः प्रकृष्टः कविः कालिदास इति नास्ति विसंवादः काव्यरसानुरक्तानाम्। दृश्यन्ते बहून्येव काव्यानि काव्यकलाकुशलस्य महाकवेः कालिदासस्य यथा रघुवंशं कुमारसम्भवम् अभिज्ञानशकुन्तलं मालविकाग्निमित्रम् इत्यादि। रघुवंशे रघुवंशीयानां राजवृन्दानां चरित्रवर्णनं तत्र सर्व्वमेव वस्तु सुरसं गुणबहुलं सुरीतिगुम्फितञ्च, अपि च प्रथमत एव कविरात्माहङ्कारपरिहारं कर्त्तुं प्रवृत्तः स्वस्य गुणगरिमाणमपि प्रचारयामास। तथा हि आपातदर्शिनस्तत्र कालिदासस्य अहङ्कारपरिहारमेव कल्पयन्तः परितुष्यन्ति गूढ़वेदिनश्च गूढ़भाविन एव समुज्जृम्भितं कवेरहङ्कारं जानन्तः कविजनसुलभं चातुर्य्यमनुभवन्ति। तद्यथा निपुणनिबन्धः तस्य "हेम्नः संलक्ष्यते ह्यग्नौ विशुद्धिः श्यामिकापि वा।" अनेन कविकल्पितस्य प्रकृतकाव्यस्य परमः समुत्कर्षः प्रतिपाद्यते विज्ञानामेव उपरि गुणागुणविचारभारार्पणेन साधारणजनैरेतद्गुणागुणविचारसामर्थ्यप्रतिषेधात्। साधारणं हि वस्तु साधारणा एवाधिगम्य गुणागुणविचारेण विशेषतः परिच्छेत्तुमर्हन्ति न त्वसाधारणस्यैव समुत्कृष्टवस्तुनः अत एव विज्ञातं द्वैधेव वर्त्तनं कालिदासस्य विनीततया साहङ्कारतया चेति। तत्र कति नाम राज्ञां चरितानि,यच्चरितसमालोचनेन दिलीपरघुप्रभृतिकानां चरित्रमादर्शीकृत्य निजचरित्रं निर्म्मातुं प्रवृत्तिरुपजायते मानवानां काव्यानुशीलनशुद्धचेतसां; बहुलानाञ्च देशविशे-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

णाणां वृत्तानि सन्निवेश्य देशविषयेषु अभिज्ञता समुत्पादितापि, स च वृत्तभागो यथा कालिदासेन सरलभावेन अलङ्कारमाधुर्य्य-समन्वितेन च प्रकारेण निबवन्धे, न तथा प्रायेण कवयः प्रतिपादयन्ति। कालिदासस्य काव्येषु अभिज्ञानशकुन्तलमेव सर्व्वथा प्रकर्षमावहति रसानुगुणरचनापाटवेन सरलभावनिबन्धेन सुन्दरतमालङ्कारसन्निवेशनेन च।

४२। सांख्यशास्त्रस्योपयोगमवलम्ब्य—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिरिति सांख्यशास्त्रकृताशयः, सा च प्रकृतिः सृज्यमानप्राणिनिचयकर्म्मवशात् परिणमन्ती सती महदादिक्रमेण उच्चावचभेदभिन्नं कृत्स्नं जगदिदं ससर्ज्ज। तत्र दुःखस्वभावरजःपरिणतिरूपतया जगत्यस्मिन् सर्व्वत्र सममेव दुःखोपक्षेप उपलभ्यते, न तावच्चेतयमानं किमपि वस्तु दुःखं नास्तीति प्रत्येति। प्रतिप्राणिनियतञ्चैतद् दुखं प्रतिकूलवेदनीयतया सर्वैरेव विवेकिभिः सर्व्वथा परिहातुमिष्यते।

न तावदुपायमजानद्भिरिष्यमाणमपि तद्धानं वाञ्छामात्रेण मनोरथमात्रेण वा सम्पद्यते। अतस्तत्परिहारोपाय-चिख्यापयिषया परमकारुणिको भगवान् कपिलमूर्त्तिर्नारायणोऽशेषश्रुतिन्यायोपबृंहितं सांख्यशास्त्रमिदं प्राणैषीत्।

इदञ्च सांख्यशास्त्रं चिकित्साशास्त्रमिव चतुर्भिर्व्यूहैः समुपचितं, चिकित्साशास्त्रे यथा रोगः, रोगनिदानं, रोगनिराकरणं, तदुपायनिर्द्धारणञ्चेति चत्वारो विषयाः समुपलभ्यन्ते, तद्वदत्रापि दुःखं,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दुःखकारणं, दुःखहानिः, तदुपायविज्ञानञ्चेति प्रधानतश्चत्वारो विषयाः प्रतिपादिताः ।

तत्र विविधदुःखज्वालामालया अहरहर्दंदह्यमानो जीवनिवहो नितरां दुःखक्षयं समीहते। दुःखञ्चाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकभेदात् त्रिविधम्। तत्र वातपित्तश्लेष्मणां वैषम्यवशाद्देहमाश्रित्य समुपजायमानं रोगादिदुःखं, कामादिजनितं मानसं दुःखमपि आध्यात्मिकम्। पवनदहनवरुणनिवहान् देवान् समाश्रित्य यदुपजायते दुःखं तदाधिदैविकं, सिंहव्याघ्रादीनि भूतानि प्राणिनः समधिकृत्य यदुत्पद्यते दुःखं तदाधिभौतिकम्। एतत्त्रिविधमपि दुःखं प्रतिकूलवेदनीयतया हेयमेव विवेकिनाम्।

तत्र लोकसिद्धैर्भैषजाद्युपायैः कमनीयभोग्यसम्प्रयोगैश्च सत्यपि आध्यात्मिकदुःखप्रतिकारसम्भवे मणिमन्त्राद्युपायप्रयोगैश्च सत्यपि आधिदैविकदुःखक्षेपसम्भवे,नीतिशास्त्रनैपुण्यादिभिः शिष्टोपदिष्टप्रकारैरपि सत्यपि च आधिभौतिकदुःखनिवारणसम्भवे न तावतैव बुद्धिमद्भिः सन्तोष्टव्यं यतस्तैस्तैरुपायैरापाततः सम्भवन्नपि दुःखप्रतिकारो न कदाचिदैकान्तात्यन्तिकत्वमवगच्छति, तथाविधोपायैर्विनिवारितानामपि तेषां दुःखानां पुनःपुनरभ्युदयदर्शनात्। न च क्षणिकी दुःखनिवृत्तिर्मन्दमतिभिरभ्यर्थनीयापि प्राज्ञैः परमपुरुषार्थतया अभ्युपगम्यते।

लौकिकवद्वैदिकैरपि यज्ञादिभिरनतिक्लेशकरैरुपायैः प्रागुक्तदुःखत्रयस्य आत्यन्तिकी निवृत्तिर्न सम्भवेतीति कृतकत्वेन क्षयित्वात् तत्फलानाम्। यथा कृष्यादिकर्मणा निष्पादितं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शस्यादि भोगेन क्षीयते, एवमेव यज्ञादिकर्म्मसम्पादितानां स्वर्गादिफलानामपि भोगवशात् कालेन क्षयित्वमनुमीयते, क्षयित्वाच्चानित्यत्वं, यत् कृतकं तदनित्यमिति हि सुधियः स्मरन्ति, अस्मिन् विषये श्रुतयश्च बहुशः प्रमाणं सन्ति ।

अनित्यत्वाच्च सातिशयसुखनिकेतनं स्वर्गादयोऽपि क्षीणज्योतिषो भोगभ्रष्टान् नितरां दुःखयन्तीति न दुर्व्वचम । तथाच दुःखक्षयं चिकीर्षुभिर्लौकिकोपायवत् अलौकिकयज्ञादिष्वपि न सर्व्वतः पारमार्थिकत्वदृशा वर्त्तितव्यम् ।

ततः कः स तादृश उपायः यो दुःखत्रयमैकान्तमत्यन्तञ्च समुच्छिनत्तीति जिज्ञासायां प्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानमेव तत्र प्रकृष्टमुपायं मन्वानो भगवान् कपिलः तत्प्रकारप्रदर्शनार्थं सुगम्भीरं सांख्यशास्त्रमिदं समुपदिदेश ।

तत्र यद्यपि प्रकृतेः पुरुषो भिन्नः पुरुषाच्च प्रकृतिर्भिन्ना इत्यन्योन्यतो ज्ञानमेव विवेकज्ञानं भवितुमर्हति, तथापि श्रुत्यनुगमात् प्रकृतेः पुरुषो भिन्न इत्यात्मविशेष्यकमेव विवेकज्ञानं मोक्षकारणं मन्तव्यम् । श्रुतिश्च "आत्मा वा अरे द्रष्टव्य" इत्यादौ पुरुषमेव प्रकृतेर्विवेचनीयत्वेन दर्शयति । तादृशं विवेकज्ञानमेव अज्ञानाख्यबन्धनिवृत्तिद्वारा परममोक्षसाधनमिति मुमुक्षुभिर्दुःख-त्रयपरिहाराय सर्व्वतः सांख्यशास्त्रमेव समाश्रयणीयमिति दिक् ।

४२ । स्मृतिशास्त्रस्य प्रबन्धः ।

स्मृतिनिबन्धानामुपयोगमवलम्ब्य—

जगत्यस्मिन् चतुर्विधः पुरुषार्थः श्रूयते । तेषु च धर्म्म एव

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रथमपुरुषार्थः। तस्य धर्म्मस्य अप्रत्यक्षत्वादर्वाग्दर्शिभिः स्वमनीषया न निरूपयितुं शक्यते "अयं धर्म्मोऽयमधर्म्मः" इति। अत एव मनुना प्रोक्तं—"धर्म्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः" इति। पूर्व्वमीमांसाकृता जैमिनिना च "चोदनालक्षणो धर्म्मः" इति सूत्रितम्। श्रीभागवते च "वेदप्रणिहितो धर्म्मो ह्यधर्म्मस्तद्विपर्य्ययः" इत्युपदिशता वेदव्यासेनापि धर्म्मस्वरूपनिरूपणे वेदानामेव प्रमाण्यमङ्गीकृतम्। ततश्च धर्म्मतत्त्वं जिज्ञासुभिः पुरुषैः सर्व्वतोभावेन वेदार्थपरिशीलनं करणीयमित्यायातम्।

न च वेदार्थपरिशीलने सर्वेषामेव जिज्ञासूनामधिकारोऽस्ति, दुरवगमत्वादनल्पावयवत्वाच्च। न हि वेदार्थविज्ञानमनन्यापेक्षं तद्विज्ञाने हि यदङ्गज्ञानं सम्यगपेक्षते। अङ्गानि च षट्, तानि च तावन्मन्दमतिभिरपि सुखेनैव अध्येतुमधिकर्त्तुञ्च शक्यन्ते, तत्रापि संख्याबाहुल्येन परिमाणमहत्त्वेन च अत्यल्पशक्तयः कामयमाना अपि न सम्यक् प्रवेशं लभन्ते। तेषु तेषु च अङ्गेषु प्रवेशमन्तरेण वेदेषु प्रवेशो न सम्भवति, प्रवेशं विना च तदर्थागमो नास्ति, अनधिगते च तदर्थे वेदपाठं शुकपाठमिव तिरस्करोति।

एवञ्च सति प्रायशो जना धर्म्मज्ञानमभिलषन्तो वेदेषु प्रवृत्ता अपि तत्तात्पर्य्यानवधारणात् प्रकृतार्थमपहाय अप्रकृतार्थं परिगृह्णन्तो धर्म्माद् भ्रश्येरन् अधर्म्मञ्च भजेरन्। तच्च करुणार्द्रमानसैः पुरुषैर्न सुसहमिति जगद्धितार्थिनः समाधिशुद्धबुद्धयो महर्षयो धर्म्मजिज्ञासुजनोपचिकीर्षया वेदार्थान् तत्त्वतः परिकलय्य धर्म्म-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

निबन्धान् प्रचक्रुः । त एव निबन्धा वेदार्थस्मारकत्वात् स्मृतिसंज्ञया परिभाष्यन्ते ।

ते हि निबन्धा भ्रमप्रमादादिदोषरहितैर्जगत्कल्याणपरैर्ऋषिभिः प्रणीतत्वात् निखिलपुरुषदोषविरहिताः स्वतः प्रमाणवेदमूलकत्वाच्च धर्मे निरपेक्षं प्रमाणम् ।

यद्यपि स्मृतिनिबन्धेषु प्रायशो मतभेदः समुपलभ्यते—एकत्र यदेव करणीयतया उपदिष्टम्, अन्यत्र स्मृतौ तदेव अकर्त्तव्यतया निरूपितमिति, तथापि तत्रानादरो न कर्त्तव्यः । यत्तेषामपि मीमांसापरिशोधितन्यायेन देशकालपात्रादिभेदेन व्यवस्थया अविरोधः सुसम्पाद एव । अन्यथा स्वतःप्रमाणेषु वेदेष्वपि तादृशविरोधबाहुल्यदर्शनेन अप्रामाण्यं न दुर्वचमज्ञैः । अत एव मनुनोक्तं—'वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः । एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम् ॥" इति । अयमाशयः—प्रथमं तावद्वेदादेव धर्मस्वरूपमवगन्तव्यं, तत्रापि संशये विरुद्धमतभेददर्शने च सति तदर्थाववोधिका स्मृतिराश्रयणीया, तत्रापि संशये परस्परविरुद्धपक्षदर्शने च सति सदाचारोऽनुसन्धेयः, अत्र विषये शिष्टाः कीदृग्व्यवहरन्तीति । अत एव मनुनैवोक्तं—"वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्" इति । तत्र हि वेदस्मृतिवत् वेदविदां शिष्टानां व्यवहारस्यापि धर्मे प्रामाण्यमुपक्षिप्तम् । यदि च शिष्टाचारेऽपि वैलक्षण्यमुपलक्ष्यते, तदा स्वस्य आत्मीयजनस्य च यत् प्रियं वेदोदितं तदेव धर्मतया अनुष्ठेयम् ।

यदि पुनः परवर्त्तिनो महात्मानोऽपि कृपया स्मृतिनिबन्धान् न

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

चक्रुः तदा अर्वाचीना मानवा धर्म्मं जिज्ञासमाना अपि ऋषि-प्रणीतसंहिताशास्त्रेऽपि सम्यग् व्युत्पत्त्यभावात् परस्परमतभेददर्शनाच्च स्वयञ्च समन्वयसम्पादनाक्षमत्वात् संशयसमाकुलचेतस्तया न कथमपि धर्म्मवर्त्मसु प्रवर्त्तेरन्। तथाच—जगति पापबाहुल्यं प्रसज्येत, तच्चानिष्टमसहमानमानसैरिदानीन्तनैरपि प्रौढ़प्रज्ञैर्महात्मभिः सकललोकदयापरवशतयैव श्रुतिस्मृतिप्रभृतीनि शास्त्राणि निर्मथ्य ततोऽनर्घं धर्मरत्नं निबन्धसूत्रैः समाहृत्य ग्रथितम्।

ततश्च अर्वाचीनानामल्पप्रज्ञानां जनानां स्वभावसञ्जातसंशयपटलदूरीकरणपुरःसरं दुरधिगमश्रुतिस्मृतिमधिगम्य धर्म्मतत्त्वस्य अनायासेन ज्ञापने सर्वेषां स्मृतिनिबन्धानां सुखप्रयोग इति युक्तमुत्प्रेक्षामहे इति।

४४। उपनिषदः प्रबन्धः।

गीताशास्त्रीयमोक्षकारणमवलम्ब्य—

"मोक्षस्य कारणं कर्म्म उताहो ज्ञानमेव वा" इत्यादि पुराणवचनपरम्परापर्य्यालोचनया संसारसागरसमुत्तितीर्षूणां सदुपायजिघृक्षूणां मुमुक्षूणां चेतसि नितरामेवायं प्रश्नः समुदेति यत् मुमुक्षुमात्रैरभीप्सितोऽयं मोक्षः किं कर्म्मणा, उत ज्ञानेन अथवा तदुभयेन प्रसाध्यत इति?—

अत्र केचित्तावत्—"अपाम सोममम्रृता अभूम" इत्यादि श्रुतिवचनान्यवष्टभ्य 'कर्मैव मोक्षसाधनं' "न कर्म्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते" इत्यादि स्मृतीश्च समुपजीव्य महामुनिजैमिनि-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मतं बहुमन्यमाना ज्ञाननिरपेक्षं कर्म्मैव मोक्षसाधनतया सम्यगनुसन्दधते ।

केचिच्च, "न कर्म्मणा न प्रजया" "तदेव विदित्वाऽतिमृत्युमेति" इत्यादिकया श्रुत्या "ज्ञानमेव हि साधनम्" इत्यादि स्मृत्या च कर्म्मनिरपेक्षं केवलमात्मज्ञानमेव मोक्षसाधनमाचक्षते ।

अन्ये तु "उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः । तथैव ज्ञानकर्मभ्यां मुक्तिः" इत्यादि वचनमाश्रयन्तः, ज्ञानकर्मणोः समुच्चयमेव मोक्षसाधनतया व्याहरन्ति, समुच्चित्य च तदुभयमेव सेवन्ते ।

इत्थञ्च विभिन्नप्रकारे प्रस्थाने प्रचरतां सतां प्रवृत्तिवैचित्र्यं समभिगम्यानतिप्रौढ़प्रज्ञानां जिज्ञासूनां भवति विमर्शः किमस्माभिराश्रयणीयमिति । ततश्च, तादृशसंशयसमुच्छित्तये सदसत्तत्त्वनिर्णयनिपुणेन, विश्वदृश्वचक्षुषा भगवता वासुदेवेन प्रियशिष्यमर्ज्जुनं निमित्तीकृत्य समुपदिष्टे गीताशास्त्रे भवति प्रवृत्तिः । तत्र च, क्वचित् ज्ञानस्य क्वचित् कर्म्मणः, क्वचिद्वा तदुभयस्यापि प्रशंसितत्वादर्वाग्दृशा तत्त्वनिर्णयः सुदुष्करः । यतः शुद्धबुद्धेर्भगवदेकशरणस्य प्रशस्तचेतसो भगवति कृतनिर्भरस्य अर्जुनस्यापि तात्पर्य्यानवधारणादेवं पर्य्यनुयोग आसीत् यत् "व्यामिश्रेणेव वाक्येन बुद्धिं मोहयसीव मे ।" "ज्यायसी चेत् कर्म्मणस्ते मता बुद्धिर्जनार्द्दन । तत् किं कर्म्मणि घोरे मां नियोजयसि केशव ।" इत्यादिप्रकारः ।

तत एव च, अनिर्णीततत्त्वाः समन्वयविधुरा मन्दमतयः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

केचित् कर्मैव भगवदभिमतमिति व्याहरन्ति, केचिच्च ज्ञानकर्मणोः समुच्चय एवेति प्रलपन्ति ।

अत्र भगवन्तः शङ्करस्वामिपादा नैतन्मतद्वयमपि स्वीकुर्व्वन्ति स्म, किन्तु केवलं ज्ञानमेव भगवताऽस्मिन् गीताशास्त्रे मोक्ष-साधनतया निरूपितमिति समामनन्ति युक्तिभिश्च समर्थयन्ते ।

तेषामयमाशयः,—न हि कर्म्म कर्म्मसमुच्चितं ज्ञानं वा मोक्ष-साधनं भवितुमर्हति अयोग्यत्वादनपेक्षितत्वाच्च । मोक्षो हि नाम बन्धध्वंसः, बन्धश्चाज्ञानमूलो दुःखसम्बन्धः । ततश्च यावद्बन्धकारण-मज्ञानं न निवर्त्तते, तावत् कल्पशतेनापि दुःखसम्बन्धो बन्धो न वारयितुं शक्यते, सति मूले कार्य्यारम्भस्यावश्यम्भावात् । अनि-वर्त्तिते च दुःखसम्बन्धे तन्निवृत्तिरूपस्य मोक्षस्य कुतः सम्भवः ?

कर्म्म तावन्न अज्ञाननिवारकम् अविरोधात्, तन्मूलकत्वाच्च । अज्ञानप्रसादाद्धि देहेन्द्रियादिष्वनात्मसु आत्मात्मीयभावाध्यासं कुर्व्वता एव पुंसा कर्म्माण्यनुष्ठीयन्ते । न हि देहेन्द्रियादावनध्यात्म-भावेन आत्मनि वर्णाश्रमाचारादि अभिमन्यते, न च तद्रहिताः पुरुषा अधिक्रियन्ते कर्म्मसु ।

अपिच कर्म्माणि यदेव कारणमाश्रित्य सर्व्वत्र प्रवर्त्तन्ते, कथं तदेव कारणीभूतमज्ञानं निवर्त्तयेयुः ? तदनिवृत्तौ च बन्धानिवृत्ति-रित्युक्तमेव । येन च यस्य शाश्वतिको विरोधः,स एव तदेकान्ततः समुच्छिनत्तीति युक्तम् । विरोधश्च ज्ञानेन सहाज्ञानस्य दृष्टः सुतरां ज्ञानमेकं विहाय पुरुषायुषेणापि न शक्यमज्ञानमुच्छेत्तुं, तस्माद्-बन्धनिवृत्तिकामैरकामतोऽपि तत्त्वज्ञानमेव समाश्रयणीयम् ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रकृते च गीताशास्त्रे दुःखपङ्कनिमज्जज्जगज्जीवानुजिघृक्षुणा भगवता प्रियसखमर्जुनं प्रति तदेव ज्ञानं मोक्षसाधनतया प्रोक्तं, "बुद्धौ शरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ।" "ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ॥" "उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ।" "ज्ञानेन हि तदज्ञानं येषां नाशितमात्मनः । तेषामादित्यवज्ज्ञानं प्रकाशयति तत्परम् ।" "बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते ॥" इत्यादिभिः ।

"आरुरुक्षोर्मुनेर्योगं कर्म्म कारणमुच्यते ।
योगारूढस्य तस्यैव शमः कारणमुच्यते ।
न कर्म्मणामनारम्भान्नैष्कर्म्यं पुरुषोऽश्नुते ।"

इत्यादिभिर्वचनैस्तु भगवतैव कर्म्मणां चित्तशुद्धिद्वारा ज्ञानसाधनत्वमात्रमुक्तं, सुतराम् एतादृशपरम्परया मोक्षं प्रति कर्म्मणामपि अपेक्षितत्वमस्त्येव, न तु साक्षात् ।

अत एव च ज्ञानकर्म्मणोः समुच्चयपक्षोऽपि नापेक्षितः, एकस्य कारणत्वेन उभयस्याकारणत्वापातात् । तस्मादस्मिन् गीताशास्त्रे केवलज्ञानमन्तरेण कर्म्मणः ज्ञानकर्म्मणोः समुच्चयो वा मोक्षहेतुतया भगवता नोक्तः, न च अर्जुनेनापि तादृशः पक्षः परिगृहीतः, तस्माद्गीताशास्त्रे ज्ञानमेव मोक्षकारणमिति निरवद्यं मतमित्यलमतिप्रसङ्गेन ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

४५ । वेदान्तस्य प्रबन्धः ।

अध्यासमवलम्ब्य—

उत्तरम्—कोऽयमध्यासो नामेति समुच्चरति चिरमयं दुर्य्योगः पर्य्यनुयोगः। भवति चाऽत्र सतामपि विशेषेण विप्रतिपत्तिः, किमयं परिकल्पितो भ्रम एव नामान्तरेण परिचरति, अथवा अन्यथाख्यातिरिव कश्चिद्विशेषधर्म्ममवगाहमानः पृथगिव प्रत्यवभासते, उत स्वत एव कश्चिदपरः स्वनाम्ना विराजते वेदान्तेषु? अपूर्व्वप्रायत्वात् संज्ञाया अश्रुतपूर्वत्वाच्च स्वरूपस्य सम्भवति चाऽत्र विमर्शकारणम्।

तत्र सर्वेषामेव विदुषां विशेषतश्च निर्व्वाणपदवीमुपारुरुक्षूणां मुमुक्षूणां सम्यग्जिज्ञासाविषयत्वादपेक्षितत्वाच्च वेदान्तसिद्धान्तव्यवस्थायां तत्रभवता भगवता परमकारुणिकेन साक्षात् शङ्करमूर्त्तिना आचार्य्यपदवीमुपारूढ़ेन श्रीमता शङ्करस्वामिना शारीरकमीमांसाभाष्ये "स्मृतिरूपः परत्र पूर्व्वदृष्टावभासः" इति तल्लक्षणं निरमायि। यत्र हि अयोग्येऽधिकरणे पूर्व्वदृष्टस्य यस्य कस्यचिद्वस्तुनः सादृश्यादिसन्दर्शनवशात् प्रतिभासो भवति, भवति तत्राऽध्यासलक्षणसमधिगमः।

तथाहि इदं रजतमिति पुरोवर्त्तिन्यां शुक्तौ यो रजतस्य प्रत्यवभासः स हि अध्यासस्य स्फुटमुदाहरणम्। एवमनात्मसु देहेन्द्रियादिषु अनवहितचेतसां पुंसामात्मभावभावनापि न ततोऽतिरिच्यते।

इदमत्र तावदवधेयम्—अस्ति हि ब्रह्माश्रिता त्रिगुणमयी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

काचित् शक्तिरविद्या नाम। अस्ति च तत्र द्विविधा शक्तिराव-रणात्मिका, विक्षेपात्मिका च। तत्र आवरणशक्तिः खलु स्वसम्ब-न्धिनं स्वरूपतः समावृत्य ग्रहणाऽयोग्यत्वमापादयति, विक्षेपशक्तिश्च तत्रैव आवरणयवनिकापावृतस्वरूपे वस्तुनि विलक्षणं किमप्यन्यत् समुत्पादयति।

तथाच—इदं रजतमित्यत्र प्रथममावरणशक्तिः पुरोवर्त्ति-शुक्तिस्वरूपमावृणोति, तदावृतायाञ्च शुक्तौ विक्षेपशक्तिद्वारा अज्ञानमेव लोकविलक्षणं किञ्चिद्रजतमाविष्करोतीति। इदमेव च प्रातिभासिकमिति परिगीयते वेदान्तविद्भिर्यावत् प्रतिभासमव-स्थानात्।

इत्थमेव च आवरणविक्षेपशक्तिद्वयसम्पन्नमज्ञानमावरणशक्ति-द्वारा प्रथममखण्डसच्चिदानन्दमयमपि नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभावमपि स्वस्यैवाश्रयभूतं ब्रह्म पटादिरिव घटादिकं समावृत्य जिज्ञासूनां दृक्पथमवरुणद्धि। अनन्तरञ्च स्वीयविक्षेपशक्त्या तस्मिन्नेव विशुद्धे सर्व्वतः प्रद्योतमाने ब्रह्मणि अनन्ताद्भुतनिलयं जगदिदमुद्भावयति। तत्र च गगनपवनदहनसलिलभूमिभूतानि भूतानि क्रमेणोत्तरोत्तरकारणतया प्रादुर्भवन्ति। एतानि च सूक्ष्मभूतानि तन्मात्राणीत्यपि गीयन्ते। एतेभ्यश्च यथायोगमानन्द-मयविज्ञानमयमनोमयप्राणमयाख्यकोषचतुष्टयस्य प्रादुर्भावः।

एतान्येव भूतानि पञ्चीकृतानि सन्ति स्थूलतां भजन्ते, तेभ्यश्च स्थूलदेहादीनां यथायोगमुत्पत्तिः।

एवं हि समुपजातेषु जड़त्वस्थूलत्वपरिच्छिन्नत्वानित्यत्वादि-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

धर्म्मिकेषु अनात्मसु तेषु विदुषामपि आत्माऽध्यासः समुपजायमानः परिलक्ष्यते।

स चाऽध्यासो द्विविधः,—संसर्गतादात्म्यप्रभेदात्। यत्र हि धर्मिणमपहाय धर्ममात्रसम्बन्धे वस्तुनि अध्यास्यते, तत्र संसर्गाऽध्यासः, यथा जवाकुसुमसन्निहिते शुद्धे स्फटिकादौ जवाकुसुमगतलौहित्यस्य संसर्गोऽध्यास्यते।

यत्र च धर्मी एव धर्म्यन्तरे अभेदेन समारोप्यते, तत्र तादात्म्याध्यासः, यथा दग्धृत्वाऽनाश्रये अयोगोलके दग्धृताश्रये वह्निर्गाढसम्बन्धवशादभेदेनाऽध्यास्यते। यत्प्रसादात् "अयो दहती"तिलोकव्यवहारः समुल्लसति सर्व्वत्र।

संसर्गाऽध्यासापेक्षया तादात्म्याऽध्यास एव पुरुषाणां समधिकमनर्थाय प्रभवति।

इममेवाध्यासमविद्यामाचक्षते तत्त्वविदः। अतस्तदुच्छेदाय संसारानलसन्तप्तचेतोभिर्मुमुक्षुभिः सर्व्वतस्तत्त्वज्ञानसरणिरवश्यं शरण्यतया समाश्रयणीयेति।

४६। "वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्।"

"वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्" उपदेशवाक्यमिदं श्रुत्वैव अस्माकं मानसाकाशे वर्त्तमानकाललब्धकपोतं परित्यज्य भविष्यत्काललभ्यमयूराशया न स्थातव्यमित्येव अर्थः समुदेति। इममेव अर्थं विष्णुशर्म्मापि प्रकारान्तरेण प्रकटितवान्, यथा—"यो ध्रुवाणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते। ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अध्रुवं नष्टमेव हि ॥" अतः "वरमद्य कपोतः श्वो मयूरा"दित्यस्य वर्त्तमानं परित्यज्य भविष्यदाशया न स्थातव्यम् इत्येव फलितार्थः। एतेन सम्प्रति वर्त्तमानकालस्य सद्व्यवहारप्रदर्शनप्रसङ्गेन प्रथमतस्तावत् कालो निरूप्यते। अस्य परिदृश्यमानानन्तसंसारस्य सृष्टेः प्रागेवारभ्य महाप्रलयेऽप्यविनश्वरः जगदाधारभूतः अयं कालः निरवच्छिन्नभावेन आत्मनः सत्तां प्रकाशयति। सत्ययुगसमुद्भूतशुम्भनिशुम्भादिदनुजकुलदलनाय महाकाल्याविर्भावस्य, तथा सुरेन्द्रादिदेववृन्दविमर्द्दक—त्रेतायुगजातरावणसंहाराय श्रीरामचन्द्रोदयस्य, अपि च द्वापरयुगजनिकुरुपाण्डवमहासंग्रामे गीतामृतधारावर्षणाय श्रीकृष्णजननस्य च काल एव प्रदर्शकः। प्रबलकलौ—सनातनधर्म्मसंस्थापनाय भविष्यत्काले यत् भावि तदपि काल एव प्रकटीकरिष्यति। काल एव जननीजठरनिवाससमये भूमिष्ठकाले बाल्ये कैशोरे यौवने प्रौढ़ावस्थायां बार्द्धक्ये मरणे तथा पञ्चभूतविलयसमये जीवानामेक एव धाता पाता संहर्त्ता च। संसारसुखदुःखभोगसहनशीलानां जीवानां जननीजठरनिवासादारभ्य पञ्चभूतविलयपर्य्यन्तम् एकः काल एव सर्व्वासां जीवावस्थानां साक्षीभूतः। सोऽयं कालः भूतभविष्यद्वर्त्तमानभेदेन त्रिधा विभक्तः। तथाच वर्त्तमानध्वंसप्रतियोगी तावत् भूतकालः। वर्त्तमानप्रागभावप्रतियोगी तु भविष्यत्कालः। क्रियावच्छिन्नक्रियाप्रयोगकालवृत्तिस्तु वर्त्तमानकालः। तिरोहित-महापुरुषचरितसमालोचनया आत्मोन्नतौ एव अतीतकालस्य उपयोगिता। न विद्यते कापि उपयोगिता भविष्यत्कालस्य, यतः भविष्यत्काल

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एव क्रमशः वर्त्तमानरूपेण अस्माकं समुदेति। समागत-वर्त्तमानकालगर्भे एव मानवनिवहानामैहिकपारत्रिकयावतीय-सुखस्य बीजं निहितमस्ति। अतः आलस्यादिपरिरहितेन मानवनिवहेन सर्व्वतोभावेन वर्त्तमानकालस्य सद्व्यवहारः कर्त्तव्यः। चन्द्रसूर्य्यनक्षत्रादयः सर्व्वे एव विश्वनियन्तृनिर्देशं शिरसि निधाय वर्त्तमानकालस्य सद्व्यवहारं कृत्वा मानवान् उपदिशन्ति। ते चन्द्रादयो यदि वर्त्तमानकालस्य सद्व्यवहारं परित्यज्य मुहूर्त्तमपि विश्राम्यन्ति, ऋतवो यदि पर्य्यायेण नायान्ति, जगत्प्राणो यदि क्षणं न वाति, नद्यो यदि क्षणकालं न वहन्ति, तदा सौरजगतः अवस्था मूर्त्तिमत्याः कल्पनायाः अपि कल्पनातीता भवति इति मन्यामहे। इह खलु जगति तेन कदापि कस्मिन्नपि विषये न साफल्यं लभ्यते, येन वर्त्तमानं परित्यज्य भविष्यदाशया स्थीयते। यदि कश्चित् यौवनसमये एव अहं शिक्षोन्नतिं करिष्यामि इति विचिन्त्य सुखप्रदं बाल्यजीवन-मानन्देन अतिवाहयति, किंवा प्रौढावस्थायामेव अर्थोन्नतिं विधास्यामि इति मनसि निधाय विलासेनैव यौवनं गमयति अथवा—वार्द्धक्ये एव धर्मकर्म करिष्यामि इति निश्चित्य विषय-चिन्तया प्रौढावस्थां नयति, नूनं स प्रतिपदमेव निन्दनीयः सन् अनुतापानलेन दग्धीभवति। येन तु वर्त्तमानकालस्य यथोचितं सद्व्यवहारः क्रियते, तेनैव मनुष्येण मनुष्यपदवाच्येन भूयते। अपिच तेनैव सर्वेषु एव विषयेषु साफल्यं लभ्यते। तथाहि एकदा कश्चित् निषादतनयः प्रखरप्रभाकरकिरणमालाकीर्णानि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पर्व्वतप्रान्तरारण्यानि सर्वं दिनं मृगयार्थं परिभ्रम्य कमपि मृगं न प्राप्तवान्। अथ यामिनीमुखे तेन कश्चित् नीड़भ्रष्टः रात्र्यन्धः कपोतः प्राप्तः। कपोतस्तु यममिव द्वितीयं तं व्याधं दृष्ट्वा कम्पित-कलेवरः सकरुणमुवाच—भो निषाद! अतिक्षुद्रं मां मा जहि, मम मांसेन तव क्षुधानिवृत्तिर्न भवेत्, त्वमद्य कथमपि यामिनीं यापय, श्वस्त्वामहं मयूरकुलविशोभितं काननमेकं दर्शयिष्यामि, शिखिकुलविनाशनेन त्वमतीव लाभवान् भविष्यसि इति। निषादेनोक्तं नैतत् युक्तमुक्तं त्वया यतः—"मुखमांसं परित्यज्य मत्स्यलोभाय धावतः। श्येनेनात्तं शृगालस्य मांसं मत्स्यो जलं गतः॥" अतः मम मनसि "वरमद्य कपोतः श्वो मयूरात्" इत्युपदेशवाक्यं सर्व्वदैव विराजते इत्युक्त्वा अग्निं प्रज्वाल्य तत्र सन्दह्य भक्षितः स कपोतस्तेन शवरेण। एतेन वर्त्तमानकालस्य सद्व्यवहारो न केवलं सांसारिकसुखेषु, अपि तु पारलौकिकमङ्ग-लाय हरिचरणसाधनायामपि उपयोगीति धीरैः कीर्त्यते। अत एव वर्त्तमानकालस्य सद्व्यवहारः सर्व्वदैव अस्माभिः करणीयः नास्त्यत्र कोऽपि तर्कावतारः। इति शम्।

४७। मुखं व्याकरणं स्मृतम्। (वेदस्य)

ग्रहोपग्रहनक्षत्रादिपरिशोभितं विधातृनियमाधीनं जगदिदं कीदृशसुनियमेन परिचालितं परिरक्षितञ्च तदतीव विस्मयप्रदम्। ईदृशं सुन्दरादर्शं सम्मुखावस्थितं विलोक्य विश्वसंसारस्य याव-तीयव्यापार एव विधातुर्निर्द्दिष्टनियमाधीनः इति न कस्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मनस्विनश्चेतसि नरीनृत्यते ? उन्मार्गगामिनः जगतः अवस्था खलु कल्पनातीता। विश्वजनविदितः विधिनिर्दिष्टनियमः सर्व्वत्र सर्वेषु एव व्यापारेषु राजते। सभ्यजगति मानवनिवहानां भाषां नियन्त्रयितुमेव व्याकरणस्य सृष्टिः। न केवलं वेदस्य अपितु भाषानिबद्धभारतीयशास्त्रनिचयस्य एव 'मुखं व्याकरणं स्मृतम्।' भाषाजगति पवित्रसाहित्यस्य रम्यविशालमन्दिराभ्यन्तरे प्रवेशाय व्याकरणसिंहद्वारेण प्रयोजनम्। अनेन सिंहद्वारेण मन्दिरं प्रविश्य यः सरस्वतीदेव्याश्चरणपङ्कजेषु यथाशक्ति स्तुतिकुसुमाञ्जलिं दत्त्वा कुसुमालङ्कारेण अलङ्कर्त्तुं शक्नुयात् स एव विद्याविनोदः प्रकृत-मातृभक्तः। अपितु यः अप्रशस्तपथेन देवीमन्दिरं प्रविश्य व्याकरणविरुद्धपदकदम्बमालया देवीपादपद्ममलङ्कर्त्तुं यतते स खलु देव्याः कुन्देन्दुतुषारधवलचरणकमले कलङ्कपातमेव करिष्यति। स एव कलङ्की स एव महापापी इति धीरैः कीर्त्त्यते। अस्मात् विषमसङ्कटात् व्याकरणमेव परित्राणकर्त्तृ। वाग्देव्याः अमलधवलचरणकमलरञ्जकं व्याकरणमेव पूतश्वेतचन्दननिभम्। व्याकरणमेव साहित्यस्य सौन्दर्य्यं, व्याकरणमेव साहित्यस्य शिरोभूषणम्। सुचारुदर्शनस्तप्तकाञ्चनवर्णाभः कुमारविनिन्दित-कान्तिः कुमारो यदि वाक्शक्तिविहीनो भवति, तदा तस्य सौन्दर्य्यं परिगणितं न स्यात्। तदा व्याकरणज्ञानहीनस्य साहित्यालङ्करणेच्छा तादृशी एव निन्दनीया भवति। अथवा रूपयौवनसम्पन्ना विशालकुलसम्भवा सौन्दर्य्यजगति अतुलनीया विधातुः सर्व्वोपमाद्रव्यसमुच्चयेन विनिर्मिता नानालङ्कारभूषिता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अतुलैश्वर्य्यशालिनी हर्म्यतलनिवासिनी सतीधर्म्मविवर्जिता रमणी यथा सामाजिकैर्विद्वद्भिर्निन्दनीया, व्याकरणज्ञानरत्नहीनोऽपि भाषाविलासविषये आर्य्यवर्य्यैस्तादृश एव निन्दनीयो भवति। भाषा तु साध्वसाधुभेदेन द्विविधा। रचनाविरचनार्थं तु साधुभाषा, परस्परकथोपकथनार्थमेव असाधुभाषा वा प्रचलितभाषा। साधुभाषां वा संस्कृतभाषां नियन्त्रयितुमेव व्याकरणस्य सृष्टिः न तु असाधुभाषां वा प्रचलितभाषाम्। अत एव व्याकरणनियन्त्रितायाः साधुभाषायाः समादरो दृश्यते। व्याकरणमन्तरेण भाषा तु तिमिराच्छन्ना एव जायते। नास्त्यत्र कापि विचित्रता। ईदृश एव व्याकरणस्य महिमा!

भारतीयानां साहित्यक्षेत्रं सुदूरविस्तृतम्। व्याकरणं विना साहित्यागारस्य ज्ञानरत्नं कदापि न सुलभं भवति।

पारस्यादिभाषाविमुग्धानां भारतीयानां वैदेशिक-साहित्यागारप्रवेशात् किंवा काचलाभाय काञ्चनत्यागात् अथवा विचित्र-सृत्तिकाप्राप्तये अमूल्यरत्नवर्जनात् प्रागेव भारतीय-साहित्यागारे प्रवेशनीयम्। ईदृशं शास्त्ररत्नागारं न कुत्रापि राजते। अतुलनीयं मनस्विवाञ्छनीयं खलु भारतीयसाहित्यागारम्। वस्तुतस्तु भारतशास्त्रकीर्त्तिरत्नया मनोहारिणी च।

अस्य खलु भारतवर्षस्य शास्त्रनिचय-ज्योतिष्कमालामण्डितस्य भाषाकाशस्य सांख्य-वेदान्तोपनिषदादिनक्षत्राणि सदैव औज्ज्वल्यं सम्पादयन्ति।—जनमानसाकाशाशेषशान्तिविधायको वेदस्तत्र चन्द्रमाः। सूर्य्यस्तत्र व्याकरणं पदार्थनिचयप्रकाशकत्वात्।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भारतीयशास्त्रज्ञानलाभाय व्याकरणमेव मुखम् इति सर्वैरेव शास्त्रपारगामिभिरार्य्यवर्य्यैः स्वीक्रियते, नास्त्यत्र कोऽपि सन्देहः। किं बहुना, दृश्यते च सर्व्वदर्शनसंग्रहान्तर्गतपाणिनिदर्शने :— 'प्रथमं छन्दसामङ्गमाहुर्व्याकरणं बुधाः।' तस्मात् व्याकरण-शास्त्रस्य शब्दानुशासनं भवति साक्षात् प्रयोजनं, पारम्पर्य्येण तु वेदरक्षादीनि। तथाचोक्तं भगवता भाष्यकारेण—रक्षोहागम-लघ्वसन्देहाः प्रयोजनमिति। अपि च एकः शब्दः सम्यक् ज्ञातः सुष्ठु प्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति। तथाहि—'नाकमिष्ट-सुखं यान्ति सुयुक्तैर्बद्धवाग्रथैः।' ननु अचेतनस्य शब्दशास्त्रस्य कथमीदृशं सामर्थ्यमुपपद्यते इति चेत्, मैवं मन्यथाः महता देवेन साम्यश्रवणात्। तथाच श्रुतिः—चत्वारि शृङ्गाणि त्रयोऽस्य पादा द्वे शीर्षे सप्तहस्तासो अस्य त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति महो देवो मर्त्यां आविवेश।—व्याचकार च भाष्यकारः—चत्वारि शृङ्गाणि चत्वारि पदजातानि नामाख्यातोपसर्गनिपाताः, त्रयोऽस्य पादाः लड़ादिविषयाः त्रिधा भूतभविष्यद्वर्त्तमानकालाः, द्वे शीर्षे द्वौ नित्यानित्यात्मानौ सप्तहस्तासो अस्य तिङा सह सप्त सुब्विभक्तयः त्रिधा बद्धः त्रिषु स्थानेषु उरसि कण्ठे शिरसि च बद्धः वृषभः रोरवीति शब्दं करोति महो देवो महादेवः शब्दः मर्त्यां मनुष्यास्तान् आविवेश इति।

"इदमाद्यं पदस्थानं सिद्धिसोपानपर्वणाम्। इयं सा मोक्ष-मार्गाणामजिह्मा राजपद्धतिः॥" तस्मात् व्याकरणशास्त्रमेव हरिचरणसाधनतया अध्येतव्यम्। अलमतिविस्तरेण।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

४८। चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखादल्पधियामपि काव्यादेव।

अनादिनिधने चास्मिन् संसारसमवधाने निरन्तरमन्तरमनन्ते वासनावृत्तान्ते निमज्जयन्तः सन्तोऽप्यसन्तो वा विचरन्ति, केचिदुपजातवासनावासितान्तःकरणाः सन्ततमात्मतृप्तिसाधनविमुखाः भौतिकविषयोपरागरञ्जितचेतसो विहरन्ति केवलं मुग्धाः, केचिच्च परिज्ञातवैराग्याः सुयोग्यभाग्याः परमार्थतत्त्वसार्थं सम्प्रार्थयमानाः शान्तिमन्ते स्वान्तसञ्चारिणीं सञ्चारयन्ति। न दृश्यन्ते केचिन्निष्क्रिया वा निरभिप्राया वा प्रायो जीवसम्प्रदायाः, श्रूयन्ते—सन्ति जीवन्मुक्ता विषयवासनावियुक्ताः परमार्थतत्त्वाधिगमशक्ताः—ते च कथञ्चिदनुमानादिगम्या ग्राम्यैरनेकशः एव अस्वीकृताः सौम्याः साम्यविमुक्ताः। एवं वर्त्तमाने जगति भावप्रवाहे साधारणाधारणा त्वेवंगामिनी यन्नास्ति तथाभूतः कश्चिज्जगति यश्चतुर्वर्गाणां धर्म्मार्थकाममोक्षाणामन्यतमं विषयमनधिकुर्व्वन् जगति प्रचरति—तथाच धार्मिको धर्म्यं भावं प्रमाणयति प्रवर्त्तते च धर्मसम्पूर्त्तौ कीर्त्तिञ्च प्रवर्त्तयति दिक्सार्थेषु यथार्थं प्रशस्ताम्। अथ कामुको भावुको निरन्तरमर्थकदम्बकानां साडम्बरमम्बरयति चित्तम् अर्थसाधकविषयवासनया, समुन्मुखश्च सन्ततमत्यन्तचेष्टया धनानि समर्जयितुं परितोषयितुञ्च परिवारान्। कामी चानन्तकामनागामी परिश्रमी कामनालाभे, स च परितप्यते कामनाभङ्गे, परिम्लायते च यथाभीष्टमिष्टलाभहानौ। मोक्षार्थी

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सदर्थपूर्त्तिं प्रवर्त्तयन्नात्ममानसे परं करोति कर्म्माणि मर्म्मशर्म्माणि निरभिसन्धानं, लभते च योगादिसमायोगात् सर्व्वोत्कृष्टं सदिष्टं, समवतिष्ठते च निरञ्जनो जनसाधारणधारणाबहिर्भूतः, तदानीं सुदूरे संसारः, सुखं वा दुःखं वा गुणो वा दोषो वा बिभेतीव तस्मात्, न प्रतिविम्बितो भवति संसारः तदानीं निर्मलात्मनि, निर्म्मले च कुत्रचिदध्वनि विलसति विशुद्धात्मा। तदानीञ्च तमेव ब्रह्मवादिनो विज्ञानविदः "शुद्धबुद्धमुक्तस्वभावं" पर्य्यालोचयन्ति, विरमन्ति तस्मात् संसाराः। स एव प्रकारो मोक्षो जीवात्मन इति दर्शनविदां पन्थाः। स च दर्शनभेदेन नानादिशः समाश्रयन् अपि एकत्रैव सारतः पर्य्यवस्यति—"यथा नदीनां बहवोऽम्बुवेगाः समुद्रमेवाभिमुखा द्रवन्ति"—"प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च","नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव"। तथाच यथा सांख्ये—"प्रकृतिपुरुषयोरभेदेन प्रतिपन्नयोर्भेदग्रहः" उत्तरमीमांसायां (वेदान्ते)—"ब्रह्मत्वेतरधर्मेण गृहीतेषु मिथ्यात्वग्रहसहकृतब्रह्मतादात्म्यप्रमा" न्याये च—"परमात्मज्ञानम्" इत्यादिकं मुक्तिप्रयोजकं जीवात्मनां तत्तत् सर्वं दर्शनादिसमादिष्टमिष्टसाधकमपि कठोरकष्टसाध्यम् इति सर्वेषां परिज्ञानम्। काव्यञ्च रसमयं माधुर्य्यमयं मानसं प्रफुल्लयत् सर्व्वजीवानाम् चतुर्वर्गफलप्राप्तिसाधकं शास्त्रनिर्दिष्टम्।

परमकारुणिकाश्च कवयः समाजसाम्राज्यमधिगच्छन्तः कृपावन्तः समाजशिक्षणेषु समाजेष्टसाधनेषु च बहुगवेषणया तावदिमं चतुर्वर्गसाधकं पन्थानम् आविष्कृतवन्तः, परं प्रशस्यन्ते

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

च, तथाच श्रूयते—"एक: शब्द: सुप्रयुक्त: सम्यग् ज्ञातस्य स्वर्गे लोके च कामधुग्भवति" दर्शनादिकं हि कठोरचिन्तापरिग्राह्यविषयं नाल्पमेधसां कथञ्चिदुपकारविशेषमापादयितुं कदापि शक्नुयात् गभीरमेधसामपि संसारपरिहारव्यतिरेकेण नालं साधयितुम् मोक्षलाभं, किन्तु काव्यमल्पमेधसोऽपि समधिगच्छन्त: संसारपरिहारमकुर्व्वन्तोऽपि स्वच्छन्दं मोक्षमपि समागन्तुं शक्नुवन्तीति वैशिष्ट्यं दर्शनादिभ्य: काव्यस्य। तथाच काव्यात् चतुर्वर्गलाभे वयम् इमां युक्तिं परिपश्याम:, परे चातिगभीरचिन्तापरिशुद्धा एवमेव समादधिरे—"काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये सद्य: परनिर्वृतये कान्तासम्मिततया उपदेशयुजे।" दृश्यते च कालिदासादय: कविकुलललामभूता: काव्यनिर्म्माणगौरवेणैव मृता अपि सजीवतामुपगता अद्यापि जीवितवदाभासन्ते संसारेषु। अद्यापि तेषां कीर्त्तिधारा सुधेव पूर्णसुधाकरस्य धवलयति सर्वा दिश:। कति वा व्यवहारा: कति वा नीतिकला: कति वा धर्म्मपद्धतय:, तस्मात् शिक्ष्यमाणा लोकै: सम्पादयन्ति लोकानां क्रमेण उन्नतिसीमातिक्रमम्। तथाच काव्यादेव वयमधिगच्छाम: रामादिवत् प्रवर्त्तितव्यं न रावणादिवत्, मृच्छकटिकप्रकरणनायकस्य चारुदत्तस्य चरित्रं शिक्षणीयं न शकारस्य, शिक्षिते च शकारचरित्रे तथा तथानिष्टं सम्भावयते, चारुदत्तचरित्रे च समाचरिते भावि मङ्गलमव्याहतं स्यास्यतीति एवं शिवसाधकव्यवहारपरिज्ञानेन जायते सर्वथा ऐहिकं पारत्रिकञ्च मङ्गलमिति, तेन च सच्चरित्रताप्राकाम्येण धर्म्मसम्पद: प्रादुर्भवन्ति प्रादुर्भूत-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सदृष्टप्रभावेण च मोक्षोपायभूतं ज्ञानं सम्पद्यते। काव्येषु वयं यां यां सच्छिक्षां लभामहे, सा सा सुतरां मुख्यतः परम्परया वा मुक्तिसंसाधिकेत्यत्र नास्ति केषाञ्चिन्मतवैषम्यम्। सन्ति च मुख्यतो धर्म्मग्रन्थाः काव्यानि महाभारतरामायणादीनि, तेषाञ्च विशेषेण चतुर्वर्गसाधकत्वमिति फलश्रुतावपि।

तदेतत् सारतः पर्य्यवसानं यत् काव्येषु बहुलेषु स्थलेषु देवचरितपाठेन धर्मजनक-नानाविषयज्ञानेन धर्मः, राजादिपरितोषणेन चार्थः, अर्थतो वा परितोषितराजादिसमीपादाकाङ्क्षया वा देवादिपरितोषसम्पादनेन वा कामनालाभः, मोक्षोपायपरिज्ञानेन तदाचरणाच्च मोक्षः, इत्येवं काव्यादेव रसमयात् अनायासं चतुर्वर्गप्राप्तिः। तदेतत् काव्यं दर्शनानुशीलनपरित्यागेनापि समुपास्यमिति केषाञ्चित् प्रवृत्तिः। तथाच—कटुकौषधोपशमनीयस्य रोगस्य सितशर्करोपशमनीयत्वे कस्य वा रोगिणः सितशर्कराप्रवृत्तिः साधीयसी न स्यात्? "अर्के चेन्मधु विन्देत किमर्थं पर्वतं व्रजेत्" अथवा अलं दर्शनार्थपर्य्यालोचनपरिहारेण,काव्यं हि दर्शनार्थस्य वा शब्दार्थस्य वा व्यवहारशास्त्रस्य वा समवाय एव। तत्र हि तत्तत् शास्त्रात् अप्रयोजनीयांशपरिहारेण सारांशमादाय समाहितवन्तः कवयः। तद्यदि काव्यालोचनया गूढांशं सुगूढमनुधारणया चित्ते धारयन्ति तदैव भवति सकलदर्शनशास्त्रार्थपर्य्यालोचनाफलमनायासम्। एतदर्थमतिकरुणया तत्रभवान् विश्वनाथः समुट्टङ्कितवान् कारिकामिमाम्—"चतुर्वर्गफलप्राप्तिः सुखा" दित्यादि।

वर्त्तमाने च कालप्रवाहे सुतरां समुपयोगि काव्यं परमार्थ-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तत्त्वाधिगमे। तथाच—क्षीणमस्माकमायुः सन्ततमेव भीषयते जीवनिवहान्। अपि च केचिदकाले, केचिच्च पञ्चाशद्वर्षे स्वकाले जीवनं विसर्जयन्ति। तत्र यदि विस्तृतदर्शनशास्त्रपर्य्यालोचनया ज्ञानमर्जनीयं स्यात् तदा कस्यापि ज्ञानसम्भावना न स्यात्। अतः स्वल्पमेधसामस्माकं स्वल्पकालसंवेद्यं काव्यमेव सकलदर्शन-शास्त्रार्थसारभूतं तत्त्वार्थाधिगमे परं साहाय्यमाचरितुमलमिति। कठिनश्च दर्शनशास्त्रार्थः अंशतोऽपि न शक्यः तादृशेन स्वल्पकालेन बोद्धुम्। नापि प्रकाशते सर्वेषामन्तरे तस्य प्रकृतार्थः। काव्येषु च स्वाभाविकभावबाहुल्येन समयभावराशिविलासेन च सहसैव मतिः प्रवर्त्तते। तत्र स्वल्पेन च कालेन जायते कार्य्यसिद्धिः। सहसा च समधिक्रियन्ते धर्मार्थकाममोक्षाः काव्यानुशीलनानु-रक्तैः इत्यस्तु स्वल्पवचनेनैव वाचां परिशेषः।

४९। पुराणानां मुक्तिप्रयोजकत्वम्।

स्पष्टं दृष्टब्रह्माणो हि मुनयो व्यासवाल्मीकिप्रभृतयः समाजानां नियमप्रवर्त्तकाः समाजोपकाराय चिरमेव समासक्ता आत्मशक्तिं परिचालयन्ति स्म। यथा यथा समाजेभ्यः पापानि अपनीतानि स्वपदे परमपुण्यालोकसंसर्पवीक्षणेन परितापितानि भवन्ति तथैव सन्ततं चेष्टन्ते स्म। यथाच सबलैः दुर्वृत्तैः दुर्बलाः सुवृत्ताः नाभिभूयन्ते, पापकर्म्माचारिभिः सत्कर्मकारिणो न पराभूयन्ते, समाजे च किमप्यलौकिकं स्वर्गसुखमुपस्थाय नराणां मानवजन्म

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सार्थकं सम्भावयति, सत्कर्मसु च लोकानामविरला स्पृहा समुपजायते—तथा तथा नियमान् आविदयन्तः सन्तो लोके महामनसः पूज्यतमा एव प्रतीयन्ते स्म। सनातनमार्य्यधर्मसेतुं परिपालयितुकामा निष्कामा अपि जगति विहरन्ति स्म। इदमसत्कर्म, एतदाचरणेन गाढतममसुखमुत्पद्यते सद्यः, येन पृथिवीमपहाय लोकान्तरगमनतोऽपि नास्ति निस्तारः, तत्र प्राक्तनेन पापविधिना दुरदृष्टमुपचितं नरकमपि सर्व्वासुखसम्पादकं निर्वर्त्तयति, समुपतिष्ठते आत्मनि कठोरज्वाला, तदानीं सन्ततमेव मनसि पापकर्मणि घृणा प्रवर्त्तते! यदि कदाचित् पुनर्मानवजन्म लभेय तदा न पुनः पापलेशमपि उपार्जयेयं येन इदानीमेवं कठोरज्वाला अनुभूयते इत्येवं जायते वासना मानसे। तच्च विवरणं पुराणप्रणेतारः उपन्यासमुखेन रससम्पृक्तेन प्रयोजयामासुः। यथा पूर्व्ववृत्तमुपन्यासमुखेन पठन्तो विजानन्तो वा जीवाः असत्कर्मणो दुरदृष्टद्वारा विपन्निर्वर्त्तकतां सत्कर्मणश्च शुभादृष्टद्वारा सुखादिसम्पादकतामभिगम्य तत्र तत्र शुभे कर्मणि प्रवर्त्तन्ते, असत्कर्मभ्यश्च आत्मनः प्रतिनिवर्त्त्य सुखमयं संसारं कर्त्तुं प्रभवन्ति, विलसन्ति स्वयं कुत्रचित् परमानन्दे। तथाच प्रथमतो वाल्मीकिर्नाम महामुनिः रामायणप्रणेता प्राधान्येन रामचरितं रावणचरितञ्च आत्मनः प्रबन्धे मुख्यवर्णनीयतया अवललम्बे। तत्र च रामस्य नारायणावतारस्य चरितं महापुण्यमयं, लक्ष्मणादीनाञ्च तदनुयायिनां विशुद्धप्रेमादिशुद्धं, हनूमदादीनाञ्च तदनुगतानां महाभक्तिवैलक्षण्यं प्रतिपादयामास येन सर्वेष्वेव कष्टेषु निपतितो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रामभद्रः कष्टं कष्टतया विज्ञातुं न शशाक, महादुःखेऽपि काञ्चित् सुखपद्धतिमन्तरान्तरा समाश्रिश्राय। सीता त्रिलोकरमणी-जनललामभूता तस्य सहधर्मिणी मूर्त्तिमतीव सतीत्वख्यातिः, सुमृदुला पतिं तमेव निविडे कानने सर्वं राजकीयं सुखं परिवर्ज्य अनुवव्राज। कठोरेष्वपि दुःखसन्तापेषु पतिसेवाव्रतेन स्वर्गसुखमिव हृदये समुपजगाम। पतिसुखेनैव सर्वं सुखं सम्पन्नं ममान। पत्युर्दुःखेन च सर्वमिदं जगदसारमनुबभूव। यथा यथा नोपतिष्ठते पत्युर्दुःखलेशस्तथा सचेष्टा बभूव। भगवान् रामचन्द्रो नरवृत्तेन जगति परिभ्रमन् लोकशिक्षायै वा अविस्मृतभगवत्स्वरूपतया वा पितुराज्ञामात्रेण विमातुः प्रियाचरणहेतवे वा उपस्थितमपि समग्रं वसुधाधिपत्यमेकपद एव तृणाय मत्वा विसर्ज्य अरण्यमेव चतुर्दशवर्षाणि यावत् अधिष्ठातुं परिवव्राज। न केवलं मुखवाचा, परं मनोऽपि तस्य तेन विधिना न लेशतोऽपि दुःखं समाश्रयत्। राज्यभोगेन यथा तस्य सुखं समाशंसितमासीत् ततोऽप्यधिकमेव आनन्दं लेभे यदसौ पितुराज्ञां परिपालयितुं लब्धावसरो जात इति। सीतापि यत् पत्युरनुगमनं कर्त्तुं शक्तिमती बभूव, तत्रैव तस्या राज्ञीपदलाभापेक्षया आनन्दातिरेकः समजनीति महानयं हृदयभावो रामभद्रादीनां महात्मपदवीमध्यासीनानाम्। पुनस्तत्रैव भरतं नाम कैकेयीगर्भजातं रामभद्रभ्रातरं कविरेवं महामानसता-गुणगुम्फितं त्यागशीलं परिदर्शयामास यथा भरतो रामभद्रस्य कोशलराज्यं परिहाय वनप्रस्थानं, स्वमात्रा तदर्थमेव कोशलराज्यस्य प्रार्थनया व्यवस्थां तत्करणकञ्च पितुः कोशलाराजस्य दशरथस्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

परलोकगमनमवगत्य वनात् श्रीमन्तं रामभद्रं प्रत्यावर्त्तयितुकामः प्रतस्थे। असम्मति च रामभद्रे वनात् प्रत्यावृत्तौ, तदीयपादुकां शिरसि गृहीत्वा तामिव राजसिंहासने संस्थाप्य स्वयं नगराद्वहिरेव नन्दिग्रामे रामस्य प्रत्यावर्त्तनं यावत् कालमतिवाहयामास। ईदृशानि बहून्येव सद्वृत्तान्युपलभ्यन्ते रामायणे। एतेषां सद्वृत्तानां पर्य्यालोचनेन परिणामे च तेषामेव सद्वृत्तधारिणां शुभसम्पातसन्दर्शनेन जायते भूयसी समासक्तिः सद्वृत्तसमवलम्बने। तदवलम्बनाच्च क्रमेण पुण्योदयः सुमहानेव सम्पद्यते सद्यो येन समाकुलता ह्रस्वतां लभमाना सुदूरमेव हृदयद्वारात् अपसर्पति। दुष्टवृत्तान्यपि कानिचिदुपलभ्यन्ते तत्रैव। यथाच रावणः क्षपाचरराजो निखिलदुष्टकर्म्मानुबन्धी पापस्य सिन्धुरिव नानाविधदुर्विधानेन व्यस्तं चकार जगत्, विघ्नितं चकार मुनीनां धर्म्मैकव्रतानां जगन्मङ्गलसंसाधनैकहेतुभूतं यागादिविधिम्। यथा यथा धर्म्मविधयः क्षीणतां प्राप्य जगति महापापानि समुद्भासयेरन्, यथा च प्रशाम्यन्तः शुभसम्पाताः संसारं घोरतमसा परिव्याप्तं कुर्व्वीरन् तथा तथा स्वीयसम्प्रदायेन सम्पादयितुमविरतं यत्नवान् बभूव। तत्र तत्र प्रमाणं लभामहे विश्वामित्रतपोवने यज्ञविघ्नसम्पादनाय राक्षसानामुपस्थानमेव। तेन तेन च धर्म्मविघ्नकर्म्मणा पापसम्पादकेन परिणामे राक्षसकुलविनिपात एव फलमुपलभ्यते। प्रधानप्रयोजको हि तत्र रावणः सीतां स्वकुलविध्वंसहेतुं कृष्णसर्पीमिव हरन् काले सवंशमेव विध्वंसमवाप। अन्तरा चास्य वृत्तान्तस्य कियन्तः शुभकर्म्मानुरक्तानां शुभसम्पाताः, अशुभ-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कर्म्मानुरक्तानाञ्चाशुभसम्पाताः प्रादुरभवन्, ते ते सुतरां विषय-विस्तृतिपरिहारकाम्यया नोपसंहृताः, अधिगन्तव्याश्च ते पुराणेतिहासादिपर्य्यालोचकैः कौशलेन। एवमेव सत्कर्म्मणां शुभहेतुताप्रदर्शनेन लोकानां शुभेषु रतिमुत्पाद्य क्रमेण चित्तशुद्धिसम्पादनेन, अशुभकर्म्मणाञ्चाशुभहेतुताप्रदर्शनेन असत्कर्म्मणां द्विष्टसाधकतामावेद्य ततो विनिवृत्तिसमुत्पादनेन पापजननविरोधाच्च परिणामे तत्तद्वस्तुद्वारा परमपुरुषार्थं प्रत्यनुकूलता सम्भवति पुराणानाम्। महाभारतादौ च युधिष्ठिरादीनां पुण्यचरित्राणां चरितेन सद्वृत्तस्य शुभसाधकतां दुर्य्योधनादीनाञ्च पापचरितानां चरित्रवर्णनेन असद्वृत्तस्य परिणामे विनाशमात्रफलकतामुपदर्श्य च तथैव सम्पादितः कोऽपि सद्वृत्तासद्वृत्तयोर्ग्रहणपरीहारोन्मुखताप्रसारो नरसमाजेषु। आदौ हि सत्कर्म्मानुशीलनेन हृदयस्य पवित्रता समुदिता उपकरोति मुक्तिस्वरूपानुकूलप्रकृतिपुरुषभेदज्ञानादिकं वस्तु, तपःप्रभृतिभिरतिमहनीयैरुदयति तथाभूतं प्रकृष्टज्ञानमात्मनि; तच्च प्रकृष्टं तपः सम्भवति चित्तस्य प्रशस्तनिर्म्मलतोपस्थाने, सा च निर्म्मलता मानसिकी प्रभवति पुराणादिपर्य्यालोचनत इति प्रतिपन्नं परम्परया मोक्षोपयोगित्वं पुराणादीनां सद्वस्तुसमूहस्य उपादेयताया विनिवेदकानाम्। सन्ति हि पुराणेषु बहून्येव पुण्यप्रकर्षसम्पादकानि वस्तूनि, तद् यथा देवानां स्वरूपवर्णनं गुणप्रचारणञ्च बहुलं, तच्च कुत्रचिद् दुष्टचरितानां चरित्रापकर्ष-वर्णनमुखेन कुत्रचिन्मुख्यतया एव सुचरितानां चरित्रप्रकर्ष-वर्णनमुखेन। तथा तथा वर्णितचरित्रैरेव साधारणा व्यवहारविधौ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

शिक्षिता भवन्ति, मानसमलादिकञ्च दूरे परिवर्ज्य त्रिलोकदर्शिन इव जनैरभिराध्यन्ते, साधयन्ति च क्रमेण काञ्चिदपूर्व्वामात्मतृप्तिम्। दृप्ताः पूर्व्वतनाः शत्रवोऽपि महाबान्धवतां प्रतिगच्छन्ति विशेषतः पुण्यविधिसमुदयेन मोक्षपर्य्यन्तमुपलब्धवन्तः पुरुषस्य प्रकृष्टं कर्त्तव्यं निश्चिन्वन्ति इति स्थितमनल्पकथाभिः प्रकृतं पदार्थवस्तु।

५०। आत्मनिर्देशः (न्याये)

आत्मा हि क्षित्यादिनवद्रव्येष्वन्यतमः सुखदुःखादिकारणतावच्छेदकात्मत्वजातिमान्। तस्य च द्वैविध्यं जीवात्मपरमात्मतया भेदात्। तत्र हि जीवात्मा प्रतिव्यक्तिभिन्नो विभुत्वसम्पन्नो ज्ञानादिसकलगुणसमाश्रयः। तथाच आत्मनि ज्ञानसुखदुःखादिकं समवायेनोत्पद्यते। ननु प्रतिव्यक्ति भिन्नानां बहूनामात्मनामेव विभुत्वे किमिति सामञ्जस्यम्, एकेनैव सकलस्थानोपरोधात् अन्यस्य अणुयोग्यस्थानलाभोऽपि न स्यात्, दूरतस्तावदास्तां भुवनस्य सकलदेशसत्त्वम् इति चेत् मैवम्; अमूर्त्तवस्तुनः स्थानावरोधकत्वाभात् अमूर्त्तैरात्मभिः स्थानं नावरुध्यते, तेन च न परस्परं विभूनां परस्परावस्थानपदवीप्रतिरोध इति। ननु परमात्मनि जन्यज्ञानादीनामभावात् कथं ज्ञानादिकारणतावच्छेदकतया सिद्धो जातिविशेष आत्मत्वरूपः परमात्मनि स्यात्, येनात्मपदेन द्विविध एवात्मा उपसंगृह्यते इति चेत्, सुखदुःखा-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दिकानां परमात्मन्यभावेऽपि सुखदुःखादिकारणतावच्छेदकजातिविशेषस्यात्मत्वस्य तत्र सत्त्वे बाधकाभावः तत्सत्त्वेऽपि तत्र समवायेन ज्ञानसुखाद्यनुत्पादस्तु अदृष्टस्य जन्यमात्रं प्रति प्रयोजकतासत्त्वात् तस्य च परमात्मनि जन्यगुणाभाववति अभावात् नित्यस्य स्वरूपयोग्यस्य फलावश्यम्भाव इति नियमस्य सुतरामप्रयोजकत्वाच्च। केचित्तु न एकैव आत्मत्वजातिर्जीवात्मपरमात्मोभयवृत्तिः, किन्तु जीवात्मवृत्तिरेव जातिरात्मत्वं परमात्मवृत्तिश्च न जातिरात्मत्वरूपो धर्म्मभेदः, तेन न परमात्मनि ज्ञानसुखादीनामुत्पत्तिविरहः काममपि क्षतिमावहतीति। अथ यद्येवं तदा द्रव्यविभागे कथं आत्मत्वेनानुगतधर्मेण जीवात्मपरमात्मोभयस्य एकधा विभागस्तथात्वेनात्मत्वयोर्भेदात् एकधा तयोर्लाभसम्भवात्। तथाच द्रव्याणां दशविधत्वापत्तिः, नव द्रव्याणीति संख्यानिर्देशस्यासामञ्जस्यञ्च इति चेन्न; आत्मत्वेन तन्मते विभागमकृत्वा ज्ञानवत्त्वेन विभागो बोध्यः, तेन जन्याजन्योभयज्ञानसाधारणं ज्ञानत्वमादाय परमात्मनो जीवात्मनश्च ज्ञानवत्तया लाभात् एकधा विभाग उपयुज्यते। ननु कीदृशोऽयमात्मा कथं स्वीक्रियते इत्याकाङ्क्षायां विश्वनाथः—"आत्मेन्द्रियाद्यधिष्ठाता" इति। इन्द्रियाद्यधिष्ठाता इन्द्रियाणामादिपदेन शरीरस्य च परम्परया चैतन्यसम्पादकः। तथाच आत्मनश्चैतन्यगतस्य चैतन्येन जडात्मकमपीन्द्रियादिकं चैतन्ययुक्तमिव सत् कार्य्येषु प्रवर्त्तते, अन्यथा कारणगुणानां कार्य्यगुणारम्भकतया जडक्षित्यादिजन्यशरीरादीनामपि जडात्मकत्वात् सचेतनत्वासम्भवेन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कार्य्यक्षमत्वं न स्यादिति तथा कश्चिदेवं कल्पनीयो यस्य चैतन्यादिशक्त्या जडात्मकमपि शरीरेन्द्रियादिकं सचेतनं सत् कार्य्यविधौ प्रवर्त्तेत इति चैतन्यवान् आत्मा कल्प्यः। स च आत्मा इन्द्रियाणां ज्ञानकरणानां कञ्चित् कर्त्तारमन्तरेण क्रियासाधकत्वाभावात् कुठारादीनामिव कर्त्रपेक्षया अनुमेयः। अथ अहं जाने अहं सुखीत्यादि मानसप्रत्यक्षविषयत्वमेवात्मनि जायते तत्कथमनुमानरूपप्रमाणान्तरेण प्रकारान्तरमाश्रित्य आत्मनः सिद्धिः क्रियते इति चेन्न ; प्रथमतस्तु अहं जाने अहं सुखीत्यादिप्रतीत्या शरीरमेव विषयीक्रियते न आत्मा, अतः कथं आत्मनः प्रत्यक्षप्रमाणतः सिद्धिरित्येवं विप्रतिपत्तिसमुत्थानात् यदि आत्मसिद्धिः प्रसिद्धा न स्यादिति कृत्वा प्रमाणान्तरेण आत्मनः साधनम्। ननु शरीरस्य एव आत्मतया कर्त्तृत्वकल्पने का क्षतिः येन तत्कार्य्यकारित्वमपेक्ष्य वस्त्वन्तरस्यात्मत्वं कल्प्यते इति चेन्न ; अनुभवस्य संस्कारद्वारा स्मृतिं प्रति कारणतया पूर्वानुभवजातसंस्कारस्य आत्मवृत्तित्वं स्मृतेः पूर्व्वमपेक्षितं, शरीरस्य च शैशवकैशोरयौवनवार्द्धक्यादिभेदेन उपचयापचयाभ्याम् उत्पादो विनाशश्च दृष्ट इति बाल्ये जातस्य अनुभवस्य संस्कारो नूनं शरीरान्तरे वार्द्धक्यावस्थादौ न स्यात्, तत्कथं तेन वार्द्धक्ये बाल्यदृष्टस्य स्मरणमुपपद्येत ? भिन्नस्य कल्पने तु आत्मनो नित्यत्वेन बाल्ये वार्द्धक्ये च तस्यैव स्थितिः। मृतशरीरे व्यभिचारस्तु प्राणानां ज्ञानादिकं प्रति सहकारित्वादेव शक्यो निवर्त्तयितुमिति बोध्यम्। अथ शैशवशरीरादेरुत्पादविनाशशालित्वेऽपि यदि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

देहान्तरजातसंस्कारः शरीरान्तरे संस्कारमुत्पादयति स च पुनः शरीरान्तरे इत्येवं संस्काराणां कल्पने स्मृतेरनुपपत्तिनिरासः कर्त्तुं शक्यते, तथापि अनन्तसंस्कारकल्पनागौरवमपरिहार्य्यं स्यात्। यदि इन्द्रियाणामेव करणत्वं कर्त्तृत्वञ्च अभ्युपेयेते बाल्यवार्द्ध-क्यादिभेदेन इन्द्रियाणां नानात्वास्वीकाराच्च युज्यते पूर्वानुभव-जातसंस्कारसत्त्वेन वार्द्धक्यादावपि स्मृतिनिर्वाहस्तदा पूर्व्वदोष-निरासे सत्यपि इन्द्रियोपघाते स्मृतिसम्भावनावुग्रदासः, तदानीञ्च स्मृतिरनुभवसिद्धेति नेन्द्रियमात्मा तदानीमनुभवितुश्चक्षुरादि-कस्य इन्द्रियस्य अभावेन स्मरणानिर्वाहात्, न च कारणस्य अभावेऽपि शक्या स्मृतिरुपगन्तुम् अनुभवस्मरणयोः समानाधि-करणेन कार्य्यकारणभावात्।

अथ मन एवात्मास्तु, तेन इन्द्रियाणामुपघाते जातेऽपि मनस-स्तदानीमपि यथापूर्व्वमवस्थानात् स्मृत्यादिसमुत्पादसौलभ्येन क्षतिविरह इति चेन्न, ज्ञानादीनां तद्वृत्तीनां प्रत्यक्षस्य एकान्ततो-ऽसम्भवात् आश्रयमहत्त्वस्य प्रत्यक्षं प्रति प्रयोजकत्वेन अणुपरि-माणस्य मनसः ज्ञानाद्याश्रयतया कल्पितस्य महत्त्वव्यतिरेकेण तदाश्रितज्ञानादीनां कथं प्रत्यक्षं जायतामिति सर्व्वत्रैव ज्ञाने अप्रत्यक्षत्वं प्रसज्येत। मनसोऽणुत्वं यथा विश्वनाथेनैव प्रति-पादितं "अयौगपद्याज्ज्ञानानां तस्याणुत्वमिहेष्यते" इति। अत एव ज्ञानसामान्यस्यैव प्रत्यक्षापलापं सम्भाव्य न मनस आत्मत्व-मभिप्रेतमिति भावः। एवं क्रमेण सर्व्वमितरमतं निराकृत्य प्रसिद्धन्यायमतप्रसिद्धं जीवात्मानमेव विभुं ज्ञानाद्याश्रयात्मपद-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

व्यवहार्य्यमामनन्ति। तत्र चात्मनि गुणाश्चतुर्द्दश, तद् यथा "बुद्ध्यादिषट्कं संख्यादिपञ्चकं भावना तथा। धर्म्माधर्म्मौ गुणा एते आत्मनः स्युश्चतुर्द्दश॥" इति। अयमेव प्रभेदः साधारण-दर्शनवादिनामनेन सह; तथाच सांख्यदर्शनादौ "नित्यबुद्धशुद्ध-मुक्तस्वभाव आत्मा" इत्येवं व्याहरन्ति, तन्मते आत्मनो नास्ति क्रियादिकर्त्तृत्वं गुणवत्त्वादिकं; सर्व्वमेव कर्त्तृत्वादिकं प्रकृतिगतं, जडायाश्च प्रकृतेः पुरुषचैतन्यसंक्रमात् कार्य्यशक्तिः सम्मता। तथाच क्रियमाणानि कर्म्माणि आत्मनि जनैरध्यास्यन्ते, अत तु जीवात्मन एव वस्तुगत्या तद्गुणवत्त्वमुपकल्प्यते अत एव नातिरिक्तकल्पनदोषोऽपि जातः। सांख्यास्तु अनियतपदार्थवादिन इति न तेषां पदार्थलाघवे समासङ्गः। वैदान्तिकस्ततोऽपि उन्नतं पन्थानमधिरुरुक्षुरात्मनस्तथात्वकल्पने इति। केचित्तु साधारण-वस्त्वपेक्षया अतिरिक्तविशेषविरहे आत्मनामितरवस्तुतो न कोऽपि प्रभेदः स्यात्, परन्तु गर्हणमेवेति तस्य निर्लेपता एव सम्यगुपयुज्यते, अतो वेदान्तसांख्यमतसिद्ध एव वरं पुरुष इति प्राहुः। अयं हि जीवात्मा धर्म्माधर्म्माश्रयः, तेन अदृष्टस्य जन्यमात्रं प्रति कारणत्वात् सुखं प्रति धर्म्मस्य दुःखं प्रति चाधर्म्मस्य कारणत्वव्यवस्थितेः कार्य्यकारणयोरैकाधिकरण्यप्रयोज-नाच्च आत्मन्येव धर्म्माधर्म्माधिकरणे सुखदुःखोत्पादः सुघट इति। योग्यस्य च विशेषगुणस्य संसर्गेनात्मनः प्रत्यक्षत्वं, न तु स्वत एव, अयमात्मा इत्येवं प्रत्यक्षस्य स्वारसिकत्वादर्शनात्, अपि तु "अहं जाने" "अहं करोमि" इत्यादिप्रकारेण योग्यविशेषगुण-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ज्ञानकृत्यादिसम्बन्धादेव विशेष्यतया ज्ञानविषयत्वम् इति । विभोरप्यात्मनः कर्णकुहरावच्छिन्नाकाशलक्षणश्रोत्रस्य ज्ञानकारणत्वमिव देहावच्छिन्नस्य एव ज्ञानादिसमवायित्वम्, अतो न घटाद्यवच्छिन्नात्मनि ज्ञानादिसमुत्पादः, अवच्छेदकत्वसम्बन्धेन सुखादिकं प्रति तादात्म्येन शरीरस्य कारणतया वा आपत्तिभङ्गः । अत एव ज्ञानादिलक्षणा विशेषगुणा अव्याप्यवृत्तयः, स्वाधिकरणवृत्तिकिञ्चिद्देशावच्छिन्नाभावप्रतियोगित्वात् आत्मनः, सर्वं देशमभिव्याप्य कस्यापि ज्ञानसुखादेरभावादिति । अयं हि केवलं मनसा गृह्यते, न तु इन्द्रियान्तरेण, प्रतीयते चायमहमिति प्रत्ययादेव । अतएव विश्वनाथः "अहङ्कारस्याश्रयोऽयं मनोमात्रस्य गोचर" इति । मात्रपदं चक्षुरादीन्द्रियव्यावर्त्तकं, तेन मनोभिन्नेन्द्रियजन्यज्ञानानामविषयीभूतो मानसप्रत्यक्षविषयश्चेति वर्त्तुलार्थः । परमात्मनः स्वरूपन्तु नैवं, परं तस्य न जन्यगुणाश्रयत्वम् । तथाच "संख्यादयः पञ्च बुद्धिरिच्छा यत्नोऽपि चेश्वरे" इति । सर्व्व एव गुणास्तत्र परमात्मनि नित्याः, ज्ञानं नित्यं सर्व्वविषयकमेव । इच्छा सकलजन्यवस्तुकारणीभूता ; ईश्वरेच्छाया जन्यमात्रं प्रति कारणत्वस्य सकलनैयायिकैरदृष्टस्येव कल्पनात् । एतत्सर्व्वमेव जीवात्मपरमात्मनोर्भेदकमभ्युपगन्तव्यम्, विशेषास्त्वपरे निपुणदार्शनिकपथावलम्बिभिरतिनिपुणमन्वेषणीयमिति पदार्थचिन्तासंक्षेपः ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

५१। जातिविचारः। (न्याये)

जातिर्द्रव्यगुणकर्म्मवृत्तिर्धर्म्मभेदः। सा च परा अपरा चेति। स्वसमानाधिकरणजात्यपेक्षया अधिकदेशवृत्तिः परा, स्वसमानाधिकरणजात्यपेक्षया न्यूनदेशवृत्तिरपरा। तथाच द्रव्यत्वं द्रव्यत्वसमानाधिकरणघटत्वादिजात्यपेक्षया अधिके देशे पटादावपि वर्त्तते इति द्रव्यत्वं परा जातिः; स्वसमानाधिकरणद्रव्यत्वापेक्षया च घटत्वादीनां न्यूनदेशवृत्तित्वाद् घटत्वादिजातिरपरा। निष्कर्षस्तु स्वसामानाधिकरण्यस्वाभाववद्वृत्तित्वैतदुभयसम्बन्धेन स्वविशिष्टजातित्वं स्वापेक्षया परात्वं, स्वसामानाधिकरण्यस्वसमानाधिकरणभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वैतदुभयसम्बन्धेन स्वविशिष्टजातित्वं स्वापेक्षया अपरात्वम्। अन्या च सत्ताख्या कापि जातिर्द्रव्यगुणकर्मैतत्त्रितयेष्वेव वर्त्तते, तस्याः केवलं परात्वं; तदपेक्षया स्वल्पदेशवृत्तित्वेन द्रव्यत्वादीनामपि अपरात्वम्। अतो द्रव्यत्वादिकाः परा अपराश्च, सत्ता परा घटत्वादिकाश्च अपरैव इति।

ननु किमिदं जातिलक्षणं? न तावद् द्रव्यगुणकर्मैतित्रितयवृत्तित्वं तल्लक्षणस्य केवलं सत्तायामेव संक्रमात् द्रव्यत्वगुणत्वादीनां त्रितयवृत्तित्वविरहेण जातित्वविरहापत्तेः। यदि द्रव्यगुणकर्म्मान्यतमवृत्तित्वं तदापि द्रव्यगुणकर्म्मान्यतमवृत्त्यन्यतमत्वादीनां जातित्वप्रसक्तौ महानेव दोषः प्रसज्येत। अथ वृत्तित्वं समवायेन यदि विवक्ष्यते, तदा अन्यतमत्वादिकमादाय दोषासम्भवेऽपि द्रव्यगुणकर्म्मान्यतमद्रव्यवृत्तिसंयोगादीनामपि समवायेन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वृत्तेर्जातिलक्षणातिव्याप्तिरिति नित्यत्वे सतीति विशेषणं तद्वारक-मुपादेयम्। तथाच संयोगादीनां द्रव्ये समवायेन वृत्तावपि नित्यत्वाभावान्न जातिलक्षणातिव्याप्तिः। तथाच द्रव्यत्वादीनां नित्यत्वाद द्रव्ये समवायेन वर्त्तमानत्वाच्च जातिलक्षणसमन्वयः। गगनपरिमाणस्यापि नित्यत्वात् समवायेन वर्त्तमानत्वाच्च जाति-त्वापत्तिनिराकरणाय समवायेन अनेकवृत्तित्वं वाच्यम्। तथाच गगनपरिमाणादीनामेकव्यक्तिमात्रवृत्तितया नातिव्याप्तिः, एतेन नित्यत्वे सति अनेकसमवेतत्वं जातित्वमिति निष्कर्षः। अथ किमिदं नित्यत्वं नाम? न तावद् ध्वंसाप्रतियोगित्वं, ध्वंसस्य ध्वंसाभावेन ध्वंसाप्रतियोगित्वात्तस्यापि नित्यत्वापत्तेः। नापि प्रागभावाप्रतियोगित्वं ध्वंसस्य प्रागभावप्रतियोगित्वात् तदभावा-सत्त्वेन नित्यत्वापत्तिनिरासादिति वाच्यं, प्रागभावे नित्यत्वप्रसक्तेः प्रागभावस्य प्रागभावाप्रतियोगित्वादिति चेत्, प्रागभावाप्रति-योगित्वे सति ध्वंसाप्रतियोगित्वं नित्यत्वं वाच्यं, तेन ध्वंसस्य प्रागभावप्रतियोगित्वात् प्रागभावस्य च ध्वंसप्रतियोगित्वान्न तयोर्नित्यत्वलक्षणातिव्याप्तिरिति। अथान्यत्र यथा तथास्तु नित्यत्वं, जातिलक्षणान्तःपातिनित्यत्वस्य तादृशगुरुशरीरस्वीकारो निष्प्रयोजनक एव ध्वंसाप्रतियोगित्वमात्रस्य प्रागभावाप्रतियोगित्व-मात्रस्य वा तथात्वस्वीकारेणैवोपपत्तेः, ध्वंसप्रागभावयोः कस्यापि समवायेन वृत्तित्वविरहादेव जातिलक्षणातिप्रसक्तिशङ्काया अनव-तारादिति चेत्, विनिगमनाविरहेणोभययैव निर्वक्तुं शक्यतया जातेर्विविधलक्षणापातेन महागौरवसम्भवादेव भागद्वयस्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जातिलक्षणे प्रवेश इति प्राञ्चः। एतत् सर्व्वमेव समालोच्य व्यक्त्यभेदादीनां जातिबाधकत्वमाहुः प्राचीनाः। यथा—व्यक्ते-रभेदस्तुल्यत्वं सङ्करोऽथानवस्थितिः। रूपहानिरसम्बन्धो जाति-बाधकसंग्रहः"। एकव्यक्तिवृत्तित्वादाकाशपरिमाणादिकं न जातिः, तुल्यव्यक्तिकत्वात् घटत्वं कलसत्वम् इत्युभयस्य न जाति-त्वम्, एकस्य जातित्वस्वीकारेणैवोपपत्तेः। साङ्कर्य्याद् भूतत्वं मूर्त्तत्वञ्च न जातिः साङ्कर्य्यञ्च स्वसामानाधिकरण्य-स्वाभाववद्-वृत्तित्व-स्वसमानाधिकरणभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वै तत्त्रियसम्ब-न्धेन धर्म्मविशिष्टत्वम्। तथाच क्षित्यन्तर्भाविन भूतत्वमूर्त्तत्वयोः सामानाधिकरण्यं, भूतत्वाभाववति मनसि मूर्तत्वस्य मूर्तत्वाभाव-वति च गगने भूतत्वस्य सत्त्वात् स्वाभाववद्वृतित्वं स्वसमाना-धिकरणभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वञ्च इति। तादृशत्रितयसम्बन्धेन भूतत्वविशिष्टं मूर्तत्वं मूर्तत्वविशिष्टञ्च भूतत्वमिति साङ्कर्येण कस्यापि न जातित्वापातः। विरुद्धपृथिवीत्वजलत्वादौ साङ्कर्य्य-वारणाय साङ्कर्य्यघटकवैशिष्ट्ये स्वसामानाधिकरण्यप्रवेशः, अन्यथा जलत्वस्य पृथिवीत्वाभाववद्वृतित्वात् पृथिवीत्वसमानाधिकरण-भेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाच्च पृथिवीत्वस्यापि जलत्वाभाववद्-वृत्तित्वात् जलत्वसमानाधिकरणभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाच्च धर्म्मविशिष्टत्वाज्जातित्वं न स्यादिति। स्वसामानाधिकरण्यप्रवेशे च विरुद्धयोर्जात्योः सामानाधिकरण्यविरहेण न धर्म्मविशिष्टत्व-मिति। पृथिवीत्वाधिकरणपटादिवृत्तिभेदप्रतियोगितावच्छेदक-त्वात् पृथिवीत्वाधिकरणघटादिवृतित्वाच्च घटत्वादेः पृथिवीत्व-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रूपधर्म्मवैशिष्ट्याद् घटत्वादेः साङ्कर्य्येण जातित्वबाधवारणाय स्वाभाववद्वृत्तित्वदलं, तेन घटत्वादेः पृथिवीत्वाभाववद्वृत्तित्व-विरहेण न तथात्वम् । घटत्वाद्यभाववति पटादौ घटत्वाद्यधि-करणे घटादौ च पृथिवीत्वादेर्वृत्तेर्जातित्वबाधवारणाय स्वसमा-नाधिकरणभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वदलम् । तथाच घटत्व-समानाधिकरणभेदप्रतियोगितावच्छेदकत्वाभावात् पृथिवीत्वस्य धर्म्मविशिष्टत्वाभावान्न साङ्कर्य्येण जातित्वबाधः । सकलजातिगतं जातित्वं न जातिः अनवस्थादोषापातात्, अनवस्था चैकत्र विरामे विनिगमनाभावः । तथाच यदि जातित्वं जातिः तदा तद्गतं जातित्वत्वमपि जातिः, तस्य जातित्वे तद्गतमपि जातित्वत्वत्व-मित्येवं क्रमेण तथाभूतधर्म्ममात्राणामेव जातित्वे अनन्ता एव जातिकल्पना स्यादिति भावः । स्वतो व्यावृत्तस्वरूपत्वहानिप्रसङ्गाद् विशेषत्वं न जातिः, तथा सति तस्यैव जातिस्वरूपस्य विशेषत्वस्य वस्त्वन्तरेभ्यः स्वव्यावर्त्तकतया स्वतोव्यावृत्तत्वं तेषां न स्यादिति स्वरूपानुरोध एव तस्य जातित्वे बाधक इति । समवायस्य च समवायसम्बन्धेन वृत्तित्वविरहान्न जातित्वम् । यदि च सम-वायस्य स्वरूपसम्बन्धेन वृत्तित्वं स्वरूपश्च स्वस्वरूपतया समवाय एवेति तथापि तस्य वृत्तितावच्छेदकसंसर्गतावच्छेदकं रूपं न समवायत्वम् । अपि तु स्वरूपत्वमेव, प्रकृते च समवायत्वावच्छिन्न-संसर्गताकवृत्तिता प्रविष्टेति पदार्थचिन्तासंक्षेपः ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

५२। बहुदर्शिताया ज्ञानविशेषं प्रत्युपयोगित्वम्।

निपुणास्तावदस्माकं प्राचीननिबन्धकारा नवीनाश्च शास्त्रप्रणेतारः। ते हि स्वीयनिपुणबुद्धिप्रभावेण यद् यद्वस्तु जगति सारवद् विवेचयन्ति, तत्तदेव वस्तु जगतामुपकारकविधया कल्पयन्ति, निबध्नन्तश्च संसारव्यवहारशिक्षादिविधौ अनुकूलमात्मानं प्रत्याययन्ति। परिभूयन्ते चाज्ञानतमोराशयो ज्ञानविकाशकवस्तुपर्य्यायपर्य्यालोचनेन। अपिच एकत्र शास्त्रे न सर्वे ज्ञातव्यविषयास्तिष्ठन्ति, नाप्येकस्मिन् जने सर्व्वविषयविज्ञता वर्तते, अत एव बहुविषयपर्य्यालोचनमेव नानाविधसूक्ष्मतत्त्वशिक्षाविधावुपयुज्यते। तथाच नीतितत्त्वं धर्म्मतत्त्वं व्यवहारतत्त्वमित्यादिरूपेण तत्त्वानि बहुविधानि; तेषामेवालोचनेन तानि विज्ञाय अर्थसाधनविधौ जनाः समर्थाः भवन्ति, अधिगच्छन्ति च महान्तमुपकारं सर्व्वत्र। सर्व्वत्रैव धर्म्मग्रन्थे धर्म्मप्रकारो विभिन्नः, सर्व्वत्र च नीतितत्त्वादौ नानाविधनीतिप्रकारविन्यासः, अत एकस्य पर्य्यालोचनेन अपरविषयसमधिगमो नैव दृष्टो नापि च सम्भाव्यः, सम्भाव्यते च सर्वेषां तेषां तेषामालोचनेनैव। अनधिगतबहुप्रकारनियमाश्च नालं भवन्ति उत्कर्षापकर्षौ विचार्य्य उत्कृष्टमाधातुं, गृहीतञ्चापकृष्टं मतमुत्स्रष्टुम्। दृष्टचरञ्चैतद् विजिगीषुजनानां विचारप्रकारेण प्रतिपक्षभावमवलम्बमानानां तत्त्वनिर्द्धारणे। अत एव शास्त्राणि परिज्ञातव्यमतमुपन्यस्य ग्रहीतव्यमतोपादानेन तस्य चोत्कर्षप्रति-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पादनेन निर्द्धारणं, सर्वशास्त्रेषु दर्शने नास्तिकमतस्य नानाविध-युक्तितर्कोपन्यासेन खण्डनं, नीत्युपदेशादौ दुर्नयस्य अपकारसाधकत्वं सुस्पष्टमुपवर्णयन्ति। आस्तिकमतस्योपादेयत्वं सुनीतेश्च मङ्गलसम्पादकतया ग्राह्यताप्रकर्षः सम्यगेव तेषूपपादित इति प्रकारव्यवस्थाबहुलवस्तुपर्य्यालोचनेन बहुलविषये पारदर्शित्व-प्रमाणं दृष्टचरम्। यथा—प्रथमतो बाल्ये बालो न किञ्चिदपि जानाति, अज्ञातविषयश्च विषस्य जीवनापहारकतामसमीक्ष्य विषभोजनमपि कर्त्तुं प्रवर्त्तते, हिंस्रस्वभावानां शार्दूलादीनां दंशनमात्रेणैव जीवननाशक्षमाणां भुजङ्गमादीनां च घातकता-मविविच्यैव तेषां शरीरमाक्रमितुं स्वतः प्रवृत्तिमुपगच्छति, क्रमेण च गुरुजनादीनां समीपतो विषस्यापकारकतां शार्दूलभुजङ्गादीनाञ्च सहसैव प्राणहारकतां विजानन् तत्तद्-विषयाद्विराममेव सुतरामिष्टसाधकमवगच्छति। परांश्च तथैव विज्ञाप्य हितमनुकूलयति। ततो वयसि प्रवृद्धे वृद्धजनेभ्यः शिक्षा-मधिगत्य कति नाम नूतनान् विषयान् सञ्चारयति हृदयेन। केन सह कीदृशं व्यवहर्त्तव्यं, कस्य कथं माननीयः, कस्योपरि कीदृशेन प्रणयिना शात्रविणा वा वर्त्तितव्यं, तत् सर्व्वं नीतिशिक्षणादि-साहाय्येनैव जनो वेत्ति; विदांकुर्वंश्च व्यवहारजातं सभादिषु नोपहस्यते, प्रशस्यते च विनयादिविविधगुणानुशीलनेनातिमात्रम्। प्रवर्द्धते गुणगरिमा, विलुप्यते च हृदयस्य स्वभावतो जातः सुतरां कोऽपि विमुग्धभावप्रवाहः। एवं क्रमेण सर्वेषामेव विषयाणामनुशीलनबाहुल्येन अधिगतविषयाणाञ्चापरेभ्यः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रयोगदर्शनेन तत्तद्विषयेषु यथा नैपुण्यमुपलभ्यते न तथा शास्त्रविषयाणामधिगमेन पर्य्यालोचनाद्विबाहुल्येनापि वा। अत एव अध्ययनानन्तरमपि दृश्यते गुरुगृहे अध्यापनादिप्रकार-शिक्षासमुद्देशेन छात्राणामधिकवर्षवासः। फलति च तत एव शिष्याणामभिप्रेतं, येन ते अध्यापकदशायां शिष्याणामध्यापनविधौ प्रकर्षविशेषमधिगत्य जगति कामपि कीर्त्तिकलामुपार्जयन्ति, वर्जयन्ति च अशिक्षितावस्थायां परेभ्यः प्राप्ता अवज्ञाः; विस्मयेन सम्मान्यन्ते च भूयो भूयो विज्ञाः कीर्त्तिवादेन। प्रशस्यन्ते हि बहुकालं बहुलव्यवहारपर्य्यालोचनकुशला व्यवहारजीवाः परपक्षनिर्जयेन स्वपक्षसमुन्नमनेन च जगति बुद्धिप्रशस्तिं लभमानाः; अर्थलाभेन च स्वजनादीन् परितोषयन्तो भूयसा काम्यमर्थं समुपगच्छन्ति। परिभूयन्ते च व्यवहारबाहुल्यमनवलोकमाना नानाविधसूक्ष्मतत्त्वानुशीलनपराङ्मुखा मुखवाचां प्रकर्षं बुद्धिप्रकर्षञ्च भूयसा नोपलभमानाः परपक्षादिनिर्जयं स्वपक्षसमुद्धारञ्चा-शक्यमेव प्रत्याययन्तः सतां ग्रहणीयतामेव परिवर्जयन्ति। अत एव दृश्यते यत्, सर्वेष्वेव विषयेषु बहुदर्शिता गुणान्तरमापादयति, बहुदर्शिताव्यतिरेकेण शिक्षणस्य असम्पूर्णता व्यवतिष्ठते। शिक्षणस्य सीमा नाधिकं पदं स्पृशन्ति, सीमाबद्धमेव वस्तु सन्तिष्ठमानं न जगतां नूतनं किमपि वस्तु सम्पादयितुं शक्तिमुपयाति। शास्त्रं वा युक्तिर्वा तर्को वा सकलान्येव वस्तूनि बहुदर्शितया वर्द्धमाना-न्युपयुज्यन्ते जगदुपकाराय इति वस्तुसंक्षेपः।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

५३। "सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः।"

जगदिदं नानाविधानामेव वस्तूनामधिकरणम्। तेषु च वस्तुषु कानिचिद्विरुद्धानि कानिचिच्च समानाधिकरणानि। तथाच न दृश्येते एकस्मिन्नेवाधिकरणे आत्मरूपे हिंस्रता अहिंसापरायणता च दया कठोरता च। अस्ति हि सलिले शैत्यं येन तप्तशरीरं काले सलिलसम्पर्कं लभमानं शान्तिमुपगच्छति, शरीरविशेषाणाञ्च महान्तमपकारं सम्पाद्य रोगादिविशेषमनुकूलयति। अस्ति च हुताशने तापदायित्वं, येन तापदानेन वृष्ट्यादिशीतलं शरीरं हुताशसंसर्गेण कञ्चिदुत्तापमुपगत्य निर्वापयति देहिनं, शैत्यजन्य-रोगादयश्च विनिवर्त्तन्ते कुतचिदञ्जसा। न दृष्टं जले तापप्रदत्वं, नापि हुताशने शैत्यं—येन विरुद्धवस्तुनोरेकत्र समुपगमेन जागतिको नियमो विपर्य्यासमापद्यते सद्यः सन्ततप्रचलितः। दृष्टं सांख्यानां पुरुषबाहुल्यस्वीकारः, प्रकृतितः प्रवर्त्तितानां वस्तूना-ममिथ्यात्वं प्रकृतेश्च पुरुषभिन्नाया ध्वंसप्रागभावराहित्यं, तत्रैव मते यदि पुरुषाणामेकत्वं प्रकृतिरूपायाश्च मायायाः—"नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका" इत्यादिस्वरूपता स्वीकृता स्यात्, ब्रह्मातिरिक्तानां पदार्थमात्राणामेवासत्त्वं प्रतिपादितं स्यात्, तदैव विरुद्धवस्तुस्वीकारेण नियमभङ्ग उपपद्यते, तच्च नास्त्येव। अत एव सांख्यमतनिरासेन वेदान्तिकमतस्थापनं वेदान्तिकमत-निराकरणेन च सांख्यमतसंस्थापनमित्येवंरूपेण दृश्यते मतभेद-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समुपपादनम्। प्रत्येकमेव शास्त्रविधीनां बहुषु विषयेषु मतभेदे प्राचीनसंवादो यथा "नासौ मुनिर्यस्य मतं न भिन्नं।" विरुद्ध-वस्तूनामेकत्रासम्भाव्यतामेव भित्तिरूपेणोपादाय दर्शनादिषु प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावादिकं शास्त्रकारा निर्द्धारयन्ति। तथाच घटेन घटाभावो विरुध्यते अत एव घटज्ञानं घटाभावज्ञानं प्रति प्रतिबन्धकम् अभावज्ञानञ्च प्रतियोगिज्ञानं प्रति। जीवनिवहाना-मपि दृष्टः परस्परं केषाञ्चिद् विरोधः स्वाभाविकः, तद्यथा भुजङ्ग-नकुलानां सिंहहरिणानामित्यादि। भुजङ्गः स्वभावत एव नकुलस्य हननीयः, जात्यैव वैरमुपगतो नकुलो नैव सहते भुजङ्गसमागमं, कदाचिद्दैवात् संसृष्टश्च कुत्रापि नकुलो नूनं छिनत्ति भुजङ्गदेहं, तेन च शरीरसमुच्छेदेन परिजहाति वराको भुजङ्गमो जीवनम्। सिंहोऽपि वैरी हरिणकानां, तत एव हरिणाः सिंहसमीपमुपसर्पन्तो जीवनावसानमुत्प्रेक्षन्ते, सिंहोऽपि भक्ष्यस्य हरिणस्य स्वतो वैरं नोपेक्षमाणः स्वकबलमेव प्रापय्य हरिणस्य कालसदनगमनमनुकूलयति। यद्यपि दृष्टं विरुद्धानामपि वस्तूनां भुजङ्गनकुलादीनामेकत्र वर्त्तनं तपोवनाभोगादौ, तच्च तपोवनस्यै-वालौकिकविषयशालित्वमुपदिशति। शक्यं सर्व्वमेव तत्त्वं विपरिवर्त्तयितुं महाजनानुशीलितस्वरूपैः प्रभावैः सुनिर्म्मलानां तपसां, येन संसारविधिं सकलमेव समाच्छिद्य सर्व्वसाधुजनकाम्यं पुरुषार्थमपि सम्यगनुकूलयति परम्परया प्रकृतिपुरुषभेदज्ञानं ब्रह्मज्ञानादिकं वा समुपपाद्य। अत एव तपःप्रभावादिभिरुक्त-विरोधस्य कथञ्चित् खण्डनदर्शनेऽपि स्वभावतो नैव तथाभूत-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विरोधपरिहारः। दृश्यते औद्धत्यमनौद्धत्यञ्च एकत्र नैव कुत्रचिदात्मनि, परस्परं विरोधसत्त्वात्। एतस्मादेव च कारणादालोकतिमिरयोरैकाधिकरण्यविरहः। तथाहि तिमिरं नातिरिक्तपदार्थः, अपितु आवश्यकतेजोऽभावस्तमः, तेन च तेजःस्वरूपस्य आलोकस्य विरोधः सिद्धः, तत एवापसरति आलोकसमवधानेन तमोराशिः, दिनोदयेन नैशान्धकारजालमानन्दसमुद्रेकेण दुःखधारा। ईदृश-विरोधव्याघातमाशङ्कमानैरेव सूक्तं महाकविपदलाञ्छनलाञ्छितैः कैश्चित्—"सामानाधिकरण्यं हि तेजस्तिमिरयोः कुतः" इत्यादि।

५४। अथ हेत्वाभासास्तत्त्वनिर्णयविजय-प्रयोजकत्वान्निरूप्यन्ते। (न्याये)

पूर्वं ग्रन्थकृता अवयवान्तग्रन्थेन सद्धेतुनिरूपणं कृतम्। इदानीं तत्त्वनिर्णयविजयरूपैककार्य्यानुकूलत्वसङ्गत्या दुष्टहेतुनिरूपणं दोषनिरूपणञ्च प्रतिजानीते अथेत्यादिना सामान्यनिरुक्तौ। निरूपणमात्रेष्वेव "नासङ्गतं प्रयुञ्जीत" "असङ्गतं प्रयुञ्जानः प्रयोक्ता अवधीरितवचन उन्मत्तवदुपहस्यते" इत्यादि श्रवणेन सङ्गतिसत्त्वमपेक्षितम्। सङ्गतिश्च षोढा "सप्रसङ्ग उपोद्घातो हेतुतावसरस्तथा। निर्व्वाहकैककार्य्यैक्ये षोढा सङ्गतिरिष्यते" इति। अत्रैककार्य्यत्वं तदन्तर्गतं सङ्गतिरिति। सम्भवति चात्र प्रसङ्गाभिधानापि सङ्गतिः। सामान्यसङ्गतिलक्षणं यथा—अनन्तराभिधानप्रयोजकजिज्ञासाजनकज्ञानविषयत्वम्। तथाच प्रकृते

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अनन्तराभिधानं हेत्वाभासविषयकज्ञानानुकूलव्यापारात्मकहेत्वाभासनिरूपणमेव, तत्प्रयोजिका जिज्ञासा च के हेत्वाभासा इति हेत्वाभासत्वावान्तरधर्मप्रकारकज्ञानं जायतामित्यर्थिका; तज्जनकज्ञानञ्च हेत्वाभासत्वज्ञानं तद्धर्मावान्तरधर्मप्रकारकज्ञानगोचरेच्छां प्रति तद्धर्मज्ञानस्य कारणत्वस्याङ्गीकारात्। एतदस्वीकर्त्तृमते तु इष्टसाधनताज्ञानविधया तज्ज्ञानस्य जिज्ञासां प्रति कारणत्वमभ्युपेयम्। इष्टसाधनताज्ञानञ्च हेत्वाभासत्वज्ञानं मे इष्टसाधनमित्याकारकम्। तथाच इष्टसाधनताज्ञानविशेष्यीभूतज्ञानांशे प्रकारतया भासमानस्य हेत्वाभासत्वस्य तादृशजिज्ञासाकारणीभूतेष्टसाधनताज्ञानविषयत्वमप्यक्षतं, तदेव च हेत्वाभासत्वं सङ्गतिः। ननु आनन्तर्य्यं हि स्वध्वंसाधिकरणसमयध्वंसानधिकरणत्वे सति स्वध्वंसाधिकरणत्वं, तच्च प्रकृते असम्भवि, शिष्यजिज्ञासादिना व्यवधानात् इति चेत्, स्वध्वंसाधिकरणसमयध्वंसानधिकरणत्वे सतीत्यत्र स्वध्वंसाधिकरणनिरूपणध्वंसानधिकरणत्वे सतीत्यस्य वक्तव्यत्वात्। तथाच शिष्यजिज्ञासादीनां निरूपणत्वाभावान्न स्वध्वंसाधिकरणनिरूपणध्वंसाधिकरणत्वं प्रकृतनिरूपणस्य। ननु तथापि न हेत्वाभासनिरूपणे व्याप्तिविशिष्टहेतुनिरूपणानन्तर्य्यं व्याप्तिविशिष्टहेतुनिरूपणानन्तरमुपाधिं निरूप्य हेत्वाभासनिरूपणादिति कथं सामान्यसङ्गतिलक्षणसद्भावः, तदभावे च कथमिवासङ्गतवस्तुप्रतिपादनाधीनोन्मत्ततापातपरीहारो ग्रन्थकर्त्तुरिति चेन् मैवं, शिष्टा हि ते ग्रन्थकर्त्तारो बहुधा पर्य्यालोच्य निबध्नन्ति शास्त्रोपदेशान्। तथाच अनौपाधिकत्वस्य केषाञ्चिद्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

व्याप्तित्वमति व्याप्तिनिरूपणाङ्गतया एव उपाधिनिरूपणस्यापि कर्त्तव्यत्वेन व्याप्तिनिरूपणमेव उपाधिनिरूपणपर्य्यन्तमवधार्य्य हेत्वाभासनिरूपणे आनन्तर्य्यमत्रतमुपस्थापितमिति। सामान्य-लक्षणस्य विशेषलक्षणसहकारेण कार्य्योपधायकतया विशेषलक्षण-सत्त्वमपि दर्शयति—तत्त्वेत्यादिना। तथाच शिष्या हि द्विविधाः—तत्त्वबुभुत्सवो विजिगीषवश्च "तत्त्वं ब्रह्मणि याथार्थ्ये" इति कोषात् तत्त्वं याथार्थ्यं, तस्य निर्णयो निश्चयः प्रमितकोटिनिश्चय इत्यर्थः। केचित् प्रमितं कोटिं विज्ञातुमिच्छन्तो विशेषज्ञानजनकं शास्त्र-विधिमपेक्षन्ते, केचिच्च पराहङ्कारखण्डनादिना आत्मप्राधान्य-संस्थापनादिकामनया च शास्त्रे प्रवृत्तिमुपयान्ति, तेषां सर्वेषामेव शास्त्रेणानेन प्रयोजनमिति प्रयोजनमुपदर्श्य एतच्छास्त्रपाठप्रवृत्ता-वुपयोगिता दर्शिता। तत्र तत्त्वनिर्णये सद्धेतोरिव हेत्वाभासस्या-प्युपयोग इति एककार्य्यप्रयोजकत्वमुभयोः। तथाहि पर्व्वतो वह्नि-मान् इदं ज्ञानं प्रमा व्याप्तिपक्षधर्मताविशिष्टहेतुज्ञानजन्यत्वात्, अत्र पर्वतो वह्निमानिति ज्ञानधर्मिकप्रमात्वज्ञानमेव तत्त्वनिर्णयः, स च निर्णयः प्रकृते अनुमित्यात्मकः अनुमितिं प्रति च पक्ष-धर्मिकहेतुज्ञानस्य कारणतया कारणतावच्छेदकानाञ्च जनक-जनकतावच्छेदकसाधारणप्रयोजकत्वसत्त्वेन विषयतया परम्परा-परिश्रान्तकारणतावच्छेदकीभूतव्याप्ति-पक्षधर्म्मताविशिष्टहेतोरपि प्रमात्वग्रहं प्रति प्रयोजकत्वमिति। अथ कथं व्याप्तिपक्षधर्म्मता-विशिष्टहेतुज्ञानजन्यत्वेन हेतुना ज्ञाने प्रमात्वनिश्चयः, तादृशस्य हेतोः "उत्पत्तिकालीनघटो गन्धवान् पृथिवीत्वादित्याद्यसङ्कीर्ण-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

बाधस्थलान्तर्भावेन व्यभिचारादिति चेदत्र गुरवः सार्व्वभौमपादाः—प्रमात्वं न स्वरूपसम्बन्धेन साध्यम् अपि तु स्वाश्रयत्वस्वाश्रयपरामर्शजन्यत्वैतदन्यतरसम्बन्धेन, तथाच यत्र व्याप्तिपक्षधर्म्मताविशिष्टहेतुज्ञानजन्या अनुमितिः प्रमा तत्र स्वाश्रयत्वसम्बन्धेन, यत्र च व्याप्तिपक्षधर्मताविशिष्टहेतुज्ञानजन्या अनुमितिरप्रमा तत्र स्वाश्रयपरामर्शजन्यत्वसम्बन्धेन प्रमात्वं साधयम्। अतः प्रकृते पक्षतावच्छेदकधर्म्मावच्छिन्ने साध्यवत्त्वविरहात् तदवगाहित्वेन ज्ञानस्य अप्रमात्वेऽपि परामर्शस्य प्रमात्वेन तज्जन्यत्वाच्चास्य न व्यभिचार इति प्राहुः। दुष्टहेतोश्च तत्त्वनिर्णयं प्रत्युपयोगित्वं यथा इयमनुमितिः प्रमा दुष्टहेतुग्रहजन्यानुमितिविरोधित्वादिति प्रमात्वनिर्णयहेतुभूततथाविधविरोधत्वज्ञानांशे परम्परया विशेषणीभूतदुष्टहेतोः कारणतावच्छेदकत्वरूपं प्रयोजकत्वम्। एवंप्रकारेण सद्धेतौ दुष्टहेतौ च तत्त्वनिर्णयरूपैककार्य्यप्रयोजकत्वसत्त्वेनं सद्धेतुनिरूपिता सङ्गतिर्दुष्टहेतावपीति प्रतिपत्तव्यम्। सद्धेतौ न सद्धेतुनिरूपिता सङ्गतिः, विषयसिद्धेरिच्छां प्रति प्रतिबन्धकतया सामान्यसङ्गतिलक्षणघटकजिज्ञासाया एव अनुदयात् आदावेव तन्निरूपणे शिष्टानां तद्विषयकज्ञानोदयादिति, सामान्यलक्षणसमवहितस्यैव विशेषलक्षणस्य कार्य्यं प्रत्युपयोगात्। अथवा स्वप्रयोज्यकार्य्यप्रयोजकत्वरूपविशेषलक्षणे प्रयोजकांशे स्वभिन्नत्वविशेषणमुपादाय दोषो वार्य्यः, स्थलान्तरानुरोधेनापि ईदृशस्य निवेशस्य कर्त्तव्यत्वात्। ननु पूर्वोक्तरूपेण दुष्टहेतुनिरूपणमेव प्रकृतं सङ्गतञ्च स्यात् न दोषनिरूपणमिति कथं प्रथमतो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

दोषं निरूप्य तद्वत्त्वेन दुष्टहेतुनिरूपणमिति चेन्न, दोषप्रकारेण एव दुष्टहेतूनां तत्त्वनिर्णयकारणतावच्छेदकतया दोषाणामपि परम्परया प्रमात्वनिर्णयकारणतावच्छेदकत्वरूपप्रयोजकत्वं प्राप्तमिति निष्प्रत्यूहम्। विजयप्रयोजकत्वञ्च वादिज्ञाने अप्रामाण्यप्रतिपादनेन, इयमनुमितिरप्रमा अदुष्टहेतुग्रहजन्यानुमितिविरोधित्वादिति सद्धेतोः परम्परया वादिजनानुमितौ अप्रामाण्यग्रहजनकतावच्छेदकत्वरूपप्रयोजकत्वं दुष्टहेतोरपि इयमनुमितिरप्रमा दुष्टहेतुग्रहजन्यत्वात्। यत्र केवलं हेत्वंशे दोषस्तत्रानुमितिः प्रमात्वेन व्यभिचारापातात् अप्रमात्वम् अपि पूर्वोक्तान्यतरसम्बन्धेन साध्यम्। एवं हि यथा सद्धेतौ तत्त्वनिर्णयप्रयोजकत्वं विजयप्रयोजकत्वञ्च तथैव असद्धेतावपीति सङ्गतिसमन्वयः। अत्र पञ्चम्यर्थो ज्ञानजन्यजिज्ञासाधीनत्वम्, अथशब्दार्थं आनन्तर्यं तेनैव सङ्गतिलक्षणान्तर्गतानन्तर्य्यलाभाद् व्याप्तिनिरूपणानन्तरतत्त्वनिर्णयविजयप्रयोजकत्वज्ञानजन्यजिज्ञासाधीनत्वं निरूपणे अन्वेति। निरूप्यन्ते इति भविष्यत्सामीप्ये वर्त्तमानाविभक्तिविधानाद् निरूपणे उत्तरकालीनत्वलाभः, मयेति ऊह्येन कर्त्तृपदेन निरूपणे स्वकर्त्तृकत्वं, तथाचायं बोधः—व्याप्तिनिरूपणानन्तरतत्वनिर्णयविजयप्रयोजकत्वज्ञान-जन्यजिज्ञासाधीनमन्निष्ठकृति-प्रयोज्यशिष्यसमवेतबोधानुकूलव्यापारविषयतावन्तो हेत्वाभासा इति। उक्तेन च वाक्येन हेत्वाभासनिरूपणमुत्तरकालकर्त्तव्यमिति उत्तरकालकर्त्तव्यत्वप्रकारकनिरूपणविषयकबुद्ध्युदयात् प्रतिज्ञालक्षणनिर्व्वाहः। प्रतिज्ञा च उत्तरकालकर्त्तव्यत्वप्रकारकबोधानुकूलव्यापारः, स च

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उक्तवाक्योच्चारणमेव। तथापि उच्चारणोच्चार्य्ययोरभेदोपचाराद् वाक्येऽपि उच्चार्य्येऽप्र प्रतिज्ञावाक्यत्वसिद्धिरिति गुरुपादाः। दीधितौ प्रतिजानीते इत्यत्र प्रतिज्ञाश्रय इत्यर्थे उच्चारणस्यैव प्रतिज्ञात्वमभ्युपगम्यम्। तत्र वाक्यस्य प्रतिज्ञात्वे मूलकारस्य तदाश्रयत्वासम्भवात्, वर्णसमुदायात्मकस्य वाक्यस्य गगनवृत्तित्वात्। हेत्वाभासा दुष्टहेतवः हेतुदोषा वा, तथाच हेतुवदाभासन्ते इति व्युत्पत्त्या दुष्टहेतुबोधः, हेतोराभासा इति व्युत्पत्त्या च हेतुदोषा इति उभयस्यैव प्रकृतत्वेन प्रथमतो दोषं निरूप्य तदनन्तरं तद्वत्त्वेन दुष्टलक्षणं ग्रन्थकृता प्रस्तुतमिति, तच्च हेत्वाभासत्वम् अनुमितिकारणीभूताभावप्रतियोगियथार्थज्ञानविषयत्वमित्यादिकं बहुलं निरूपितं तच्चान्यद्रेवेति पदार्थचिन्तासंक्षेपः।

५५। संशयपक्षताया अनुमितिं प्रति कारणत्वविमर्शः। (न्याये)

अनुमितिः प्रत्यक्षादिज्ञानचतुष्काणामन्यतमं ज्ञानम्। सा च व्याप्तिविशिष्टपक्षधर्म्मताज्ञानादुत्पद्यते। व्याप्तिश्च साध्याभाववदवृत्तित्वं हेतुव्यापकसाध्यसामानाधिकरण्यं तदितरद्वा इत्यन्यदेतत्। पक्षधर्म्मत्वञ्च पक्षतावच्छेदकावच्छिन्ननिरूपितः सम्बन्धः। तथाच वह्निमान् पर्व्वत इत्याद्याकारिका अनुमितिः, तत्कारणञ्च वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्यादिपरामर्शः। तत्रैव परामर्शे वह्निनिरूपिता व्याप्तिर्धूमे पक्षनिरूपितः सम्बन्धश्च भासते, परामर्शस्य लाघवस्य कारणत्वञ्च वह्निव्याप्यवान् पर्व्वत इत्यादिज्ञानसाधारणं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

साध्यव्याप्तिविषयता-निरूपितविषयता-निरूपितपक्षतावच्छेदकाव-च्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वेन इति केचित्। अपरे च विशेषेण धूमादिहेतुज्ञानमपि परामर्शे अनुमितिप्रयोजकं, तन्मते साध्य-व्याप्तिविषयतानिरूपितहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नविषयतानिरूपित-पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयताशालिनिश्चयत्वेन कारणत्वम्। अप्रामाण्यज्ञानादीनामुत्तेजकत्वादिकन्तु यथायथं फलानुसारेण निर्वाच्यं, तदिहाप्रकृतमिति परिह्रियते। अथ यदि परामर्शसत्त्व एव अनुमितिः सम्भवदुत्पत्तिका तदा यत्र प्रथमतः पर्व्वतादौ वह्नेः सिद्धिः (निश्चयः) तदनन्तरं परामर्शः—तत्र अनुमित्यापत्तिः, परामर्शस्य अनुमितिकारणस्य तत्रापि सत्त्वादिति। वस्तुतस्तत्रानु-मितिर्नानुभविकी, प्रत्यक्षसिद्धैव अनुमितिप्रयोजनसिद्धे-रनन्तरमनुमित्युत्पादस्वीकारं प्रति युक्त्यभावात्। अथ यद्यनुभव-स्तथापि शक्यते स्वीकर्त्तुं, स एव नास्तीति तत्र अनुमितिरवश्यं वारणीयतया ईदृशं कारणान्तरं कल्प्यं येन सिद्धिसत्त्वे अनुमितिर्नापद्येत इति पक्षता नाम कारणान्तरमनुमितिं प्रति निर्व्वचनीयम्। सा च पक्षता संशयात्मिका सिद्ध्यभावरूपा,अन्यथा वा इति परतो विशेषेणालोच्यते। अत्र चिन्तामणिसन्दर्भः "सन्दिग्धसाध्यधर्म्मकत्वं पक्षत्वं—तत्रैव शिरोमणयः "यद्धर्मिक-यत्सम्बन्धावच्छिन्नसाध्यप्रकारकनिश्चयनिवर्त्त्यो यः संशयः स तत्-पक्षकतत्साध्यकानुमितौ पक्षता। तथाचायमर्थः—संयोगेन पर्वत-पक्षकवह्निसाध्यकानुमितौ पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यतानिरूपित-संयोगसम्बन्धावच्छिन्नवह्नित्वावच्छिन्नप्रकारताशालिनिश्चयत्वाव-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

च्छिन्न-प्रतिबन्धकतानिरूपितप्रतिबध्यताशाली यः संशयः पर्व्वतो वह्निमान्नवा इत्यादिरूपः स एव पक्षता, तेन सत्यां पर्व्वते वह्नेः सिद्धौ तादृशसिद्धिप्रतिबध्यस्य पर्व्वतो वह्निमान्न वेति संशयस्य असम्भवादेव पक्षतारूपकारणविरहान्न अनुमितिरिति पूर्व्वा-पादितदोषनिरासः। ननु साध्यधर्म्मिकपक्षवृत्तित्वादिसंशयस्य सत्त्वे अनुमितेः समुत्पादो दृष्टः—क्लृप्तनियमेन च नासौ पक्षता स्यात् असमानधर्म्मिकग्राह्याभावावगाहिनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वा-भावेन पक्षधर्म्मिकसाध्यनिश्चयाप्रतिबध्यत्वात्तादृशसंशयस्य, यश्च तादृशप्रतिबध्यताशाली संशयः स चापि नोपलभ्यते इति पक्षतारूपकारणविरहेऽपि कथमनुमितिस्तत्र सम्भवः, यदि चानुमितिरेव तत्र न स्यादित्युच्यते तदा अनुभव एवापलपितः कल्पनामूलमुच्छिनत्तीति। अत्रोच्यते, प्राचीनमतानुसारसिद्धमनु-भवसिद्धं प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावमङ्गीकृत्य प्रकृतं लक्षणं, तत्र हि प्रतिबध्नाति पर्व्वतो वह्निमानित्यसमानधर्म्मिकोऽपि निश्चयो वह्निः पर्व्वतवृत्तिर्न वा वह्निः पर्व्वतवृत्त्यभावप्रतियोगी न वा इत्यादि बहुविधं संशयम्; अतः सर्व्वेषामेव पर्व्वतो वह्निमान्न वा वह्निः पर्व्वतवृत्तिर्न वा इत्यादीनां पक्षधर्म्मिकसाध्यनिश्चयप्रतिबध्यसंशय-त्वेन संग्रहाद् यस्य कस्यचित् तथाविधसंशयस्य सत्त्वे एव पक्षतासत्त्वं निर्वहतीति न किमप्यनुपपन्नम्। ननु तथाविधानां संशयानामननुगमाल्लक्षणमपि तद्घटितमननुगतमेव स्यादिति कथं लक्षणानुगम इति चेत्, पक्षधर्म्मिकसाध्यनिश्चयनिवर्त्त्यत्वमेवा-नुगमकं भवेत् तथात्वेन सर्व्वेषामेव लाभसम्भवात्। अथ बाध-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

निश्चयः साध्यवत्तानिश्चयनिवर्त्तनीयोऽप्यनुमितिं प्रति पृथक्-प्रतिबन्धकः, ततश्च पक्षतालक्षणे संशयपदाप्रवेशेऽपि संशयसत्त्वे एव प्रकृतानुमितिरुपपद्यते बाधनिश्चयस्य पक्षतालक्षणाक्रान्तत्वेऽपि तदीयस्वतन्त्रप्रतिबन्धकत्ववशादेवानुमितिर्न जनिष्यते। अथ बाधनिश्चयप्रतिबन्धकतायाम् अप्रामाण्यग्रहादीनामुत्तेजकतया अप्रामाण्यग्रहास्कन्दितबाधनिश्चयस्य प्रतिबन्धकत्वविरहेण तथा-विधबाधनिश्चयसत्त्वे सिद्ध्यात्मकपरामर्शसत्त्वे अनुमितिरापद्येत तत्रत्यबाधनिश्चयस्य पक्षतालक्षणाक्रान्तस्य तत्रत्यानुमितिजननोप-योगित्वसम्भवात् इति संशयपदं साध्यनिश्चयप्रतिबन्धकतावच्छेदक-विषयताशून्यज्ञानपरमुपादेयम्। तेन अप्रामाण्यग्रहास्कन्दित-बाधनिश्चयस्य स्वातन्त्र्येण साध्यनिश्चयप्रतिबन्धकत्वविरहेऽपि साध्यनिश्चयप्रतिबन्धकतावच्छेदकविषयतावत्त्वात् पारिभाषिक-प्रकृतसंशयात्मकत्वाभावेन न निरुक्तपक्षतालक्षणाक्रान्तत्वमिति समानाकारकज्ञानीयविषयतानामैक्यात् अप्रामाण्यग्रहानास्कन्दित-बाधनिश्चयविषयताया इव अप्रामाण्यग्रहास्कन्दितभावनिश्चय-विषयताया अपि तादृशप्रतिबन्धकतावच्छेदकत्वात्। ननु तथापि पर्वतपक्षकवह्निव्याप्यसाध्यकस्थले पर्व्वतो वह्निमान्न वेति संशये अतिव्याप्तिः, तस्यापि तदभाववत्ताबुद्धिं प्रति तद्व्याप्य-वत्ताबुद्धेः प्रतिबन्धकत्वनियमेन वह्निव्याप्यवत्तानिश्चयात्मकसाध्य-निश्चयप्रतिबध्यत्वात् साध्यनिश्चयप्रतिबन्धकतावच्छेदकविषयता-शून्यत्वाच्च, अतस्तद्वारणाय पक्षविषयिताबहिर्भूतसाध्यविषयित्वाव-च्छेद्यत्वं साध्यनिश्चयप्रतिबध्यतायां निवेश्यं; प्रकृते च पर्व्वतो

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वह्निमान्न वेति संशयस्य साध्यनिश्चयप्रतिबध्यतावत्त्वेऽपि तत्प्रतिबध्यताकुक्षौ वह्निव्याप्यत्वावच्छिन्नविषयित्वं नावच्छेदकं, तत्र वह्न्यभाववत्त्वावच्छिन्नविषयतानिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविषयित्वस्यैव अवच्छेदकत्वात्। पर्व्वतादिपक्षकवह्न्यादिसाध्यकस्थले पर्व्वतो वह्निमान्न वेत्यादिसंशयीयप्रतिबध्यतायाः साध्यविषयित्वावच्छिन्नत्वं च प्रतियोगित्वसम्बन्धावच्छिन्नसाध्यतावच्छेदकावच्छिन्नसाध्यविषयित्वस्यावच्छेदकत्वादुपपद्यते, एवं सर्वत्र। अथ तथापि वह्निपक्षकवह्निसाध्यकस्थलादौ वह्निर्वह्निमान्न वेत्यादिसंशये लक्षणस्य सङ्गमनीयतया कथं पक्षविषयिताबहिर्भूतसाध्यविषयित्वावच्छेद्यत्वं प्रतिबध्यतायां निवेश्यते, प्रकृते साध्यपक्षयोरैक्यात् साध्यतावच्छेदकपक्षतावच्छेदकयोरैक्याच्च साध्यतावच्छेदकावच्छिन्नविषयितायाः पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविषयितावच्छिन्नभेदप्रतियोगितानवच्छेदकत्वरूपपक्षविषयिताबहिर्भूतत्वस्याभावात् इति चेत्, साध्यविशेष्यित्वावच्छिन्नभेदप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यविषयित्वावच्छेद्यत्वे सति पक्षप्रकारित्वावच्छिन्नभेदप्रतियोगितानवच्छेदकसाध्यविषयित्वावच्छिन्नत्वं प्रतिबध्यतायां निवेश्य दोषा वारणीयाः। तथाच वह्निर्वह्निमान्न वेति संशयीयप्रतिबध्यतावच्छेदकवह्नित्वावच्छिन्नविशेष्यित्वाख्यविषयिताया वह्नित्वरूपपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारित्वावच्छिन्नभेदप्रतियोगितानवच्छेदकत्वात् तथाभूतवह्नित्वरूपपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारित्वाख्यविषयितायाश्च वह्नित्वरूपपक्षतावच्छेदकावच्छिन्नविशेष्यित्वावच्छिन्नभेदप्रतियोगितानवच्छेदकत्वाच्च। नन्वेवं रीत्या संशयस्य

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पक्षतात्वं प्रतिपाद्य तस्य अनुमितिं प्रति कारणत्वमङ्गीकृत्य ग्राह्यसंशयस्य प्रत्यक्षज्ञानं प्रति क्लृप्तप्रतिबन्धकतासत्त्वेन यद्यपि संशयसत्त्वे प्रत्यक्षात्मकसिद्धेरसम्भवाच्च तादृशसिद्धिदशायामनुमितिर्नोत्पादयितुं शक्यते तथापि स्मृत्यात्मकसिद्धौ संशयस्य प्रतिबन्धकत्वविरहेण स्मृत्यात्मकसिद्ध्यात्मकपरामर्शदशायामनुमितिः केन वार्य्यते इति चेत्, तत्रानुमितिरिष्टा। तथाच संशयदशायां स्मरणात्मक-सिद्ध्यात्मकपरामर्शसत्त्वे अनुमितिर्भवत्येव इति जगदीशपादा व्याहरन्ति। एतन्मते सर्व्वत्रैव संशयानन्तरमनुमितिः, यत्र संशयो नोपलभ्यते तत्रानुमितिरपि न स्वीक्रियते इति। अथैवं यत्राङ्कुरविशेषे संशय एव न स्यात् तत्रानुमितिरप्यसम्भवा सर्व्वत्र संशये मानाभावादिति संशयस्य कथं पक्षतात्वम्। अपि च वह्निव्याप्यवत्पक्षकवह्निसाध्यकस्थले वह्निव्याप्यस्य वह्न्यभावविरोधिधर्म्मतया तद्धर्मितावच्छेदकवह्न्यभाववत्त्वबुद्धेर्नियतात्वार्थ्यतया तादृशज्ञानस्य प्रतिबध्यत्वासम्भवेन लक्ष्यसन्देहे लक्षणसमन्वयो न स्यादिति तत्र पक्षतैव विलुप्यते, अतः संशयपक्षतावादिनां मतं चिन्त्यम्। एवमेव दोषमुद्भाव्य केचित् सिसाधयिषां पक्षतां स्वीकुर्व्वन्ति, तथापि मेघध्वनिश्रवणाद्यनन्तरं मेघाद्यनुमानपूर्वं सिसाधयिषाया अदर्शनाद् व्यभिचारापातशङ्कया सिसाधयिषाविरहविशिष्टसिद्ध्यभावरूपा एव निष्कृष्टा पक्षता निर्व्वाच्या, सिद्धिश्च पक्षे साध्यनिश्चयरूपा, तत्सत्त्वेऽपि यत्रानुमितीच्छा तत्रानुमितिरानुभविकी, अतो यादृशयादृशेच्छासत्त्वे यद्यदिच्छासत्त्वे च सिद्धिसत्त्वे अनुमितिः तादृशतादृशेच्छा-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्तत्तदिच्छाश्च सिद्धिप्रतिबन्धकतायामुत्तेजिका वाच्याः। एवम्-प्रकारेण सर्व्वत्र सामञ्जस्यमिति सर्व्वस्यैव पक्षतानिरूपणस्य सिद्धसाधनदोषवारणं फलम्, अन्यथा सिद्धिसत्त्वे अनुमितेर्वारणा-सम्भवात् सिद्धसाधनदोषापातः। केचित्तु पक्षतायाः कारणत्वमेव न स्वीकुर्व्वन्ति, तेषां मते प्रत्यक्षधारेव अनुमितिधारा जायते इति सिद्धिसत्त्वे अनुमितिर्भवत्येव, तन्मते यस्य कस्यापि पक्ष-तात्वमस्तु तत्रैव तन्मतसिद्धाविरलानुमितीनामपलापः स्यादिति न तेषां पक्षतायामनुरागः।

पक्षतात्वेन निरुक्तेभ्यः पदार्थेभ्यः केषुचिदन्येष्वपि पदार्थेषु केषाञ्चिदन्येषामस्ति निर्भरस्तत्र तत्र निपुणनैयायिकानामनिर्भर इति ते परिह्रीयन्ते समुल्लेखने। इति संशयपक्षताविचारः।

५६। भावाभावयोर्ज्ञानस्य प्रतिबध्यप्रति-बन्धकभावविचारः। (न्याये)

भावाभावज्ञानयोः प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावस्तु अनुभवबला-दास्थीयते। दृश्यते हि मनसोऽणुत्वेन यौगपद्यं न ज्ञानानाम्। तथाहि एकदैव न ज्ञानद्वयी, कथमिति ? ज्ञानसामान्यं प्रति त्वचो योगो मनसा कारणं, तत्र चाणुपरिमाणं मन एकदा एकस्मिन्नेव विषये सम्बद्धं सत् एकस्यैव तस्य ज्ञानमनुकूलयति, पदार्थान्तरे तु तस्य तदानीं सम्बन्धाभावान्न ज्ञानान्तरमिति, अथ दृश्यतेऽपि बहुपदार्थविषयमेकं ज्ञानं, तदपि तर्हि कथमुपपद्यते इति चेत्, भ्रान्तोऽसि, नानेन्द्रियजन्यं नानाज्ञानमेव मनसोऽणुप्रमाणतया

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

निषिधयते, तत्र तु एकेन्द्रियजन्यमेकमेव बहुपदार्थविषयकमिति न दोषलेशस्यस्पर्शोऽपि। तत्रापि क्रमिकयोरपि ज्ञानयोरेकत्रैव विशेष्ये न दृष्टं भावतदभावविषयकत्वं, वह्निमान् पर्व्वत इति ज्ञानोत्तरमेव वह्न्यभाववान् पर्व्वत इति ज्ञानस्य कुत्राप्यदर्शनात्, अत एव पर्व्वते वह्निज्ञानेन सह वह्न्यभावज्ञानस्य भूतले बाधज्ञानेन सह घटाभावज्ञानस्य परस्परं प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावो वाच्यः, स च प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावः कया दिशा निर्व्वचनीय इति प्रश्ने यद्येवमुच्यते यत्—वह्निप्रतियोगिकाभाववत्ताग्रहो वह्निमत्ताग्रहं प्रति वह्निमत्ताग्रहस्य वह्निप्रतियोगिकाभाववत्ताग्रहं प्रति प्रतिबन्धक इति, महानसीयवह्न्यभाववान् पर्वत इति ज्ञानोत्तरमपि वह्निमान् पर्व्वत इति ज्ञानं न स्यात्, प्रकृते तु तद् भवत्येव विषयविरोधमूलकत्वाद् ज्ञानयोः प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावस्य, एकस्मिन्नेव पर्व्वते महानसीयवह्न्यभाववह्न्योः सत्वेन विषयविरोधविरहाद् ज्ञानयोः प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावस्य वस्तुगत्यासत्वात्। यत्किञ्चिद्वह्निमत्ताग्रहस्य यदि वह्निप्रतियोगिकाभाववत्ताग्रहं प्रति प्रतिबन्धकः स्यात् तदा पर्व्वतीयवह्निमान् पर्व्वत इति ज्ञानमपि महानसीयवह्न्यभाववान् पर्व्वत इति ज्ञानं प्रतिबध्नीयात्, वस्तुगतिस्तु न तथा, प्रागुक्तयुक्त्यनुसारात्। अत एवं प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावो निर्व्वाच्यः यथा—वह्निसामान्याभाववत्ताग्रहं प्रति यत्किञ्चिद्वह्निमत्ताग्रहत्वेन तत्तद्धर्म्मावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववत्ताग्रहं प्रति तत्तद्धर्मावच्छिन्नप्रकारकबुद्धित्व यत्किञ्चिद्वह्निमत्ताग्रहं प्रति च वह्निसामान्याभाववत्ताग्रहत्वेन

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रतिबन्धकत्वम्, तेन "महानसीयवह्निमान् पर्व्वतः" पर्व्वतीयवह्निमान् पर्व्वत" इत्यादिनानाविधबुद्धीनाम् एकधैव प्रतिबन्धकतानिर्व्वाचनात् तदुत्तरं न वह्न्यभाववान् पर्व्वत इति धीः, प्रथमोक्तप्रतिबन्धकतानियमान्तर्गतत्वात् महानसीयवह्निमान् पर्वत इति ज्ञानोत्तरं महानसीयवह्न्यभाववान् पर्व्वत इति ज्ञानस्य आपत्तिस्तु न शक्यते निरुक्तप्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावस्वीकारेणापि वारयितुम्, इतिः द्वितीयप्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावः स्वीकार्य्यः, तथाच सति महानसीयवह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववत्ताग्रहं प्रति महानसीयवह्नित्वावच्छिन्नप्रकारकग्रहस्य प्रतिबन्धकतया तदापत्तिवारणं सुकरम्। अथ तथापि वह्निसामान्याभाववत्ताग्रहस्य वह्निसामान्यप्रकारकग्रहं प्रति प्रतिबन्धकत्वे वह्न्यभाववान् पर्व्वत इति ज्ञानोत्तरं महानसीयवह्निमान् पर्व्वत इत्यादि ज्ञानापत्तिः, निरुक्तप्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावद्वयेन तस्य अस्पर्शादिति वह्निसामान्याभाववत्ताग्रहस्य वह्नित्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताशालिग्रहं प्रति प्रतिबन्धकत्वम् वाच्यं, तेन वह्न्यभाववान् पर्व्वत इति ग्रहस्य महानसीयवह्निमान् पर्व्वतः, पर्व्वतीयवह्निमान् पर्व्वतः तद्वह्निमान् पर्व्वत इत्यादि बहुविधज्ञानं प्रत्येव प्रतिबन्धकत्वम् सर्वस्यैव तादृशज्ञानस्य वह्नित्वनिष्ठावच्छेदकतानिरूपितप्रकारतानिरूपितपर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यताकत्वात् तथात्वेनैव प्रतिबध्यतानिर्व्वचनात्। अथैवं सति "वह्निमान् पर्व्वत" इति मानसज्ञाने लौकिकसन्निकर्षवशाद् वह्न्यभाववान् पर्व्वत इति ज्ञानस्य अनुभवात् कथमुपपत्तिः,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तादृशप्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावेन तादृशस्थलस्य सर्व्वथा विषयीकरणात् इति चेत् प्रतिबध्यतावच्छेदककोटौ लौकिकसन्निकर्षाजन्यत्वस्य निवेशात्, तथाहि लौकिकसन्निकर्षाजन्यतादृशग्रहत्वावच्छिन्नं प्रति तादृशज्ञानत्वेन प्रतिबन्धकतानिर्व्वचनात् प्रकृतज्ञानस्य लौकिकसन्निकर्षजन्यत्वेन प्रतिबध्यतावच्छेदकधर्म्मानाक्रान्तत्वात्। अथ तथापि शङ्खे पीतत्वाभावनिश्चये सत्यपि कामलादिदोषात् शङ्खे पीतत्वप्रकारकज्ञानोदयात् तादृशप्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावनियमभङ्ग इति चेत् लौकिकसन्निकर्षाजन्यत्ववत् प्रतिबध्यतावच्छेदककोटौ दोषविशेषाजन्यत्वस्यापि निवेशात्। तथाच सति लौकिकसन्निकर्षाजन्यदोषविशेषाजन्यतद्वत्ताग्रहं प्रति तदभाववत्तानिश्चयः प्रतिबन्धक इति। अथैवमपि नार्हसि दोषमुक्तो भवितुम्, तथाहि आहार्य्यज्ञानात् अव्यवहितपूर्व्वं समकालं वा बाधज्ञानस्य आवश्यकतया तत्रैव तादृशनियमभङ्गः सम्पतति, तथाच आहार्य्यत्वमिच्छाविशिष्टप्रत्यक्षत्वम् इच्छावैशिष्ट्यञ्च स्वाव्यवहितोत्तरत्व—स्वविषयत्व—स्वकालीनबाधनिश्चयविशिष्टत्वैतत्त्रितयसम्बन्धेन बाधनिश्चयवैशिष्ट्यञ्च स्वसामानाधिकरण्य-स्वाव्यवहितोत्तरत्वोभयसम्बन्धेन, तत् कथमाहार्य्यज्ञानं तथाविधप्रतिबन्धकज्ञानसद्भावे उपपद्येत इति चेत् अनाहार्य्यत्वमपि प्रतिबध्यतावच्छेदककोटौ निवेश्य तादृशदोषवारणं कर्त्तव्यम् प्रकृतस्य आहार्य्यतया न प्रतिबध्यतावच्छेदकधर्म्माक्रान्तत्वम्। अथ तथापि यत्र वह्निमान् पर्व्वत इति ज्ञानम् ततो वह्निमान् पर्व्वत इति ज्ञानं प्रमा न वा इति अप्रामाण्यसंशयः तदनन्तरं वह्न्य-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

भाववान् पर्वत इति ज्ञानमनुभवसिद्धमपि न स्यात् निरुक्तप्रतिबन्धकतावच्छेदकधर्म्माक्रान्तत्वात् पूर्वज्ञानस्य, उत्तरज्ञानस्य च निरुक्तप्रतिबध्यतावच्छेदकधर्म्माक्रान्तत्वात्, इति चेन्न प्रतिबन्धकतावच्छेदककोटौ अप्रामाण्यग्रहानास्कन्दितत्वस्य निवेशात्, उक्तज्ञानस्य च अप्रामाण्यग्रहास्कन्दिततया न तथात्वम् इति। प्रतिबन्धकतावच्छेदककोटौ अनाहार्य्यत्वविशेषणमपि देयं, तेन न आहार्य्यज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वापत्तिः। अथ पर्वतो वह्निमान् न वा इति संशयोत्तरं संशयात्मकपक्षतासत्त्वेऽपि नानुमितिर्जायताम् संशयस्य वह्निसामान्याभावविषयकतया प्रतिबन्धकतावच्छेदकधर्म्माक्रान्तत्वादिति चेत् संशयस्य प्रतिबन्धकत्वनिराकरणाय प्रतिबन्धकदिशि संशयान्यत्वं निवेश्यं, तेन प्रकृतस्य संशयस्य तदन्यत्वविरहात् नानुपपत्तिः। तद्धर्मिकाव्याप्यवृत्तित्वग्रहः अपि तद्वत्ताग्रहप्रतिबन्धकतायामुत्तेजकतया निवेश्यः, तथाहि तद्धर्मिकाव्याप्यवृत्तित्वग्रहाभावविशिष्ट एव ग्रहः प्रतिबन्धक इति। ननु एवं प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावनिरुक्तौ वह्निमान् पर्वत इत्यादिज्ञानानां वह्न्यभाववान् पर्वत इत्यादिज्ञानप्रतिबन्धकत्वं सिद्धम्, किन्तु वह्निव्याप्यवान् पर्वत इत्यादिज्ञानानामपि वह्न्यभाववान् पर्वत इत्यादि ज्ञानप्रतिबन्धकत्वमनुभवबलादास्थेयं, तच्च नोक्तम् इति चेत् तदपि वाच्यमेव, तथाहि अयमत्र अनुभवः वह्निं विना वह्निव्याप्यस्य पर्वते सत्त्वमनुपपन्नम्, वह्निं विनापि तत् सत्त्वे तस्य व्याप्यत्वमेव न घटते व्याप्तेः साध्याभाववदवृत्तित्वरूपत्वात्, प्रकृते वह्न्यभाववदवृत्तित्वाभावस्यैव वह्निव्याप्तिरूपत्वात्, अत

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

एव वह्निमत्त्वबुद्धेरिव वह्निव्याप्यवत्त्वबुद्धेरपि स्वारसिकत्वेन वह्न्य-भाववत्ताबुद्धिं प्रति प्रतिबन्धकत्वकल्पना। तत एव वह्निव्याप्यवान् पर्वत इति बोधे सति न वह्न्यभाववान् पर्वत इति धीः। एवम् अवच्छेदकधर्मदर्शनादीनामपि प्रतिबन्धकत्वम्, यथा घटावच्छेदेन वह्निमत्तानिश्चयविशिष्टघटवत्तानिश्चयः वह्न्यभाववत्ताबुद्धिं प्रति प्रतिबन्धक इत्यादि अन्यत् स्वयमूह्यमिति पदार्थचिन्तासंक्षेपः।

५७। परामर्शकारणताविचारः। (न्याये)

अनुमितौ व्याप्तिज्ञानं करणं परामर्शश्च व्यापारः, व्याप्तिज्ञानस्य अनुमितं प्रति करणत्वेन व्यापारवत्त्वस्य आवश्यकतया परा-मर्शस्य तज्जन्यस्य व्यापारत्वकल्पनात्, अन्यथा परामर्शमात्रस्यैव कारणत्वस्वीकारेण सर्वत्र सामञ्जस्यं स्यात्, व्यापारत्वञ्च तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वं, व्याप्तिज्ञानजन्यत्वञ्च परामर्शस्य विशिष्ट-वैशिष्ट्यावगाहिबुद्धिं प्रति विशेषणज्ञानजन्यतया उपपन्नम्, परामर्शस्य पक्षे साध्यव्याप्तिविशिष्टहेतुवैशिष्ट्यावगाहित्वात् तं प्रति व्याप्तिविशिष्टो हेतुरित्याकारकज्ञानस्य हेतुत्वात्। अथ व्यापारतया कथं परामर्शस्य कारणत्वं निर्वाच्यं साध्यविशेषदोषा-क्रान्ततया तादृशहेतोरप्रयोजकत्वादिति चेत् व्यापारत्वं न तज्जन्यत्वे सति तज्जन्यजनकत्वं किन्तु तज्जन्यजनकत्वे सति तज्जन्यत्वमिति सार्वभौमपादैः "करणव्यापारतया सिद्धहेतुभावस्य परामर्शस्य" इत्यादि पक्षताजागदीशीव्याख्यानावसरे उपपादि-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

त्वात्। तदस्य परामर्शस्य करणव्यापारतया हेतुतायाः सिद्धतया केन रूपेण सा कल्पनीया, यदि पर्वतधर्मिकवह्न्यनुमितिं प्रति पर्वतधर्मिकवह्निव्याप्यधूमादिप्रकारकज्ञानत्वेन कारणत्वमुच्यते, तदा प्रथमतः पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्नवा इत्यादि ज्ञानादपि अनुमित्यापत्तिरिति निश्चयत्वेन कारणत्वं वाच्यं, तथाहि पर्वतधर्मिकवह्न्यनुमितं प्रति पर्वतधर्मिकवह्निव्याप्याभावाप्रकारकवह्निव्याप्यप्रकारकज्ञानत्वेन हेतुत्वं वाच्यं निरुक्तसंशयस्य च तादृशाभावप्रकारकतया न तदुत्तरमनुमित्यापत्तिः। अथैवमपि यत्र वह्निव्याप्यवान् पर्वत इति ज्ञानधर्मिकाप्रामाण्यज्ञानं वर्त्तते, तत्रापि अनुमितिर्जायताम्, तादृशनिश्चयस्य तत्रापि सत्त्वात् अतस्तद्वारणाय अप्रामाण्यग्रहानास्कन्दितत्वं कारणतावच्छेदककोटौ प्रागुक्तप्रतिबन्धकतावच्छेदककोटाविव निवेशनीयम्, अप्रामाण्यग्रहाणां तत्तद्व्यक्तित्वेन अनुगतरूपेण वा तत्र निवेश इत्यन्यदेतत्, तदलमत्र तद्विचारसमारम्भेण, तद्व्यक्तित्वेन वा अनुगतरूपेण वा तन्निवेशे फलं प्रकृते एकमेव, लाघवं गौरवञ्च विचारवेद्यमेव। अत्र पक्षसाध्यनियन्त्रितमेव कार्य्यत्वं कारणत्वञ्च वक्तव्यं, तद्यथा पर्वतधर्मिकवह्निविधेयकानुमितिं प्रति पर्वतधर्मिकवह्निव्याप्यधूमादिपरामर्शत्वेन हेतुत्वम्, अन्यथा यदि पक्षविशेषनियन्त्रितः कार्य्यकारणभावो न स्यात्, तदा यत्र पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् इति परामर्शः तत्रापि घटो वह्निमान् पटो वह्निमान् इत्यादि बहुविधानुमित्यापत्तिः, कारणतायास्तन्मते पक्षविशेषमनन्तर्भाव्य वह्निव्याप्यधूमप्रकारकनिश्चयत्वेनैव कल्प-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

नात् पक्षविशेषनिवेशे च घटादिधर्मिकानुमितिं प्रति घटादिधर्मिकपरामर्शस्य हेतुतया तत्र च घटधर्मिकपरामर्शभावेन न घटधर्मिकानुमितिप्रसङ्गः। अथ तथापि वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्शात् वह्निमत् द्रव्यमित्यनुमित्यापत्तिः पर्वतस्यापि द्रव्यतया द्रव्यधर्मिकतादृशपरामर्शस्य द्रव्यधर्मिकानुमितिहेतुत्वस्य पक्षविशेषनिवेशेऽपि अनपनेयत्वात् इति चेत् पक्षतावच्छेदकावच्छिन्नत्वेन विशेष्यता विशेषणीया, तथाहि पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यकवह्निविधेयकानुमितिं प्रति पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यक-वह्निव्याप्यधूमपरामर्शत्वेन हेतुत्वं वाच्यं तेन वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्शस्य पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यकस्य न वह्निमत् द्रव्यम् इति द्रव्यत्वावच्छिन्नविशेष्यकानुमितिजनकत्वापत्तिः, किन्तु वह्निमान् पर्वत इति पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यकानुमितिं प्रत्येव जनकत्वम् अथ कथं साध्यविशेषनिवेश इत्यपि न शक्यं वक्तुम् अतिप्रसङ्गभङ्गाय पूर्ववदेव तदंशस्यापि अवश्यं निवेश्यत्वात्, अन्यथा यत्र वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्याकारः परामर्शः तदनन्तरं घटवान् पर्वत इत्याद्यनुमितिः स्यात्, तादृशानुमितिपरामर्शयोरेकधर्मावच्छिन्नविशेष्यकत्वात्. साध्यतावच्छेदकधर्मोऽपि तत्र विशेषेण निवेश्यः, अन्यथा पूर्ववत् पक्षांशे एकत्वसत्त्वेऽपि वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इति परामर्शात् द्रव्यवान् पर्वत इत्यनुमित्यापत्तिः, साध्यतावच्छेदकधर्मनिवेशे च न तत्रातिप्रसङ्ग इति तन्निवेशरीतिर्यथा पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यकवह्नित्वावच्छिन्नविधेयकानुमितं प्रति पर्वतत्वावच्छिन्नविशे-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ष्यकवह्नित्वावच्छिन्ननिरूपितव्याप्तिविशिष्टधूमादिमत्तानिश्चयत्वेन कारणत्वम्, तेन नोक्तदोषसम्भावना। वह्नित्वावच्छिन्ननिरूपिता व्याप्तिस्तु वह्निसामान्याभावाधिकरणनिरूपितवृत्तित्वसामान्याभावरूपा हेतुव्यापकसाध्यसामानाधिकरण्यरूपा अन्या वा। तत्र केचित् कार्य्यकारणभावलाघवार्थं साध्याभाववदवृत्तित्वरूपव्याप्तिज्ञानमेव अनुमितिकारणं कल्पयन्ति, अलं तदप्रस्तुतविषयाणामनल्पजल्पनेन, सर्वत्रैव मते परामर्शत्वेन कारणत्वमव्याहतम्। अथ वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वतः वह्निव्याप्यालोकवान् पर्व्वत इत्यादि बहुविधेभ्य एव परामर्शेभ्यः अनुमित्युत्पाददर्शनात् फलानुरोधेन वह्निव्याप्यधूमपरामर्शत्वेन वह्निव्याप्यभस्मपरामर्शत्वेन इत्येवं नानाविधमेव कारणत्वं वह्निविधेयकानुमितिं प्रति स्वीकार्य्यं, ततश्च केवलस्य वह्निव्याप्यधूमपरामर्शस्य सत्त्वेऽपि वस्तुगत्या वह्निविधेयकानुमितिसमुत्पादात् व्यभिचारो दुर्व्वारः, वह्निव्याप्यालोकपरामर्शादीनां तत्र विरहात् कारणाभाववति कार्य्यभूताया अनुमितेः सत्त्वात्, तथात्वेन कारणस्य व्यापकत्वभङ्गे कथं वा तस्य तस्य कारणत्वं सिध्येत् कारणत्वस्य व्यापकत्वापरपर्य्यायत्वात्। अत्राहुः—कार्य्यतावच्छेदकगर्भे अव्यवहितोत्तरत्वनिवेशेन निरुक्तव्यभिचारवारणसम्भवः, तथाहि वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इत्याकारकपर्वतधर्मिकवह्निव्याप्यधूमपरामर्शाव्यवहितोत्तरपर्वतधर्मिकवह्निविधेयकानुमितिं प्रति तादृशवह्निव्याप्यधूमपरामर्शत्वेन कारणत्वं वह्निव्याप्यालोकपरामर्शाव्यवहितोत्तरवह्निविधेयकानुमितिं प्रति वह्निव्याप्यालोकपरामर्श-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

त्वेन कारणत्वमित्येवं, तेन यत्र केवलं वह्निव्याप्यधूमपरामर्शमात्रं न आलोकपरामर्शोऽपि, तदनन्तरञ्च अनुमितिः, तत्र तदनुमितेः वह्निव्याप्यधूमपरामर्शाव्यवहितोत्तरतया वह्निव्याप्यधूमपरामर्श-जन्यत्वमेव, नतु आलोकपरामर्शाव्यवहितोत्तरत्वमपीति आलोक-परामर्शस्य तदनुमितं प्रति अहेतुत्वात् कारणाभावेऽपि न कार्य्यासत्त्वरूपव्यभिचारापात इति। कार्य्यतावच्छेदककोटौ कारणतावच्छेदककोटौ च विशेषेण हेतुतावच्छेदकनिवेशोऽपि कर्त्तव्यः, अन्यथा वह्निव्याप्यधूमप्रकारकपरामर्शत्वस्य वह्निव्याप्य-द्रव्यवान् इति ज्ञानेऽपि सत्त्वेन वह्निव्याप्यधूमवान् पर्वत इत्येक-विधज्ञानसत्त्वे तथा एव अनुमितेरनुपपत्तिः वारयितुमशक्या स्यात्। अथ "पर्वतो वह्निव्याप्यधूमवान् वह्निव्याप्यधूमाभाववांश्च" इत्याकारकाहार्य्यज्ञानसद्भावेऽपि वह्न्यनुमितिः स्यात्, तत्र अप्रामाण्यग्रहानास्कन्दितत्वस्य संशयान्यत्वस्य च सत्त्वेन कारणतावच्छेदकधर्म्माक्रान्तत्वात् इति तदापत्तिवारणाय कारणतावच्छेदककुक्षौ अनाहार्य्यत्वं निवेशनीयम्, प्रकृतस्य ज्ञानस्य च आहार्य्यतया न तादृशधर्म्माक्रान्तत्वम् इति नापत्तिः। ननु यदि पर्व्वतधर्मिकवह्न्यनुमितिं प्रति पर्व्वतधर्मिकवह्नि-व्याप्यधूमादिपरामर्शत्वेन हेतुत्वं कल्प्यते, तदा "वह्निव्याप्यो धूमः पर्व्वते" इति "पर्व्वतो वह्निव्याप्यधूमवान्" इति द्विविध-ज्ञानाभ्यामेव कथमनुमितिरनुभवसिद्धा उपपद्यताम्, कथित-कारणतायाः "वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत" इति ज्ञान एव सत्त्वात् इति चेत् अत्र निष्कर्षः—हेतुतावच्छेदकसम्बन्धातिरिक्तसम्बन्धान-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वच्छिन्नसाध्यव्याप्यहेतु-विषयतानिरूपित-हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धातिरिक्तसम्बन्धानवच्छिन्नपक्षविषयताशालिनिरुक्तनिश्चयत्वेन पक्षधर्मिकसाध्यविधेयकानुमितिं प्रति हेतुत्वम्। तथाहि ज्ञाने प्रकारत्वावच्छेदकत्वादिरूपा विषयता किञ्चित्सम्बन्धावच्छिन्ना, विशेष्यता तु न तथा प्रतिबध्यप्रतिबन्धकभावादीनामनुरोधेन प्रकारतादीनामवच्छेदकसम्बन्धस्वीकारात्, अन्यथा समवायेन वह्नित्वावच्छिन्नप्रकारकबुद्धेरपि संयोगसम्बन्धावच्छिन्नवह्नित्वावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववत्ताग्रहं प्रति प्रतिबन्धकत्वप्रसङ्गः, प्रकारतावच्छेदकसम्बन्धस्वीकारे तु स्वीयप्रकारतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नप्रतियोगिताकाभाववत्ताग्रहं प्रत्येव ज्ञानस्य प्रतिबन्धकत्वात् नातिप्रसङ्गशङ्कापि। प्रकृते तु संयोगेन वह्निव्याप्यधूमवान् पर्व्वत इति ज्ञाने विशिष्टधूमत्वावच्छिन्नप्रकारता हेतुतावच्छेदकसंयोगसम्बन्धावच्छिन्ना, पर्वतत्वावच्छिन्नविशेष्यता तु न किञ्चित्सम्बन्धेनापि अवच्छिन्ना, अत एव उक्तज्ञानस्य हेतुप्रकारताया हेतुतावच्छेदकसम्बन्धातिरिक्तसम्बन्धानवच्छिन्नतया पक्षविशेष्यतायाश्च किञ्चित्सम्बन्धानवच्छिन्नतया हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धातिरिक्तसम्बन्धानवच्छिन्नत्वमिति तादृशज्ञानोत्तरमपि पर्वतधर्मिकवह्निविधेयकानुमित्युपपत्तिः, "वह्निव्याप्यधूमः पर्व्वते" इति ज्ञानस्यापि प्रकारतात्मकपक्षविषयताया हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नाधेयत्वसम्बन्धावच्छिन्नतया तदतिरिक्तसम्बन्धानवच्छिन्नत्वं, हेतुविशेष्यतायाश्च किञ्चित्सम्बन्धानवच्छिन्नतया हेतुतावच्छेदक-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सम्बन्धातिरिक्तसम्बन्धानवच्छिन्नत्वमिति तद्दृशज्ञानोत्तरमपि पर्वतधर्मिकवह्निविधेयकानुमित्युपपत्तिरिति। ननु शिरोवेष्टनेन नासिकास्पर्शप्रयासवत् किमिति अतिरिक्तसम्बन्धं गृहीत्वा तदनवच्छिन्नत्वं निवेश्यते सारल्येन हेतुतावच्छेदकसम्बन्धावच्छिन्नहेतुतावच्छेदकावच्छिन्नप्रकारतानिरूपित पक्षतावच्छेदकावच्छिन्न-विशेष्यताशालिनिश्चयत्वेन कारणत्वोक्तावेव सामञ्जस्यादिति चेत् वह्निव्याप्यो धूमः पर्वते इति ज्ञानात् अनुमित्यनुपपत्तेः, तादृशनिवेशे तु न काचिदनुपपत्तिः, पूर्व्वोपपादनानुसारेण तत्संग्रहात्। केचिच्च पक्षविशेष्यकं व्याप्यप्रकारकमेव ज्ञानमनुमितिजनकमिति स्वीकुर्वते, तेषान्तु तथा गौरवमननुसृत्य एव उपपत्तिर्भवति। परे तु वह्निव्याप्यो धूमः धूमवान् पर्वत इति ज्ञानद्वयस्यापि अनुमितिजनकतया हेतुधर्मिकसाध्यव्याप्तिनिश्चयविशिष्टपक्षधर्मिकहेतुमत्तानिश्चयत्वेन एव कारणत्वम् ब्रुवते, तन्मते हेतुधर्मिकव्याप्तिनिश्चयत्वं पक्षधर्मिकहेतुमत्तानिश्चयत्वञ्च घटं प्रति दण्डत्वचक्रत्ववत् अनुमितिं प्रति कारणतावच्छेदकं, तच्च न विचारसहम् अतिप्रसङ्गादिदोषस्य हेयत्वात् इति अन्यत् स्वयमूह्यमिति पदार्थचिन्तासंक्षेपः।

———

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

রচনাবিষয়ক উপদেশ

কি সংস্কৃত, কি বাঙ্গালা, কোন ভাষাতেই প্রবন্ধ লিখিবার বিশেষ কোন অনুশাসন—নিয়ম নাই। এক একটি মুখ্য বিষয় লইয়া এক একটি প্রবন্ধ লিখিত হইয়া থাকে। ছাত্রগণ প্রবন্ধ লিখিতে বসিয়া কি করিয়া ভাবপূর্ণ প্রবন্ধ লিখিবে, তাহা ভাবিয়া পায় না, বিশেষতঃ পরীক্ষাগৃহে অত্যল্প সময়ের মধ্যে বাঙ্গালা কিংবা সংস্কৃত ভাষায় প্রবন্ধ লেখা তাহাদের পক্ষে অত্যন্ত কষ্টকর হইয়া উঠে। সেই সকল অসুবিধা-নিবারণার্থ প্রবন্ধ রচনাবিষয়ক কতকগুলি নিয়ম ও আদর্শ এই পুস্তকে লিখিত হইতেছে—

প্রবন্ধ লিখিতে বসিয়া লিখিত বিষয়ের যতদূর হইয়া উঠে একটা মোটামুটি ভাব ধারণা করিয়া লইবে, পরে মনে মনে এক এক বিষয়ের প্রশ্ন করিয়া, মনে মনে তাহার উত্তর করিতে থাকিবে, এইরূপে বহু কথার অবতারণা (করিয়া ক্রমে তাহার বাঙ্গালা ভাব লইয়া ঠিক অবিকল সংস্কৃত)করিয়া লইবে। লেখার সময় কর্ত্তা, কর্ম্ম, ক্রিয়া, বিশেষ্য, বিশেষণ প্রভৃতি সম্বন্ধে যে সকল ব্যাকরণবিষয়ক নিয়ম আছে, তাহাদের প্রতি সবিশেষ দৃষ্টি রাখিবে। এইরূপে লেখা শেষ হইলে তাহা বার বার পড়িবে এবং এই সময় শব্দাদির পরিবর্দ্ধন ও পরিবর্ত্তনে লিখিত বিষয়ের যাহাতে মধুরতা বৃদ্ধি পায়, তাহা করিবে। এতৎসম্বন্ধে কয়েকটি সংক্ষিপ্ত উদাহরণ—

কোন একটি শস্যবিষয়ক প্রবন্ধ লিখিতে হইলে প্রথম তাহার নাম, তাহা কোথায় কিরূপে জন্মে এবং বস্তুটি কয় প্রকার হইতে পারে, তাহাতে কি কি কার্য্য সাধিত হয়, অবস্থান্তরে অন্য কি প্রকার দ্রব্য তাহা হইতে উৎপন্ন হইতে পারে, ইত্যাদি লিখিতে হয়। যেমন—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सर्षपः

सर्षपः किं नाम वस्तु, कुत्र वा उत्पद्यते ?—सर्षपः शस्यविशेषः, एष भारतान्तर्गतेषु वर्म्मश्यामवङ्गप्रभृतिषु बहुष्वपि देशेषु प्रचुरतया उत्पद्यते, नीयते च वाणिज्याय यत्र तत्र देशेषु।

कथमुत्पद्यते ?—कृषका उर्व्वरां भूमिं कर्षयित्वा बीजानि वपन्ति, ततः प्रकृतिशक्त्या अङ्कुरा जायन्ते। अथ यद्यङ्कुरोद्गमसमये अनावृष्टिर्घटते, तर्हि जलाशयाज्जलमुद्धृत्य कृषकास्तानङ्कुरान् अभिषिञ्चन्ति, रक्षन्ति च वृतिभिर्गोमहिषादिभ्यः। इत्थं सर्वाण्येव व्यसनान्यतिक्रम्य क्रमशोऽङ्कुरतो वृक्षत्वमुपपद्यते। शोभते च तदानीं क्षेत्रमपि मनोहराकारेण। ततो वृक्षात् पुष्पम्, पुष्पात् शस्यं जायते, परिपाकस्तु मासेन सम्पद्यते। ततः कृषकाः समूलमुत्पाटयन्ति, लुनन्ति वा दात्रेण भूरिशस्तान् वृक्षान्; शस्यं विश्लेषयन्ति च दण्डाभिहताङ्घ्रोपददलिताद्वा काण्डराशेः, ततो वहिर्गतं शस्यं शूर्पादिना विपरीतवायुमुखविक्षेपणेन वा विमलीकृत्य यथास्थानं स्थापयन्ति।

मानवाः सर्षपात् कमुपकारमुपलभन्ते ?—तैलमस्माकमतिमहदुपकारकं वस्तु। तैलपक्वेन व्यञ्जनादिना भोजनं विधाय निरतिशया तृप्तिरनुभूयतेऽस्माभिः। म्रक्षयित्वा च गात्रे वातपित्तादिजनिताया रुजो जीवनं रक्ष्यते, पोष्यते च नितरां शरीरम्। उक्तञ्च भिषग्वरेण—"अन्नादष्टगुणं पिष्टं पिष्टादष्टगुणं पयः। पयसोऽष्टगुणं मांसं मांसादष्टगुणं हविः। हविषोऽष्टगुणं

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तैलं मर्द्दनान्न तु भक्षणात्।" किं बहुना, न जानीमहे—कतिषु तावदौषधेषु व्यवहरति तैलं भिषग्वर्गः। सन्ध्यासमागमे तमसाच्छन्नां महीमपि समलङ्करोति तैलपूरः खलु प्रदीपः।

सर्षपतः कथं तैलं जायते?—सर्षपान् तैलयन्त्रे निक्षिप्य निपीड़नात् विगलितस्ततः स्नेहः, अवशिष्टस्तु कल्करूपेण परिणमति।

किं नाम प्रयोजनं कल्कस्य?—एष हि गवादीनां महदुपादेयं भक्ष्यं वस्तु। शुष्कतृणेन सह कल्कं भुक्त्वा गावः पयस्वत्यो भवन्ति, विक्षिप्यमाणेन च कल्केनातिमात्रं भूमेरुर्वरता सम्पद्यते।

सर्षपः कमन्यमुपकारं जनयति?—सूपादिष्वपि व्यवहार्य्यते मसल्ला इति ख्यातोपकारस्वरूपेण, तेन च सूपादीनां नितरां माधुर्य्यं सम्पद्यते।

सर्षपः कतिविधः?—श्वेतो लोहितश्च। पूजादिकर्म्मणि श्वेतसर्षपेण विघ्नकारिणो भूतगणानपसारयन्ति, रन्धनादिषु तु लोहितः सम्यगुपयुज्यते। तैलनिर्म्मितौ च स एव प्रशस्तः।

এইরূপে লিখিত প্রবন্ধের উদ্দেশ্যসমূহ বুঝিয়া লইয়া অনায়াসে কৌশলসমূহ অবগত হওয়া যাইতে পারে। সর্ষপবিষয়ক প্রশ্নসকলের উত্তর যদিও বিশৃঙ্খলভাবে হইয়া থাকুক, কিন্তু শ্রেণীবদ্ধভাবে ও সংশোধিতরূপে লিখিলে ইহাই প্রবন্ধ হয়।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

প্রাণিবিষয়ক রচনায় জন্ম, আকৃতি, প্রকৃতি, গতি, বাসস্থান, আহার, জীবিতকাল, কতদিন গর্ভধারণ করে ও একেবারে কয়টি সন্তান প্রসূত হয় এবং উপযোগিতা ; বন্য অথবা ব্যবহার্য্য পশু হইলে ধরিবার উপায় এবং কি কি কারণে তাহারা অকর্ম্মণ্য ও হীনবীর্য্য হইয়া পড়ে ইত্যাদি বিষয়ের বর্ণনা করিতে হইবে।

अश्वः

आफ्रिकामणिपुरकाश्मीरादिषु देशेषु तावत् अश्वस्य जन्म वाहुल्येन भवति। अश्वः खलु मनुष्याणां महान्तमुपकारं जनयति। बलवन्तमुन्नीतग्रीवं कण्ठलम्बितकेशरमश्वं सहस्राधिकयापि मुद्रया क्रीणाति श्रीमान् जनः। अश्वा हि दलनिबद्धाः सन्तो वने निवसन्ति। तृणपत्रादीनि भुक्त्वा जीवनं यापयन्ति च। अश्वमारुह्य दविष्ठं मार्गमपि लघुनैव समयेनातितरन्ति बलवन्तो नराः। इत्यादि—

উদ্ভিদ্‌বিষয়ক প্রবন্ধ হইলে—প্রকারনির্দ্দেশ, কোন দেশে কিরূপ জন্মে, পরিবর্দ্ধন ও উৎকর্ষসাধনের নিয়ম, পূর্ণ অবস্থায় উচ্চতা, শাখা, পত্র, ফল এবং ফলপুষ্পের উপকারিতা ইত্যাদি লিখিবে। ইহার মধ্যে বিশেষ বিশেষ গুণগুলির বিশেষরূপে উল্লেখ করিতে হইবে।

नारिकेलवृक्षः

नारिकेलो नाम निःशाखाप्रशाखानां तालखर्जूरगुवाकजातीयानां वृक्षाणामन्यतमः। ग्रीष्मप्रधानो लवणाक्तस्व भूभागो हि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तरुवरस्यास्य उत्पत्तिस्थानम्। आयामोऽस्य प्रायस्त्रिंशतः षष्टिहस्तमितः। शिरोभागेऽस्य पत्रश्रेणयो विराजन्ते, तासु च प्रत्येकं शलाकेव या वर्त्तते, बहुसंख्यकया तया सम्मार्जनीं निर्म्माय व्यवहरन्ति गृहस्थाः। भूमौ हस्तमितं विलं विधाय बीजं प्रोथितवंश, येन त्रिहस्तान्तरं वृक्षश्रेणयो भवन्ति। मत्स्यकल्केन, अश्वपुरीषेण वा नारिकेलक्षेत्राणामुर्वरता परिवर्द्धते। शीघ्रञ्च फलति वृक्षो लवणाक्तायां भूमौ। प्रायेण पञ्चमे षष्ठे वा वर्षे फलवानयं भवति। इत्यादि—

কোন বস্তুবিষয়ক রচনায় আকৃতি, গঠন, সৌন্দর্য্য, গুণ, উপযোগিতা, যে দেশে পাওয়া যায় ইত্যাদি যে বিষয়েরই উল্লেখ হউক না কেন, তাহার বিশেষ গুণসকল দেখাইতে হয়।

কোন দেশের বর্ণনা করিতে হইলে অবস্থান, সীমা, পরিমাণফল, লোকসংখ্যা, অধিবাসীদিগের জাতি, ধর্ম্ম, প্রকৃতি, আচার, ব্যবহার, স্থাবরের প্রাকৃতিক দৃশ্য, বিদ্যালয়, বিচারালয়, রাজপ্রাসাদ ইত্যাদির উল্লেখপূর্ব্বক প্রবন্ধ লিখিতে হয়। যথা—

कलिकाता

कलिकाता नाम नगरी। इयं हि गङ्गासागरसङ्गमादनतिदूरे भागीरथीतीरे विराजते। राजकीयया व्यवस्थया नगरीयं स्वास्थ्यसुखप्रदायिनीति कीर्त्तयन्ति। भागीरथीवक्षसि लौहवेष्टितदारुमयवहुलप्लवोपरि चरणायमानायसस्तम्भो विशालः सेतुः पथिकान् विस्मापयमानः शोभते। इत्यादि—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

মনুষ্যের জীবনী লিখিতে হইলে তাহার জন্ম, বয়স, বিদ্যা, স্বভাব, পিতার নাম, জন্মভূমির নাম, বংশের পবিত্রতা, বর্ণ, ধর্ম্ম, আশ্রম ও জীবনের প্রধান ঘটনা ইত্যাদি লিখিতে হয়। যথা—

शङ्कराचार्य्यः

आसीत् दक्षिणापथे केरलजनपदे विद्याधराधिराजनामा कश्चिद्ब्राह्मणः, तस्य तु शिवगुरुनामा पुत्त्रः समजनि। साधुचरित्रः शिवगुरुः पुत्रार्थमनशनं नदीतीरमुषित्वा त्रिलोकनाथं त्रिलोचनमाराधयामास। अथ गते कतिथे काले आशुतोषः सन्तोषमापद्यमानः शिवगुरोः प्रत्यक्षमगच्छत्,प्राह च—वत्स! अलं पुनस्तपस्याय, अहं ते प्रसन्नोऽस्मि, स्वाभीष्टं प्रार्थयस्व। अथ पुत्त्रवरं प्रार्थयमानं शिवगुरुमुवाच सदाशिवः,—दीर्घायुष्को मूर्खः अल्पायुर्वा विद्वान्, कीदृशः पुत्रस्तेऽभीष्टः? विद्यावतामग्रणीरसौ विद्वांसमल्पायुषमेव पुत्रं गौरवहेतुम्मन्यमानस्तादृशमेव ययाचे। शिवोऽपि शिवगुरवे तस्मै तथैव वरं दत्त्वा अन्तरधत्त। कालेन शिवगुरुपत्नी गर्भं समधत्त। अथ यथासमयेऽद्वैतमतप्रतिष्ठाता शङ्करावतारः शङ्करः प्रादुरासीत्। इत्यादि—

দয়া, প্রেম, লোভ প্রভৃতি আন্তরিক পদার্থবিষয়ক কোন রচনা লিখিতে হইলে, বিষয়টি ভাল কি মন্দ; সুখকর কি দুঃখকর, ইত্যাদি বিশেষরূপে প্রকাশ করা প্রয়োজন। আবশ্যক হইলে কোন বিখ্যাত পণ্ডিতের নামোল্লেখপূর্ব্বক তাঁহার মত উদ্ধৃত করিয়া দিয়া নিজের মত সমর্থন করা যাইতে পারে। ভাল মন্দ সুখ দুঃখ এই উভয়গুণবিশিষ্ট প্রবন্ধ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

লিখিলে কাহার দ্বারা উপকৃত ও কাহার দ্বারা অপকৃত হওয়া যায় এবং কিরূপে তত্তৎ অনিষ্ট দূর হয়, আর কিরূপে ইষ্টপ্রাপ্ত হইতে পারা যায়, এই সমস্ত সর্ব্বপ্রথমে বুঝাইতে চেষ্টা করিবে। যথা—

विविधः

दया—यावत्यः सत्प्रवृत्तयो मनुष्यदेहेषु, तासामसौ दयैवान्यतमा। अथ यदि दया नाम प्रवृत्तिरेतं प्राणिजातं नालङ्करोति, तर्हि जगदिदं श्मशानकल्पं भवति, यः खलु मनुष्यहृदये इतरदेहिदुर्लभां देवत्वविधायिनीं दयां सञ्चारयति, स हि सर्वशक्तिसमन्वितो महान् पुरुषः सर्वदास्माकमनन्तभक्तिपुरस्कृतकृतज्ञताया भाजनम्। अपव्यवहारेण दयाया मनुष्याणामनिष्टं सम्भवति, विवेकपूर्वं सद्व्यवहारेण च महदिष्टमुत्पद्यते। इत्यादि।

शिक्षा—शिक्षा हि मनुष्याणामुन्नतेर्निदानम्। शिक्षाप्रसादेन मनुष्यो विमलं ज्ञानं लभते। धनवत्ताया वंशगौरवाच्च अधिकतरं सम्मानमधिकरोति मनुष्यो विद्यामुपार्जयन्। यद्यपि वयमुत्तराधिकारितासूत्रेण अन्येन वा केनापि कारणेन धनिनो भवितुमर्हेम, तथापि शिक्षा नितरां प्रयोजनीया, दुर्मेधा अपि शिक्षया मेधावी भवति। इत्यादि—

भक्तिः—पित्रादिषु गुरुजनेषु अनुरागो हि भक्तिः। यः खलु परमानन्दो भक्तितः समुत्पद्यते, स एव तं जानाति,—यस्तमनुभूतवान्। भक्त्या योगिभिरनधिगम्या देवाधिदेवा अपि-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वशिनो भवन्ति । भक्तिरेव भगवदनुकम्पाधिकाराय प्रधानतममवलम्बनम् । भक्तित्वष्टः परमपिता जगदीश्वरो मनुष्याणां हृदयतः पापप्रवृत्तिं दूरमपसारयति, वितरति च निरन्तरं निःश्रेयसम् । इत्यादि—

सरलता—कुटिलतापरिशून्यता हि सारल्यम् । अन्तर्वहिरुभयतस्तुल्यभावप्रदर्शनमेव सरलतायाश्चिह्नम् । अनया समलङ्कृतो मनुज एव साधुसंज्ञया समलङ्क्रियते । अभावे च सरलतायाः सौहृदं क्षणमपि हृदयमधिकर्त्तुं न शक्यते । धूर्त्तमन्तरेण सर्वैरेव जनैः सह सरलता विधेया । इत्यादि ।

विश्वासः—अन्यैः कथितेषु आचरितेषु च सत्यताज्ञानमेव विश्वासः । इह खलु जगति विश्वासमवलम्ब्यैव सर्वे सर्वत्र प्रवर्त्तन्ते । तेन विना न किमपि कार्य्यं सम्पद्यते । वाणिज्यादिषु कार्य्येषु विश्वास एव प्रधानतम उपयोगी । रोगाभिभूतो जनो यदि भेषजे विश्वसिति, तर्हि येन केनापि वस्तुना सेव्यमानेन दुरारोग्योऽपि रोगो दूरीभवति तस्य । अविश्वासेन च यथाशास्त्रं प्रयुक्तमपि भेषजमतिसहजसाध्यमपि रोगं षण्मासाभ्यन्तरेऽपि न खलु दूरमपसारयितुमर्हति । विश्वासेन कठोरतरतपश्चरणमन्तरेणापि ईश्वरप्राप्तिः सङ्घटते । किन्तु तमन्तरेण केवलतपसा न सिद्धिः सम्पद्यते । शान्तिसुखस्य विश्वास एव महानाश्रयः । किन्तु खलेषु कपटेषु च कदापि विश्वासो न स्थापयितव्यः । उक्तञ्च—"नखिनाञ्च नदीनाञ्च शृङ्गिणां शस्त्रिणान्तथा । विश्वासो नैव कर्त्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥" इत्यादि—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सन्तोषः—पूर्णे मनोरथे मनसि यः परमानन्दः समुत्पद्यते स एव सन्तोषः। सन्तोषामृततृप्तस्य अन्नाभाववत्तया उपवासः, गृहपरिशून्यतया तरुतलवासः, वस्त्रविरहिततया वल्कलपरिधानम् एतत् सर्व्वमेव शान्तये भवति। किमन्यत्—सन्तुष्टस्य सदैव सुखम्। दुर्जयो लोभरिपुः कदाचिदपि पराजेतुं न शक्नोति सन्तुष्टचित्तम्। हविषा कृष्णवर्त्मेव असन्तुष्टस्य विषयवासना विषयाणामुपभोगेनापि वरीवर्द्धत एव। इत्यादि—

अध्यवसायः---कर्म्मणां फलोदयपर्य्यन्तं तत्साधनार्थमतिशययत्न एवाध्यवसायः। जगतीह एतादृक् कार्य्यं किमपि न विद्यते यत्तावत् अध्यवसायावलम्बनेन न सिध्यति। अनुष्ठितेषु कार्य्येषु विफलमनोरथस्तु अध्यवसायी न विरमति ततः। आजीवनमनुष्ठानेन असाध्यमपि कार्य्यं क्रमेण सुखसाध्यं भवति। अहो जगतीह धन्या नरा अध्यवसायिनः। कपर्द्दकमात्रसम्बलहीना अपि कतिश इंलण्डीया महापुरुषाः केवलमध्यवसायमवलम्ब्य कतिविधान्यमानुषिकाणि कार्य्याणि सम्पादयन्ति। यदध्यवसायफलेन सम्प्रति शतयोजनदूरमपि वाराणसीधाम घटिकाष्टकेनैव गन्तुं शक्यतेऽस्माभिः। इत्यादि—

हिंसा—प्राणिनां वधः क्लेशप्रदानं वा हिंसा। सा च त्रिविधा—शारीरिकी, वाचनिकी, मानसिकी च। हस्ताभ्यां पद्भ्यां अङ्गान्तरेण वा जन्तूनां विनाशः प्रहारो वा शारीरिकी हिंसा। मनसा परपीड़ाचिन्तनं हि मानसिकी। वचनेन तयोरनुष्ठानमेव वाचनिकी। क्रोध एव हिंसाया उत्पत्तेर्निदानम्,

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इह परत्र च उभयत्रैव लोके हिंसायाः कठोरतरं फलमुपभुञ्जते जनाः। त्यागेन च हिंसाया वन्या अपि जन्तवो मनुष्यान् विश्वसन्ति। हिंसापरिशून्या मुनयो हि सिंहशार्दूलसमाकुलेषु वनेषु तरुतलमुषित्वा निरुपद्रवं जीवनं यापयन्ति। इत्यादि—

चौर्य्यम्—स्वामिनमनिवेद्य वस्तुनो ग्रहणमेव चौर्य्यम्। वृत्तिरियमतीव निकृष्टतया कीर्त्त्यते लोकैः। लोभ एवास्य उत्पत्तेः कारणम्। चौराणां शासनाय सर्वेऽपि नरपतयः अतिमात्रया सावधानतया नानाविधानुपायानुद्भावयन्ति। धृतश्चेत् प्रथमेऽपराधे वेत्राघातेन, द्वितीये वा तृतीये पुनः कठोरेण कारादण्डेन तान् शासति यावज्जीवनं वा द्वीपान्तरे प्रेरयन्ति। चौरे कारागाराद् गृहागतेऽपि प्रतिनक्तं राजपुरुषः चौरगृहमागत्य पृच्छति—स किं गृहे वर्त्तते, उत बहिर्द्वारं गत इति। अथ यदि नगरे अन्यैरपि चौरैः कस्यापि धनमपह्रियते, तदापि तमेव प्रथमं हस्तपदादौ बद्ध्वा विचारालयं नयति नगरपालः। इत्यादि—

कवितोपक्रमः।

"आदौ साध्यपदं स्थाप्य शेषं कुर्य्याद्विशेषणैः।
विशेष्यार्थो वर्णाकाराधाराधेयक्रियागुणैः॥
सादृश्यपरिवाराद्यैः क्रियेत सविशेषणः॥"

প্রথমতঃ বিশেষ্যপদ বিন্যস্ত করিয়া পরে তাহার বিশেষণপদ সকল বসাইবে। অর্থাৎ বিশেষ্যভূত বস্তুটির বর্ণ, আকার,আধার, আধেয়, ক্রিয়া, গুণ, সাদৃশ্য ও তদাশ্রিত অন্য বস্তুর উল্লেখপূর্ব্বক বর্ণন করিবে।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

"यथा सुधांशुर्धवलोऽतिवृत्तः
क्रान्तान्तरिक्षो हरिणं दधानः।
महत्तमो घ्नन् जनतापहारी
मृगेन्द्रवद्राजति ऋक्षमध्ये॥

अस्यार्थः—सुधांशुश्चन्द्रः धवलः शुभ्रः, अतिवृत्तः वर्त्तुलः, पक्षे उद्धतचरित्रः, क्रान्तम् अन्तरिक्षं येन सः, नभसि स्थित इत्यर्थः। हरिणं कलङ्करूपं दधानः धारयन्, महत् तमः अन्धकारं घ्नन् विनाशयन् तमोनाशनिमित्तमित्यर्थः। 'लक्षणहेत्वो'रित्यादिना शतृप्रत्ययः। जनतापहारी जनानां सन्तापनाशकः मृगेन्द्रवत् सिंहवत् ऋक्षमध्ये नक्षत्रगणवेष्टित इत्यर्थः। राजति शोभते। सिंहपक्षे—ऋक्षा भल्लूकाः। जनतापहारी मनुष्यसमूहभक्षकः, घ्नन् हिंस्रः, महत्तमः अतिमहान्। हरिणं मृगम्। सिंहस्य मृगधारणार्थमुल्लम्फनेन क्रान्तान्तरिक्षो भवति। अत्र वर्णादयः समस्ता एव सन्निवेशिताः। "आदौ साध्यपदं स्थाप्य"मिति प्रथमप्रवेशार्थमुक्तं, वस्तुतः सर्व्वत्र नैषा रीतिरवलम्बनीया।

तदर्थान्यपदैस्त्वान्यश्लोकस्य परिवर्त्तनात्।
तत्रैव छन्दस्यभस्येदथ छन्दोऽन्तरे यथा॥

বাচ্যপরিবর্ত্তন অনুশীলনে যেমন ব্যাকরণে ব্যুৎপত্তি বৃদ্ধি হয়, তদ্রূপ ছন্দঃপরিবর্ত্তনশিক্ষায় ছন্দে ব্যুৎপত্তি ও কবিত্বশক্তি বৃদ্ধি পায়।

প্রত্যর্থি পৃথিবীপালতমোজালদিবাকরः।
নীতিব্রততিপর্জন্যো রাজতে পৃথিবীপতিः॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रत्यर्थिनः शत्रवो ये पृथिवीपाला भूमिपालाः त एव तमोजालम् अन्धकारश्रेणयः। तेषां दिवाकरः हन्ता इत्यर्थः। नीतिरेव व्रततिर्लता तस्याः पर्जन्यो मेघः नीतिरक्षक इत्यर्थः। पृथिवीपतिः राजा, राजते शोभते।

इदमनुष्टुब्वृत्तम्, अनेनैव छन्दसा अस्मिन्नेवार्थे पदान्तरविन्यासेन परिवर्त्तनं यथा—

प्रत्यनीकावनीकान्त-ध्वान्तविध्वंसनांशुमान्।
नयवल्लीनवाम्भोदः शोभते भूमिवल्लभः॥

प्रत्यनीकाः शत्रवः ये अवनीकान्ताः भूमिपतयः त एव ध्वान्ताः तेषां विध्वंसने अंशुमान् सूर्यः। नयवल्ली नीतिलता तस्या नवाम्भोदः नूतनजलधरः।

प्रत्यर्थिपृथ्वीहृदयाधिनाथ-
ध्वान्तौघविध्वंसन-वासरेशः।
सन्नीतिवल्लीनववारिवाहो
विश्वम्भराया दयितो विभाति॥

अत्र इन्द्रवज्रावृत्तम्। प्रत्यर्थिनः शत्रवः, पृथ्वीहृदयाधिनाथा भूपतयः, वासरेशः सूर्यः। विश्वम्भरा पृथिवी, दयितः पतिः।

दुर्द्धरारिधरणीधरोद्धत-
ध्वान्तमण्डलविखण्डनांशुमान्।
नीतिवल्लिवननूतनाम्बुदो
मेदिनीपरिवृढोऽधिराजते॥

अत्र रथोद्धतावृत्तम्। दुर्द्धरा दुर्म्मदा ये अरयः धरणीधरा

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

राजानः एव उद्धतध्वान्तमण्डलानि तेषां विखण्डने उच्छेदे अंशुमान् सूर्य्यः। मेदिनीपरिवृढः मेदिनीपतिः।

विविधवर्णनक्रमः।

येषां पदार्थानां वर्णनाय ये ये विषयाः अवश्यमेव अवलम्बनीयाः ते प्रदर्श्यन्ते।

राजवर्णने—

नृपे कीर्त्तिप्रतापाज्ञा-दुष्टशास्तिविवेकिताः।
धर्म्मप्रयाण-संग्राम-शास्त्राभ्यासनयक्षमाः॥
प्रजारागोऽरिशैलादिवासो(१)ऽरिपुरशून्यता।
औदार्य्यधैर्य्यगाम्भीर्य्यैश्वर्य्यशौर्य्याद्यमादयः॥

राजमहिषीवर्णने—

देव्यां सौभाग्य-लावण्य-शील-शृङ्गार-(२) मन्मथाः।
त्रपा-चातुर्य्यदाक्षिण्य-प्रेममानव्रतादयः॥
वेणी-धम्मिल्ल-(३)सीमन्त-भाल-श्रवणनासिकाः।
कपोलाधर-नेत्र-भ्रू कटाक्ष-रद-कन्धराः॥
गण्डबाहु-करोरोज-(४)नाभि-मध्यवलित्रयम्।
रोमाणि श्रोणि-जङ्घोरु-पादयुग्मनखक्रमाः॥

---

१ अरीणां दुर्गरूपगिरिषु वासः, तानाक्रम्य अधिकृत्य च तत्र स्वस्य सेनानाञ्च स्थितिः। २ शृङ्गारः—वेशः। ३ धम्मिलः—संयतकेशः। ४ उरोजः—स्तनः।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पुरोहितवर्णने—

पुरोहितो हितो वेदस्मृतिज्ञः सत्यवाक् शुचिः।
ब्रह्मण्यो विमलाचारः प्रतिकर्त्ता-(५) पदामृजुः॥

कुमारवर्णने—

कुमारे शस्त्र-शास्त्र-श्री-कला-बल--गुणोच्छ्रयाः।
वाह्याली (६) खुरली (७) राजभक्तिः सुभगतोदयः॥

अमात्यवर्णने—

मन्त्री भक्तः शुचिः शूरोऽनुद्धतो बुद्धिमान् क्षमी।
आन्वीक्षिक्यादि-(८)कुशलः परिच्छेदी (९) सुदेशजः॥

सेनापतिवर्णने—

सेनापतिर्जितायासः स्वामिभक्तः सुधी-रभीः।
अभ्यासी वाहने शस्त्रे शास्त्रे च विजयी रणे॥

देशवर्णने—

देशे रत्नखनि-द्रव्य-पण्य-धान्याकरोद्भवाः।
दुर्ग-ग्राम-जनाधिक्य नदीमातृकतादयः (१०)॥

---

५ आपदां दैवीनां विपदां प्रतिकर्त्ता शान्तिकर्त्ता।

६ अश्वाद्यारोहणविद्या। ७ धनुर्विद्या।

८ "आन्वीक्षिकी दण्डनीतिस्तर्कविद्यार्थशास्त्रयोः" इत्यमरः।

९ परिच्छेदी—असारज्ञः नियमवर्त्ती वा।

१० नदी माता यस्येति नदीमातृकः। "नद्यम्बु जीवनो देशो नदीमातृक उच्यते" इति हलायुधः। आदिशब्देन धनिश्रोत्रिय-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ग्रामवर्णने—

ग्रामे धान्या लता-वृक्ष-सरसी-पशुपुष्टयः (११)।
क्षेत्रारघट्ट (१२) केदार-ग्रामेयी (१३) सुखविभ्रमाः॥

राजधानीवर्णने—

पुरेऽट्ट-परिखा-वप्र-प्रतोली (१४) तोरणध्वजाः।
प्रासादा-ध्व-प्रपा-राम-वापी-वेश्या-सती-त्वरी (१५)॥

सरोवर्णने—

सरस्यम्भो-लहर्य्यम्भो-गजाद्यम्बुज-षट्पदाः।
हंसचक्रादयस्तीरोद्यान-स्त्रीपान्थकेलयः॥

वैद्यानां ग्रहणम्। तथाचोक्तम्—"धनिकः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः। एते यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत्॥" इति चाणक्यशतकम्।

११ पशूनां पुष्टिः पोषणं येषु ते पशुपुष्टयः।

१२ अरघट्टः—कूपाज्जलोत्तोलनयन्त्रम्।

१३ ग्रामेयी ग्रामवासी। ग्रामलक्षणं यथा—विप्राश्च विप्रभृत्याश्च यत्र चैव वसन्ति हि। स तु ग्राम इति प्रोक्तः शूद्राणां वास एव वा।" अन्यच्च—"तथा शूद्रजनप्राया सुसमृद्धकृषीवलाः। क्षेत्रोपयोगभूमध्ये वसतिर्ग्रामसंज्ञिता॥" इति।

१४ प्रतोली—रथ्या। १५ इत्वरी—कुलटा।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अब्धिवर्णने—

अब्धौ द्वीपाद्रि-रत्नोर्मि-पोत-यादोजलप्लवाः (१६)।
विष्णुः कुल्यागमश्चन्द्राद्वृद्धिरौर्वोऽब्दपूरणम् (१७)॥

नदीवर्णने—

सरित्यम्बुधि-यायित्वं (१८) वीच्यो जलगजादयः ।
पद्मानि षट्पदा हंसचक्राद्याः कुलशाखिनः (१९)॥

उद्यानवर्णने—

उद्याने सारणिः (२०) सर्वफलपुष्पलताद्रुमाः ।
पिकालिकेकिहंसाद्याः क्रीड़ावाप्यध्वगस्थितिः॥

शैलवर्णने—

शैले मेघौषधी धातुवंशकिन्नर-निर्झराः ।
शृङ्ग-पाद-गुहा-रत्न-वन-जीवाद्युपत्यकाः॥

अरण्यवर्णने—

अरण्येऽहिवराहेभयूथसिंहादयो द्रुमाः ।
शुककाककपोताद्या झिल्लभल्लदवाद्रयः॥

---

१६ प्लवः—उड़ुपम्, भेला इति प्रसिद्धम् ।

१७ विष्णुर्नारायणः शेषशय्यासमासीनः । कुल्या—पयः-प्रणाली । आगमः—पर्व्वणि चन्द्रसम्पर्काद् वृद्धिः । और्वो वाड़-वाग्निः । अब्दपूरणं मेघपूरणम् ।

१८ अम्बुधि-यायित्वम्—समुद्रगामित्वम् ।

१९ कुलशाखिनः—भल्लातकादयः—प्रसिद्धास्तीरवर्तिद्रुमाः ।

२० सारणिः—क्षुद्रकृत्रिमनदी ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

आश्रमवर्णने—

आश्रमेऽतिथिपूजैणविश्वासो हिंस्रशान्तता।
यज्ञधूमो मुनिसुता द्रुसेको वल्कलद्रुमाः॥

मन्त्रवर्णने—

मन्त्रे पञ्चाङ्गता शक्तिः षाड्गुण्योपायसिद्धयः।
उदयाश्चिन्तनीयाश्च स्थैर्यौन्नत्यादिसूक्तयः॥

दूतवर्णने—

दूते स्वस्वामि-तेजः-श्रीविक्रमौन्नत्यकद्वचः।
शत्रुक्षोभकरी चेष्टा धार्ष्ट्यं दाक्ष्यमभीरुता॥

रणवर्णने—

युद्धे तु वर्म्मबलचार-रजांसि तूर्य-
निस्वाननादशर-मण्डप-रक्तनद्यः।
छिन्नातपत्ररथचामरकेतुकुम्भी-
मुक्ताः सुरावृतभटाः सुरपुष्पवृष्टिः॥

प्रयाणवर्णने—

प्रयाणे भेरिनिस्वानभूकम्पबलधूलयः।
करभोक्षध्वजच्छत्र-वणिक्-शकटवेशराः॥

मृगयावर्णने—

मृगयायां श्वसञ्चारो वागुरा (२१) नीलवेषता।
भटढक्का मृगत्रासः सिंहयुद्धं त्वरा गतिः॥

---

२१ वागुरा मृगबन्धनपाशः।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अश्ववर्णने—

अश्वे वेगित्वमौन्नत्यं तेजः सल्लक्षणस्थितिः ।
खुरोत्खातरजोरूपं जातिर्गतिविचित्रता ॥

गजवर्णने—

गजे सहस्रयोधित्वमुच्चत्वं कर्णचापलम् ।
अरिव्यूहविभेदित्वं कुम्भ-मुक्ता-मदादयः ॥

वसन्तवर्णने—

सुरभौ दोला-कोकिल-मारुत-सूर्य्य-गति-तरुदलोद्भेदाः ।
जातीतरपुष्पचयाम्रमञ्जरीभ्रमर-झङ्काराः ॥

ग्रीष्मवर्णने—

ग्रीष्मे पाटलमल्ली तापः सरःपथिकशोषवातोल्काः ।
शक्तुप्रपा-प्रपास्त्री-(२२) मृगतृष्णाम्रादिफलपाकाः ॥

वर्षवर्णने—

वर्षासु घनशिखिस्मय-हंसगमाः पङ्कन्दलोद्भेदौ ।
जाती-कदम्ब-केतकझञ्झानिलनिम्नगा हलिप्रीतिः (२३) ॥

शरद्वर्णने—

शरदीन्दुरविपटुत्वं जलाच्छताऽगस्त्य-(२४) हंसवृषदर्पाः ।
सप्तच्छदपद्मसिताभ्र-धान्यशिखिपक्षमदपाताः ॥

---

२२ प्रपास्त्री—उदवर्त्तिनी वनिता ।

२३ हलिप्रीतिः—हलिनां कृषकाणां प्रीतिः ।

२४ अगस्त्यः—वकवृक्षः तदाख्यनक्षत्रञ्च ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हेमन्तवर्णने—

हेमन्ते दिनलघुता शीतयवस्तम्बमरुवकहिमानि।

शिशिरवर्णने—

शिशिरे करीषधूम-(२५) कुन्दाम्बुजदाहशिखिरतोत्कर्षाः।

सूर्य्योदयवर्णने—

सूर्य्येऽरुणता रविमणिचक्राम्बुजपथिकलोचनप्रीतिः।
तारेन्दुदीपकौषधि-घुक-(२६)तमश्चौरकुमुदकुलटार्त्तिः॥

चन्द्रोदयवर्णने—

चन्द्रे कुलटा-चक्राम्बुजमानविरहितमोहानिरौज्ज्वल्यम्।
जलधिजलनेत्रकैरवचकोरचन्द्राश्मदम्पतिप्रीतिः॥

विवाहवर्णने—

विवाहे स्नानशुद्धाङ्गभूषोलूलुत्रयीरवाः।
वेदी सीमन्ततारेखा लाजामण्डलवर्त्तनम्॥

विरहवर्णने—

विरहे तापनिश्वासचिन्तामौनकृशाङ्गताः।
अब्जशय्या निशादैर्घ्यं जागरः शिशिरोष्णता॥

स्वयंवरवर्णने—

स्वयंवरे शचीरक्षा (२७) मञ्च-मण्डप-सज्जताः।
राजपुत्री नृपाकारान्वय-चेष्टाप्रकाशनम्॥

---

२५ करीषः—शुष्कगोमयः तदुद्भवो धूमः शीतनाशार्थमिति भावः।

२६ घुकः—पेचकः।

२७ शचीरक्षा—इन्द्राणीस्थापनम्।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सुरापानवर्णने—

सुरापाने विकलता स्खलनं वचने गतौ ।
लज्जा मानच्युतिः प्रेमाधिक्यं रक्ताक्षता भ्रमः ॥

पुष्पचयनवर्णने—

पुष्पावचये पुष्पावचयः पुष्पार्पणेऽर्थिता दयिते ।
मालाद्यं गोत्रस्खलनेर्ष्यावक्रोक्तिसम्भ्रमाश्लेषाः ॥

जलक्रीडावर्णने—

जलकेलौ सरःक्षोभश्चक्रहंसापसर्पणम् ।
पद्मग्लानिः पयोविन्दुर्दृग्रागो भूषणच्युतिः ॥

रतिवर्णने—

सुरते सात्त्विका भावाः शीत्काराः (२८) कुट्मलाक्षता (२९) ।
काञ्ची-कङ्कण-मञ्जीररवोऽधरनखक्षतिः ॥

साहित्यदर्पणोक्त-कविव्यवहारः ।

मालिन्यं व्योम्नि पापे यशसि धवलता वर्ण्यते हासकीर्त्योः
रक्तौ च क्रोधरागौ सरिदुदधिगतं पङ्कजेन्दीवरादि ।
तोयाधारेऽखिलेऽपि प्रसरति च मरालादिकः पक्षिसङ्घो
ज्योत्स्ना पेया चकोरैर्जलधरसमये मानसं यान्ति हंसाः ॥

---

२८ शीत्कारः—अनुरागजशब्दचेष्टाविशेषः ।
२९ कुट्मलाक्षता—नेत्रसङ्कोचः ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पादाघातादशोकं विकसति बकुलं योषितामास्यमद्यै-
र्यूनामङ्गेषु हाराः स्फुटति च हृदयं विप्रयोगस्य तापैः ।
मौर्वी रोलम्बमाला धनुरथ विशिखाः कौसुमाः पुष्पकेतो-
र्भिन्नं स्यादस्य बाणैर्युवजनहृदयं स्त्रीकटाक्षेण तद्वत् ॥
अह्न्यम्भोजं निशायां विकसति कुमुदं चन्द्रिका शुक्लपक्षे
मेघध्वानेषु नृत्यं भवति च शिखिनां नाप्यशोके फलं स्यात् ।
न स्याज्जाती वसन्ते न च कुसुमफले गन्धसारद्रुमाणा-
मित्याद्युन्नेयमन्यत् कविसमयगतं सत्कवीनां प्रबन्धे ॥

विशेषविधिः ।

नियमस्य विशेषोऽथ पुनः कश्चित् प्रकाश्यते ।
कमलासम्पदोः कृष्णहरितोर्नागसर्पयोः ॥
पीतलोहितयोः स्वर्णपरागाग्निशिखाद्रिषु ।
चन्द्रे शशैणयोः कामध्वजे मकरमत्स्ययोः ॥
दानवासुरदैत्यानामैक्यमेवाभिसम्मतम् ।
बहुकालजन्मनोऽपि शिवचन्द्रस्य बालता ॥
मानवा मौलितो वर्ण्या देवाश्चरणतः पुनः ॥

वर्णवर्णनम् ।

श्वेताः—

सुधांशुच्चैःश्रवःशम्भु-कीर्त्तिज्योत्स्नाशरद्घनाः ।
प्रसाद-सौध-नगर-मन्दारद्रु-हिमाद्रयः ॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

सूर्येन्दुकान्तकर्पूर-करम्भा (३०) रजतं हविः ।
निर्म्मोकभस्म-हिण्डीर (३१) चन्दनं करका (३२) हिमम् ॥
कैलासकाशकार्पास-हासवासरकुञ्जराः ॥

कृष्णाः—

किल्विषं केशवः सीरिचीर (३३) चन्द्राङ्कराहवः ।
विन्ध्याञ्जनाद्रिवृत्ताहि-वनभैरवराक्षसाः ।
शिवकण्ठघन-द्वैपायन (३४) रामधनञ्जयाः ॥
शनिर्द्रुपदजा काली कलिकालयमासुराः ।
केश कज्जल कस्तूरी-राजपट्ट-विदूरजम् (३५) ।
विषकोषकुहूः (३६) शस्त्रागुरुपापनभोनिशाः ।
मसीपङ्कमदाम्भोधियमुना-धूमखं शिलाः ॥
गोलाङ्गूलास्य-(३७) गुञ्जास्य-खड्ग-खञ्जन-कोकिलाः ।
गरलं तालतापिञ्छ (३८) तिलेन्दीवरवल्लयः ॥

---

३० करम्भः—शीकरः ।
३१ हिण्डीरं—समुद्रफेनः ।
३२ करका—हिमानी ।
३३ सीरचीरं—बलभद्रस्य नीलाम्बरम् ।
३४ वेदव्यासः । ३५ वैदूर्य्यम् । ३६ अमावस्या ।
४७ गोलाङ्गूलस्य अग्रभागः ।
३८ तमालम् ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

रसावङ्गतशृङ्गारौ कटाक्षोऽलिः कनीनिका ।
नीलो जम्ब फलं मुस्त-काककृत्याकुकोर्त्तयः ॥
भिन्नच्छाया गजाङ्गार-खलान्तःकरणादयः ॥

श्यामाः—

पलाशंशुकशैवाल-दूर्वा-बालतृणं बुधः (३९) ।
वंशाङ्कुरो मरकतेन्द्रनीलार्कहयादयः (४०) ॥

रक्ताः—

शोणितं भौम (४१) तीक्ष्णांशु-ताम्रकुङ्कुमतक्षकाः ।
गुञ्जेन्द्रचाप-खद्योत-विद्युत्-कुञ्जरबिन्दवः ॥
दिगन्ताधरजिह्वौष्ठ-मांससिन्दूरधातवः ।
हिङ्गूल कुक्कुटशिखा तेजः सारसमस्तकम् ॥
माणिक्यं हंसचञ्च्वङ्घ्री शुकमर्कटयोर्मुखम् ।
चकोरकोकिलपारा-वतनेत्रनखाग्नयः ॥
कुसुम्भकिंशुकाशोक-जवाबन्धूकपाटलाः ।
कमलं दाड़िमीपुष्पं विम्बं किम्पाकपल्लवौ ॥
ताम्बूलरागो मञ्जिष्ठालक्तकं रक्तचन्दनम् ।
त्रेतानखक्षत-क्षत्रधर्म्म-रौद्ररसादयः ॥

पीतानि—

पीतानि ब्रह्मजीवेन्द्र-गरुड़ेश्वरट्टग्जटाः ।
गौरीद्वापरगोमूत्र-मधुवीररसा रजः ॥

---

३९ बुधग्रहः । ४० अर्कहयः सूर्याश्वः । ४१ मङ्गलग्रहः ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

हरिद्रा रोचना वीति-(४२) गन्धके दीप-चम्पके ।
किञ्जल्क-(४३) वल्कले शालि-हरितालौ मनःशिला ॥
कर्णिकारं चक्रवाक-बालकौ शारिकामुखम् ।
केशवांशुक-मण्डूक-सरागकनकादयः ॥

धूसराणि—

रजो लूता तथा पांशुकरभौ गृहगोधिका ।
कपोतमूषिकौ रङ्ग-(४४) काकडिम्बखरादयः ॥

येन सह यस्य सादृश्यम् ।

वेण्याः सर्पासिभृङ्गाल्यः, केशपाशस्य चामरः ।
नीलकण्ठकलापोऽपि, धम्मिल्लस्य विधुन्तुदः ॥
सीमन्तस्याध्वदण्डौ च, ललाटस्याष्टमीविधुः ।
फलकञ्च, कपोलस्य चन्द्रमा मुकुरस्थली ॥
भ्रुवोः खड्गधनुर्यष्टिरेखापल्लववल्लयः ।
दृशोश्चकोर-हरिणमदिराः खञ्जनोऽम्बुजम् ॥
कुमुदं नीलमम्भोजं, श्रुतेर्दोला प्रपाशकः ।
नासावंशस्य वंशाधो मुखतूणीरचञ्चवः ॥
तिलप्रसूनदण्डौ चाधरस्य नवपल्लवः ।
बिम्बफलं प्रवालञ्च, दन्तानां मौक्तिकावलिः ॥
कुन्ददाड़िम्बबीजानि हीरकाश्च, स्मितस्य तु ।
ज्योत्स्ना पुष्पाणि पीयूषं श्वासस्याम्भोजसौरभम् ॥

---

४२ वीतिः—दीप्तिः । ४३ केशरः । ४४ सीसकः ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

जिह्वायास्त्वञ्चलो दोला, वेश्याभृङ्गी पिकीरवः।
सुधा मधु च वक्त्रस्य शशी पङ्कजदर्पणौ॥
कण्ठस्य कम्बुः कंसस्य कुम्भौ, बाह्वोश्च वल्लरी।
मृणाललहरीशाखाः पाशाः पाणिपदस्य तु॥
पल्लवोऽम्बुजमङ्गुल्याः पल्लवो नखपद्धतेः।
रत्नताराप्रसूनानि, स्तनयोः कुड्मलौ घटौ॥
कुम्भिकुम्भौ गिरी चक्रौ विल्वे, मध्यस्य वेदिका।
सिंहमध्यञ्च, रोमाल्या रेखाशैवालवल्लयः॥
नाभेरम्भोजमावर्त्त-ह्रदौ विवरकूपकौ।
त्रिवल्या वीचिसोपान-निश्रेण्यौ,जघनस्य तु॥ इत्यादि।

गुप्तक्रिया।

भग्नश्लेषाद्युपायेन यत्क्रियादिनिगूहनम्।
तत्क्रियागुप्तकाद्याहुश्चतुर्विधमिदं यथा॥

यथा—

यथा यथा त्वस्तकुरङ्गनेत्रा प्रिया पुरोभेघतिरोहितश्रीः।
महोदधेरङ्गदनङ्गभङ्गभङ्गयोल्लसत्प्रेम तथा तथाहम्।
(अत्र मेघति दधे इति क्रियाद्वयं गूढम्)

गुप्तौ कर्म्मकर्त्तारौ।

मानकोपहते पुंसि शाश्वतीं स्थितिमाश्रयेत्।
शङ्खेभ्यो नाप्नुयात् कोऽपि देशः प्राप्नोति कं गणैः॥

(पूर्व्वार्द्धे कर्त्तृगुप्तकम्, उत्तरार्द्धे कर्मगुप्तकम्। मा लक्ष्मीः। शं शुभम्। खेभ्यः इन्द्रियेभ्यः, कं सुखं, गणैः समूहैः)।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गूढ़सम्बन्धः ।

बालया पृथिवीपाल ! व्यलोक्यत तयाननम् ।
तदा प्रभृति तां निन्ये स्मरः स्वशरवेध्यताम् ॥
(अत्र ते आननमिति सम्बन्धो गूढ़ः)

अर्द्धमात्राच्युतकम् ।

शब्दानां सार्थता येषां हीनेष्वप्यर्द्धमात्रया ।
तैरर्द्धमात्रच्युतकमेवं विन्दुच्युतादिकम् ॥

यथा—

मध्ये सूरिसभं भूरि स्वीकृतानगसङ्गमाः ।
न लभन्ते नराः शोभां भानीव रविभानुषु ॥
(अत्र अनङ्गेति ङकारच्युतिः)

विन्दुच्युतकम् ।

सा हंसेनाश्रिता पद्मा लयेन जलदात्यये ।
अर्णवस्याभिसरणे रहो मुञ्चति वाहिनी ॥
(हंसेन, रंहः इत्युभयत्र विन्दुच्युतम्)

मात्राच्युतकम् ।

दशान्तरस्थितान् भावान् कलातीतानपि स्फुटम् ।
कवलज्ञानतो योगी प्रत्यक्षानिव वीक्षते ॥

(दशान्तरेत्यत्र देशान्तर इत्येकारच्युतिः, कलातीतानित्यत्र कालातीतानित्याकारच्युतिः, कवलेत्यत्र केवल इत्येकारच्युतिः ।)

अक्षरच्युतितश्छन्दोऽन्तरम् ।

नतनाकिमौलिमणिमण्डलीविभा
भवभासुराङ्घ्रिसरसीरुहासना ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

तव शर्म्मणि भवतु भारती भृशं
दृढ़जाड्यखण्डनदिनेश-भारतिः ॥

अत्र मञ्जुभाषिणीच्छन्दसि प्रतिपाद्याद्याक्षरद्वयपाते रथोद्धता-वृत्तं संवृत्तम्। अन्त्याक्षरद्वयपाते नन्दिनीवृत्तम, आद्याक्षरद्वय-पाते अन्त्याक्षरद्वयपाते च भद्रिकावृत्तम्।

वक्रोक्तिः।

तरणिं पश्य सुश्रोणि ! नाथ ! कुत्रास्ति नौरिह ?
सवितारं प्रिये ! वच्मि प्रिय ! दूरेऽधुना पिता ॥

प्रश्नोत्तरम्।

पथिकस्य हृतं वस्त्रं कृद्दीका सरसी सती।
सालेः का सारवत्युर्वं का मालाभ्यकरी दृशोः ॥

पद्मिशबन्धः।

महेश समता राममवमासमरोत्तम।
महत्तममहोधाममतिस्तोममनोरम ॥

षोड़शदलपद्मबन्धः।

भीमकामदमश्रीमत्सोम-क्षामन्तमभ्रम।
नमस्ते महिमस्तोमधाम सोम समक्षम ॥

अष्टदलपद्मबन्धः।

न तयार्थी गिरा या न नयाराध्य जनावन्।
नवनाय यवादीन नदीवारितयातन ॥

यमकम्—

सदा सदानन्द विकासितं सितं
दयोदयोल्लासित माधवं धवम्।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

धराधरावासमसम्भवम्भवम्
सुम्भोऽस्तु मोदाय वृषासनः स नः ॥

एकाक्षरपादः—

स सासिः साससुः सासो येयायेयाययाययः ।
ललौ लीलां ललो लोलः शशी शशिशुशीः शशन् ॥

द्व्यक्षरपादः—

गौरं गौरीगुरोरङ्गं गरागारं गुरूरगम् ।
गोगं गङ्गे गरं रङ्गारोगरागारिरङ्गगोः ॥

निरोष्ठ्यश्लोकः—

लीला कङ्कालखेला कलितकलकलः कालरात्रीकलत्रः ।
कालिन्दीकालकण्ठः शिशिरकरकला-कन्दली-कान्तकायः ॥
कैलासाक्रीड़केलिः सकलकलयिता नेत्रकीलालरालः ।
कल्याणं कालकालः स किल कलयतान्निष्कलः कालकत्रः ॥

एकाक्षरश्लोकः—

न नो न नु न्न नु न्नो नो नाना नाना नना ननु ।
नुनोऽनुन्नो ननुन्ने नो नानेना नुन्ननुन्ननुत् ॥

गतप्रत्यागतपादः—

भासा निश्यामगल्लं गलविषविलगल्लं गमश्यानिसाभा ।
द्यं वै दृप्तोरुसत्वाजनमनमन जत्वासरुप्तोदवैद्यम् ।
सं तं वद्माजिदम्भे सहमहम हसम्भेदजिद्मावतंसं
वंदे वन्दे यमत्यासमनय नमसत्यामयन्देवदेवम् ॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

गोमूत्रिकाबन्धः—

पातु नाकापगा माता सुतानिव बुधातलम् ।
अतुल्याकाशगायाता हिताय वसुधातलम् ॥

असंयुक्तापुनरुक्ताक्षरः—

अगूढ़ैनः कुठाराभजले शेषकणाच्छवे ।
बोधौघं देहि झटिति पीड़याथासुखञ्च मे ॥

सर्व्वतोभद्रम्—

रसासार रसासारसाधिताऽहिहिताधिसा ।
रताक्षताता क्षतारमा हितासु सुताहिमा ॥

द्व्यक्षरश्लोकः—

पापापांपतिपततां पोतः पातूपतापतः ।
पाता पिता पूतपतत् पतिपोततताातपः ॥
नितान्तनूतनं तातततातजन्ततनून्नतिम् ।
नानाननानन्तनुतं तन्नूनं नौपितो नुत ॥

वाच्यबोधः ।

(कर्त्तृवाच्यम्)

"यः करोति स कर्त्ता"

लक्षणं कर्त्तृवाच्यस्य प्रथमा कर्त्तृकारके ।
कर्म्मणि स्याद् द्वितीया च कर्त्रधीनं क्रियापदम् ।
सकर्म्मकाकर्म्मकेभ्यः कर्त्तरि प्रत्ययो भवेत् ॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

যে ব্যক্তি কার্য্য করে, তাহাকে কর্ত্তা বলে। ‘রামঃ পাকং করোতি’ রাম পাকরূপ কার্য্য করে ; সুতরাং রাম কর্ত্তৃকারক। সকর্ম্মক বা অকর্ম্মক সকল ধাতুর উত্তরই কর্ত্তৃবাচ্যে প্রয়োগ হইয়া থাকে। কর্ত্তৃবাচ্যে প্রয়োগ হইলে কর্ত্তৃকারকে প্রথমা বিভক্তি হয়, কর্ম্মকারকে দ্বিতীয়া বিভক্তি থাকে এবং ক্রিয়াপদ কর্ত্তার অধীন অর্থাৎ কর্ত্তাতে যে পুরুষ ও যে বচন থাকে, ক্রিয়াপদেও সেই পুরুষ (প্রথম, মধ্যম, উত্তম) সেই বচন (একবচন, দ্বিবচন, বহুবচন) হয়। কর্ম্মে প্রায় সর্ব্বত্রই দ্বিতীয়া বিভক্তি হয়, বচনের কোন নিয়ম নাই। যথা—

স চন্দ্রং পশ্যতি—সে [তিনি] চন্দ্র দেখিতেছে [ন]।

তৌ গ্রামান্ গচ্ছতঃ—তাহারা দুইজনে গ্রামে যাইতেছে।

বহবস্তে অন্নং ভুঞ্জতে—তাহারা অনেকে অন্ন খাইতেছে।

ত্বং পয়ঃ পিবসি—তুমি জল পান করিতেছ।

যুবাং গায়থঃ—তোমরা দুইজনে গান করিতেছ।

যূয়ং বস্ত্রং পরিধত্থ—তোমরা কাপড় পরিতেছ।

অহং পুস্তকং পঠামি—আমি পুস্তক পড়িতেছি।

আবাং শিবং পূজয়াবঃ—আমরা দুইজনে শিবপূজা করিতেছি।

বয়ং সন্ধ্যামুপাস্মহে—আমরা সন্ধ্যা-উপাসনা করিতেছি।

কর্ত্তৃবাচ্যে ধাতুপাঠের (গণপুস্তকের) নিয়ম অনুসারে ধাতুসকলের উত্তর যথাসম্ভব পরস্মৈপদ ও আত্মনেপদ হয়।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

কর্ম্মবাচ্যম্

"যত্ ক্রিয়তে তত্ কর্ম্ম"

কর্ম্মবাচের প্রযোগঃ স্যাত্ ধাতূনাং হি সকর্ম্মণাম্।
কর্ম্মবাচ্য-প্রযোগে তু তৃতীযা কর্তৃকারকে।
কর্ম্মণি প্রথমা প্রোক্তা কর্ম্মাধীনং ক্রিযাপদম্।
আত্মনেপদমেব স্যাত্ বাচ্যযোঃ কর্ম্মভাবযোঃ॥

যাহাকে সম্পন্ন করা যায়, তাহাকে কর্ম্ম কহে। '**হরিং পূজযতি**' অথবা '**হরিঃ পূজ্যতে**' হরিকে পূজা করে অথবা হরি পূজিত হইতেছেন, এখানে হরি কর্ম্মকারক। সকর্ম্মক ধাতুরই কর্ম্মবাচ্যে প্রয়োগ হয়। কর্ম্মবাচ্যে প্রয়োগ হইলে কর্ম্মে প্রথমা বিভক্তি জন্মে। ক্রিয়াপদ কর্ম্মের অধীন হয়—অর্থাৎ কর্ম্মকারক যে পুরুষ ও যে বচনান্ত হয়, ক্রিয়াপদেও সেই পুরুষ (প্রথম, মধ্যম বা উত্তম) এবং সেই বচন (একবচন, দ্বিবচন বা বহুবচন) হয়। কর্ত্তায় তৃতীয়া বিভক্তিমাত্র নির্দ্দিষ্ট থাকে। কিন্তু বচন সকল রকমই হইতে পারে। কর্ম্মবাচ্যে ও ভাববাচ্যে ধাতুর উত্তর আত্মনেপদই হয়, কখনও পরস্মৈপদ হয় না। যথা—

স তেন জ্ঞাযতে—সে তৎকর্ত্তৃক জ্ঞাত হইতেছে।

দ্বে ছত্রে তৈঃ প্রাপ্যেতে—তাহাদের কর্ত্তৃক দুইটী ছত্র প্রাপ্ত হইতেছে।

তৈর্বহূনি ধান্যানি ছিদ্যন্তে—তাহাদের কর্ত্তৃক বহু ধান্য ছিন্ন হইতেছে।

ত্বং রামেণ নিন্দ্যসে—তুমি রাম কর্ত্তৃক নিন্দিত হইতেছ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

युवां बहुभिर्लोकैः परिचीयेथ—তোমরা দুইজন বহু লোককর্ত্তৃক পরিচিত হইতেছ।

यूयं श्यामेन ताड्यध्वे—তোমরা শ্যাম কর্ত্তৃক তাড়িত হইতেছ।

अहं हरिणा रक्ष्ये—আমি হরিকর্ত্তৃক রক্ষিত হইতেছি।

आवां पित्रा आदिश्यावहे—আমরা দুইজনে পিতৃকর্ত্তৃক আদিষ্ট হইতেছি।

वयं यादवैः दृश्यामहे—আমরা যাদবকর্ত্তৃক দৃষ্ট হইতেছি।

भाववाच्यबोधः

"भावो धात्वर्थ उच्यते।"

अकर्म्मकेभ्यो धातुभ्यो भावे प्रत्यय उच्यते।
प्रयोगे भाववाच्यस्य तृतीया कर्त्तृकारके।
प्रथमपुरुषस्यैकवचनं स्यात् क्रियापदे॥

ধাতুর যে অর্থ, তাহাই ভাব। যখন ঐ ধাত্বর্থই বিশেষ্য-রূপে প্রতীয়মান হয়, তখন অকর্ম্মক ধাতুর উত্তরই ভাববাচ্যে প্রয়োগ হইয়া থাকে; ইহাতে কর্ম্ম থাকে না। তিঙন্ত স্থলেই এ নিয়ম। কর্ত্তায় একবচন, দ্বিবচন এবং বহুবচনও থাকিতে পারে; কিন্তু ক্রিয়াপদে লট্, (কী, বর্ত্তমানা) প্রভৃতি বিভক্তির আত্মনেপদের প্রথমপুরুষের একবচনমাত্র হয়। যথা—

तेन भूयते—এখন তাহার হওয়া।

ताभ्यां शय्यते—তাহাদের দুইজনের দ্বারা শয়ন হইতেছে।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

তৈর্দীপ্যতে—তাহাদের দ্বারা দীপ্তি হইতেছে।

ত্বয়া রুদ্যতে—তোমাকর্ত্তৃক রোদন হইতেছে।

যুবাভ্যাং লজ্জ্যতে—তোমাদের দুইজনের লজ্জা হইতেছে।

যুষ্মাভিঃ স্থীয়তে—তোমাদের থাকা হইতেছে।

ময়া ত্রস্যতে—আমার ত্রাস হইতেছে।

আবাভ্যাং ক্রুধ্যতে—আমাদের দুইজনের ক্রোধ হইতেছে।

অস্মাভিঃ ক্ষীয়তে—আমাদের এখন ক্ষয়।

বাঙ্গালা ভাষায় ভাববাচ্য ও কর্ম্মবাচ্যের প্রয়োগ করিলে শব্দ কর্কশ হইয়া পড়ে; সুতরাং প্রায়ই কর্ত্তৃবাচ্যের প্রয়োগ ব্যবহৃত হয়। আমরা ঠিক সংস্কৃতের অনুরূপ অর্থ প্রদর্শনার্থ ভাববাচ্যে ও কর্ম্মবাচ্যে বাঙ্গালাভাষার প্রয়োগ দেখাইলাম।

সাধারণ-বিভক্তিবোধঃ

(প্রথমা)

কর্ত্তরি কর্ত্তৃবাচ্যস্য কর্ম্মবাচ্যস্য কর্ম্মণি।
লিঙ্গার্থেঽব্যয়যোগে চ সম্বুদ্ধৌ প্রথমা ভবেৎ॥

কর্ত্তৃবাচ্যস্থলে কর্ত্তৃপদের উত্তর, কর্ম্মবাচ্যস্থলে কর্ম্মপদের উত্তর, লিঙ্গার্থ অর্থাৎ নামমাত্র বুঝাইলে নামের উত্তর এবং সম্বোধ্যমান শব্দের উত্তর প্রথমা বিভক্তি হয় ও অব্যয়যোগে তৎপূর্ব্ববর্ত্তী শব্দের উত্তর প্রথমা বিভক্তি হইয়া থাকে। যথা—

কর্ত্তৃবাচ্যে কর্ত্তরি—শিশুঃ ক্রীড়তি,—বালক খেলিতেছে।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

কর্ম্মবাচ্যে কর্ম্মণি—ওদনঃ পচ্যতে—অন্ন পাকবিশিষ্ট হইতেছে।
নামমাত্রে—কীটঃ, জলং, লতা,—পোকা, জল, লতা।
সম্বোধনে—পুত্র ! সমিধমাহর—পুত্র ! সমিধ্ আনয়ন কর।
অব্যয়যোগে—অহং নিরপরাধ ইতি বিদ্ধি—আমি নিরপরাধ ইহা জানিও।

(দ্বিতীয়া)

দ্বিতীয়া কর্তৃবাচ্যস্য প্রয়োগে কর্ম্মকারকে।
ধিগাদিশব্দযোগে চ ব্যাপ্যর্থেঽপি ভবত্যসৌ॥

কর্তৃবাচ্যে প্রয়োগ হইলে কর্ম্মকারকের উত্তর দ্বিতীয়া বিভক্তি জন্মে এবং ধিক্, প্রতি, উভয়তঃ,পরিতঃ, শব্দের যোগে ব্যাপ্যর্থে এবং কর্ম্মপ্রবচনীয় শব্দের যোগে শব্দের উত্তর দ্বিতীয়া বিভক্তি হয়। যথা—

কর্তৃবাচ্যে কর্ম্মণি—বালকঃ পুস্তকং পঠতি--শিশু বই পড়িতেছে।
শয্যামধিশেতে—শয্যায় শয়ন করিয়া আছে।
বিদ্যালয়মধিতিষ্ঠতি—পাঠশালায় অবস্থান করিতেছে।
ইদমধ্যাস্যতাম্—এখানে বসুন।
ধিক্‌যোগে—পাপিনং ধিক্—পাপীকে ধিক্কার।
প্রতি—দীনং প্রতি দয়োচিতা—দরিদ্রের প্রতি দয়া করা উচিত।
উভয়তঃ—বেদীমুভয়তো নিক্ষিপ—বেদীর দুইদিকে ক্ষেপণ কর।
পরিতঃ—প্রাসাদং পরিতঃ পরিখা—অট্টালিকার চারিদিকে পরিখা
ঋতে—যত্নমৃতে বিদ্যা ন ভবতি—যত্ন ভিন্ন বিদ্যা হয় না।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

বিনা—জ্ঞানং বিনা বৃথা জীবনম্—জ্ঞানহীন জীবন বৃথা।

অভিতঃ—গুরুমভিতো বহু ন ভাষেত—গুরুজনের নিকট অধিক কথা বলিবে না।

যাবৎ—নদীং যাবদ্বনং—নদীপর্য্যন্ত বন।

অন্তরেণ—শাস্ত্রজ্ঞানমন্তরেণ শান্তিং ন লভতে—শাস্ত্রজ্ঞান ব্যতিরেকে শান্তিলাভ হয় না।

নিকষা—ন কদাপি গন্তব্যং নিকষা সর্পং—সর্পের নিকট কখনও যাইবে না।

অন্তরা—হাওড়া-কলিকাতানগর্য্যাবন্তরা সেতুঃ—হাওড়া ও কলিকাতার মধ্যে পোল।

ব্যাপ্ত্যর্থে—আকাশং নক্ষত্রাণি বিরাজন্তে—আকাশ ব্যাপিয়া নক্ষত্রসকল বিরাজমান আছে।

কর্ম্মপ্রবচনীয়—ভক্তঃ শিবমভি—শিবের ভক্ত।

(তৃতীয়া)

কর্ম্মবাচ্যে ভাববাচ্যে তৃতীয়া কর্ত্তৃকারকে।
করণে চ তথা হেতৌ প্রকৃত্যাদেঃ প্রয়োগতঃ।
বিশেষণে সহাদ্যর্থে যোগে বিনাদিভিস্তথা॥

কর্ম্মবাচ্যে ও ভাববাচ্যে কর্ত্তৃপদের উত্তর এবং হেতু, করণ ও বিশেষণপদের উত্তর তৃতীয়া বিভক্তি হয় এবং নিষেধার্থ, প্রয়োজনার্থ, আর প্রকৃত্যাদি, সহ, সদৃশ, বিনাপ্রভৃতি শব্দের যোগেও শব্দের উত্তর তৃতীয়া বিভক্তি হইয়া থাকে। যথা—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कर्म्मवाच्ये कर्त्तरि—मया ओदनः पच्यते—মৎকর্ত্তৃক অন্ন পক্ব হইতেছে।

भाववाच्ये कर्त्तरि—तेन तत्र अभावि—তাহার সেখানে থাকা হইয়াছিল।

हेतौ—सुशीलः पुत्रः पितुः शासनेन ज्ञानवान् भवति—সচ্চরিত্র পুত্র পিতার শাসনে জ্ঞানবান্ হয়।

प्रकृत्यादौ—प्रायेण मूर्खः—প্রায়ই মূর্খ।

विशेषणे—दण्डेन ब्रह्मचारी—দণ্ডহস্ত ব্রহ্মচারী।

करणे—हस्तेन गृह्णाति—হাত দিয়া লইতেছে।

निषेधे—तवात्र प्रयत्नेन अलं—তোমার এ বিষয়ে যত্ন নিষ্প্রয়োজন।

विनादियोगे—ज्ञानेन विना जनाः पशुभिः समानाः—জ্ঞান ব্যতিরেকে মনুষ্যগণ পশুর তুল্য। धनेन विना—ধন ব্যতিরেকে।

प्रयोजनार्थे—कोऽर्थः पुत्रेण जातेन—পুত্র জন্মিলে ফল কি ?

सहार्थे—सद्भिः सह मैत्री विधेया—সদ্ব্যক্তিদের সহিত মিত্রতা করা উচিত।

सदृशे—अग्रजः पित्रा [पितुः] सदृशः—বড় ভাই পিতার তুল্য।

(चतुर्थी)

सम्प्रदाने क्रियायोगे निमित्तार्थालमर्थयोः।
नमोहितादिभिर्योगे विभक्तिः स्याच्चतुर्थिका॥

সম্প্রদানে, ক্রিয়াযোগে, তাদর্থ্যে, তুমর্থভাববাচি-প্রত্যয়-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

যোগে, সমর্থ-অর্থে, নমঃ, স্বস্তি, স্বাহা, স্বধা, অলং, বষট্, ও হিতাদি শব্দযোগে শব্দের উত্তর চতুর্থী বিভক্তি হয়। যথা—

সম্প্রদানে—দরিদ্রায় ধনং দদাতু—দরিদ্রকে ধন দাও।

ক্রিয়াযোগে—শত্রবে [শত্রুম্] মিত্রায় [মিত্রম্] বা সর্ব্বস্মৈ [সর্ব্বম্] এব সৎপথং দর্শয়েৎ—শত্রু বা মিত্র সকলকেই সৎপথ দেখাইবে।

তাদর্থ্যে—(নিমিত্তার্থে) পরোপকারায় সতাং বিভূতিঃ—মহৎ-লোকের সম্পৎ পরের উপকারার্থ।

তুমর্থপ্রত্যয়যোগে—পাকায় পাচকো যাতি—পাচক পাক করিতে যাইতেছে।

ক্রুধাদিধাতুযোগে—(বিকল্পে) মিত্রায় [মিত্রং] ক্রুধ্যতি—মিত্রের প্রতি ক্রুদ্ধ হইতেছে।

অলং যোগে—অলং মল্লো মল্লায়—এই মল্ল মল্লযুদ্ধক্ষম।

নমঃশব্দযোগে—পিতৃমাতৃভ্যাং নমঃ—মাতা ও পিতাকে প্রণাম।

স্বস্ত্যর্থে—প্রজাভ্যঃ স্বস্তি—প্রজাদিগের মঙ্গল হউক।

স্বাহাযোগে—অগ্নয়ে স্বাহা—অগ্নির তৃপ্ত্যর্থ অর্পিত।

স্বধাযোগে—পিতৃভ্যঃ স্বধা—পিতৃ উদ্দেশ্যে ত্যাগ।

হিতযোগে—ছাত্রায় [ছাত্রস্য] হিতং—ছাত্রের হিত।

অনাদরে—তৃণায় মন্যতে জগৎ—জগৎকে তৃণ মনে করে।

সুখে—ধনিনে [ধনিনঃ] সুখং ধনীর সুখ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(पञ्चमी)

पञ्चमी स्यादपादाने योगे दिगन्यवाचकैः ।
हेतौ तथा यबर्थे च विनाहीनादियोगतः ॥

অপাদানে, দিক্ ও অন্যবাচক শব্দযোগে, হেত্বর্থে, যবর্থে (যব্‌লোপে) বিনা, হীন, ঋতে, বহিঃ, আ, অধিক ও প্রভৃতি শব্দযোগে এবং অপেক্ষার্থ ও দূরার্থ শব্দযোগে তথা কালবাচক শব্দযোগে শব্দের উত্তর পঞ্চমী বিভক্তি হয়। যথা—

अपादाने—वृक्षात् पत्रं पतति—বৃক্ষ হইতে পাতা পড়িতেছে।

दिग्वाचके—उदधेरुत्तरं श्रीक्षेत्रम्—শ্রীক্ষেত্র সমুদ্রের উত্তরে।

अन्ययोगे—मित्रादन्यः कस्त्रायते—মিত্র ভিন্ন কে ত্রাণ করে?

हेतौ—धनात् कुलम्—ধনহেতুক কুল।

यबर्थे—आसनात् प्रेक्षते—আসনে বসিয়া দেখিতেছে।

विनार्थे—शिक्षाया [शिक्षया, शिक्षां] विना न कोऽपि ज्ञानं लभते—শিক্ষা ব্যতিরেকে কেহই জ্ঞান লাভ করিতে পারে না।

हीने—ब्राह्मणाद्धीनाः सर्व्वएव वर्णाः—সকল জাতিই ব্রাহ্মণ হইতে নিকৃষ্ট।

ऋते—तोयादृते तृष्णा न दूरीभवति—জল বিনা তৃষ্ণা যায় না।

वहिर्योगे—ग्रामाद्बहिः कोलाहलः श्रूयते—গ্রামের বাহিরে কোলাহল শুনা যাইতেছে।

आयोगे—आ जीवनात् জীবিতকাল পর্য্যন্ত।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

অধিক—রোগাদধিকং কিমস্তি দুঃখকরম্—রোগ হইতে কি আর কষ্টদায়ক আছে ?

প্রভৃতী—মাঘাৎ প্রভৃতি শীতম্—মাঘ হইতে শীত।

অপেক্ষার্থে—ধনিনো বিদ্বান্ শ্রেষ্ঠঃ—ধনী অপেক্ষা বিদ্বান্ বড়।

দূরার্থে—বাসস্থানাদ্দূরং মলমূত্রং ত্যজেৎ—বাসবাটীর দূরে মলমূত্র ত্যাগ করিবে।

কালবাচকে—ভোজনাৎ পূর্ব্বং পাদৌ প্রক্ষালয়েৎ—ভোজনের পূর্ব্বে পা ধুইবে।

(ষষ্ঠী)

ষষ্ঠী সর্ব্বত্র সম্বন্ধে কৃদ্‌যোগে কর্ত্তৃকর্ম্মণোঃ।
নির্দ্ধারেঽনাদরাদৌ চ স্মৃতিহিংসাদিকর্ম্মণি॥

সকল স্থলে সম্বন্ধে, নিষ্ঠাদি প্রত্যয় ভিন্ন কৃৎপ্রত্যয়ে কর্ত্তায় এবং কর্ম্মে ; নির্দ্ধারণে, অনাদরে, তুল্যার্থশব্দযোগে, অভেদে এবং স্মৃত্যর্থক ও হিংসার্থক ধাতুর কর্ম্মে ষষ্ঠী বিভক্তি হয়। যথা—

সম্বন্ধে—রাজ্ঞঃ পুরুষঃ—রাজসম্বন্ধী লোক।

কৃদ্‌যোগে কর্ত্তরি—ভবত আসিকা—আপনার উপবেশন।

কৃদ্‌যোগে কর্ম্মণি—অপাং স্রষ্টা—জলের সৃষ্টিকর্ত্তা।

নির্দ্ধারণে—পর্ব্বতানাং মেরুঃ শ্রেষ্ঠঃ—পর্ব্বতের মধ্যে সুমেরু শ্রেষ্ঠ।

অনাদরে—ছাত্রো যাতি বহির্গুরোঃ—গুরুকে অনাদর করিয়া ছাত্র বাহিরে যাইতেছে।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

স্মৃত্যর্থকর্ম্মণি—**মাতুঃ স্মরতি**—মাতাকে স্মরণ করে।
হিংসার্থকর্ম্মণি—**চৌরস্য নিহন্তি**—চোরকে মারিতেছে।

সপ্তমী

আধারে চৈব নির্দ্ধারেঽবচ্ছেদে কালভাবয়োঃ।
নিমিত্তে কর্ম্মসংযোগে বিভক্তিঃ সপ্তমী ভবেৎ॥

অধিকরণে, নির্দ্ধারণে, অবচ্ছেদে, কাল ও ভাবে এবং কর্ম্মসংযুক্ত নিমিত্তপদের উত্তর সপ্তমী বিভক্তি হয়। যথা---

আধারে—**পাত্রে ভুঙ্‌ক্তে**—ভাণ্ডে খাইতেছে।
নির্দ্ধারণে—**কবিষু কালিদাসঃ শ্রেষ্ঠঃ**—কবির মধ্যে কালিদাস শ্রেষ্ঠ।
অবচ্ছেদে—**গৃহীত ইব কেশেষু**—চুলে ধৃত হইয়াছে যেন।
কালে-**বাল্যে বিদ্যামুপার্জয়েৎ**—বাল্যকালে বিদ্যা উপার্জ্জন করিবে
ভাবে—**অস্তং গতে সবিতরি**—সূর্য্য অস্ত গেলে।
কর্ম্মসংযুক্তনিমিত্তপদে—**কেশেষু চমরীং হন্তি**—চুলের জন্য চমরী (মৃগী বিশেষ) বধ করে।

বাক্যমালা

সংস্কৃতে অনুবাদ।

আমার জন্য অপেক্ষা কর—**মামপেক্ষস্ব**।
আজ আমার জন্ম সফল—**অদ্য মে জন্ম সফলম্**।
কিছুক্ষণ অপেক্ষা কর—**ক্ষণং প্রতীক্ষস্ব**।
যেমন কর্ম্ম তেমন ফল—**কর্ম্মানুরূপং ফলম্**।
এমন কথা বলিও না—**মৈবং ব্রূহি**।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

তিনি বা কি মনে করেন—स वा किं मन्यते ।

ইহা যুক্তই বটে—युज्यत एव तावदेतत् ।

আপনার নাম কি ?—भवतः किमभिधानम् ?

কথায় কথায় বলিলাম—कथाप्रसङ्गेनावदम् ।

আপনি যাহা করিতে হয় করুন—यत् कर्त्तव्यं करोतु भवान् ।

গাছটি পর পর হইয়াছে—वृक्षोऽयं पतनोन्मुखः संवृत्तः ।

আমি তাহাকে ছাড়িয়াছি, সে আমাকে ছাড়ে না—मुक्तवन्तं मां स न मुञ्चति ।

গেলে যাইতে পার—गन्तुकामश्चेद्गच्छ ।

এই আস্‌ছি—एष आगच्छामि ।

ইহা কি নূতনের মত শুনিলে ?—किमिदं नवमिवाकर्णयेः ?

এই তবে আমি—अयन्तावदस्मि ।

এখানে কে কে আছে হে ?—कः कोऽत्र भोः ?

এ কি রকম—कथमेतत् ?

দ্বিতীয় এই কে ?—कोऽयं द्वितीयः ?

একি উপস্থিত !—किमिदमापतितम् !

সময় পাইলেই তাহাকে বলিব—प्राप्तावसर एव तं वक्ष्यामि ।

এরূপ করিলে—एवं कृते ।

হায় ! কাহার আশ্রয় গ্রহণ করিব ?—अहो वत कं शरणमवलम्बेय ?

এইরূপ ভাবিতে ভাবিতে তাহার রাত্রি অতিবাহিত হইল—एवं चिन्तयतस्तस्य व्यतिचक्राम विभावरी ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

আজ আমার জীবন অপেক্ষা মরণ ভাল—**অদ্য মে জীবনাত্ মরণং শ্রেয়: ।**

এই কথা শেষ কর—**সংক্ষিপ্যতামিদং বচ: ।**

আর আত্মপ্রশংসা করিও না—**মা পুনরাত্মানং প্রশংসস্ব ।**

তোমার কোন দোষ নাই—**নাস্তি কোঽপি দোষস্তে ।**

এখন কোন্ দিকে যাওয়া ?—**কাং দিশং গন্তব্যমধুনা ?**

গুরুর আদেশ পালন কর—**গুরোরাদেশং প্রতিপালয় ।**

আহা কেমন সুন্দর ছবি—**অহো কীদৃশী রমণীয়া প্রতিকৃতি: ।**

খবর কি ?—**কা বার্ত্তা ?**

চারিদিকে—**সমন্তাত্ ।**

ধোপা ও পাটনী সমান দুর্ম্মুখ—**রজকী ঘট্টজীবী চ তুল্যদুর্মুখৌ**

চুপ্ থাক—**তূষ্ণীং বর্ত্তস্ব ।**

ছিছি—**ধিক্ ধিক্ ।**

মিথ্যাবাদীকে কেহ বিশ্বাস করে না—**কোঽপি মৃষাভাষিণং ন বিশ্বসিতি ।**

আমার কলম কাট—**লেখনীং মে নিকৃন্ত ।**

জন্মিলেই মরণ নিশ্চিত—**জাতস্য হি ধ্রুবো মৃত্যু: ।**

কাপড় পর—**বস্ত্রং পরিধেহি ।**

ঠাণ্ডা হও—**সমাশ্বসিহি ।**

তোমার বাড়ী কোথায়—**ক্ব তে নিবাস: ?**

ঠিক্ বলেছ—**যুক্তমুক্তম্ ।**

ইহা ভারী সস্তা—**এতদতীব সুলভম্ ।**

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

তা বটে—**सत्यमेतत्।**

তুমি কি জাতি ?—**जात्या को भवान् ?**

তবে হ'ক—**भवतु तावत्।**

তাহাকে কুকথা বলিও না—**तमवाच्यं न ब्रूहि।**

বৃষ্টি কমিয়া আসিতেছে—**वृष्टिर्विराममुपक्रमते।**

দলে দলে—**प्रतियूथम्।**

পরনিন্দা করিতে নাই—**परनिन्दा न कर्त्तव्या।**

দূর হ—**दूरमपसर।**

সর্ব্বদা সত্য কথা বলিবে—**सदा सत्यं ब्रूयात्।**

ভালো আছেন ত ?—**अपि कुशली भवान् ?**

ভয় করিও না—**मा भैः।**

ইহা ন্যায্য বলিয়া মনে হয় না—**नैतत् साधु मन्ये।**

ভাল হইয়া বসুন্—**साधु भवानास्ताम्।**

যেরূপ আজ্ঞা করেন—**यथा आज्ञापयति।**

বলাবলি করিতেছে—**मिथो भाषते।**

আমি ইহা ভাল বুঝিলাম না—**अहमिदं साधु नाबोधम्।**

আমাকে বিদায় দাও—**मामनुजानीहि गमनाय।**

বেশ বেশ—**साधु साधु।**

আর কি বলিব ?—**किं पुनर्ब्रवाणि ?**

বেশী বাড়াবাড়িতে ফল নাই—**अलमतिविस्तरेण।**

গাড়ীর মধ্যে উনি কে ?—**कोऽसौ शकटाभ्यन्तरे ?**

দিনে ঘুমাইও না—**मा दिवा स्वाप्सीः।**

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

সত্যই বড়—**सत्यमेव विशिष्यते।**

এই যে লোকটা—**योऽसौ जनः।**

হাঁ করে ঘুমাচ্ছে—**मुखं व्यादाय स्वपिति।**

তাহারা একদিন ছিল—**ते दिनमेकं तस्थुः।**

সে সুখে যাইতেছে—**स सुखेन [सुखं] गच्छति।**

পর্ব্বতের মধ্যে হিমালয় উচ্চ—**पर्व्वतानां हिमवानुच्चः।**

আমি খাইতে যাইব—**अहं भोक्तुं गमिष्यामि।**

তিনি খাইয়া আসিয়াছেন—**स भुक्त्वा प्रत्यावृत्तः।**

সে নাচিতে নাচিতে যাইতেছে—**स नरीनृत्यमानो गच्छति।**

সে জলপান করিতে করিতে হাসে—**स जलं पिबन् हसति।**

ঠিকই বলে—**सत्यं खलूच्यते।**

তোমার পা ছুঁয়ে দিব্য কচ্ছি—**तव पादं स्पृष्ट्वा शपे।**

লাঠালাঠি হইয়াছিল—**दण्डादण्डि अभवत्।**

আমি লাল কাপড় পরিব না—**नाहं रक्तवस्त्रं परिधास्यामि।**

সকলে বিদ্বান্‌কে আদর করে—**सर्वे विद्वांसमाद्रियन्ते।**

কাহারও সঙ্গে কলহ করিও না—**केनापि सह कलहं मा कार्षीः।**

সূর্য্যোদয়ে অন্ধকার দূর হয়—**सवितरि समुद्यति तमिस्रं दूरमपसरति।**

ধনী লোক প্রায় অহঙ্কারী হয়—**धनी जनः प्रायेणाहङ्कारी भवति**

আমি আসিবামাত্র সে চলিয়া গেল—**मयि समागत एव स प्रस्थितः।**

ভাল্লুক নাচিতে নাচিতে চলে—**भल्लूको नृत्यन् चलति।**

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

অকারাদিক্রমেণ অনুবাদঃ

(গ্রাম্যশব্দবোধঃ)

অ

বাঙ্গালা	সংস্কৃতম্	বাঙ্গালা	সংস্কৃতম্
অক্কা	বিনাশঃ	অজানা	অজ্ঞাতম্
অকালকুষ্মাণ্ড	গর্হিতকর্ম্মা	অটুট	অস্খলিতম্
অকূলপাথার	অতলস্পর্শঃ	অত	অধিকম্
অখ্যাতি	নিন্দা	অত্যাচার	অহিতাচারঃ
অগত্যা	সুতরাম্	অদলবদল	বিনিময়ঃ
অগড়বগড়	অসম্বদ্ধবাক্যম্	অপগণ্ড	বালকঃ
অগা [ঘা]	মূর্খঃ	অপদার্থ	বুদ্ধিহীনঃ
অগ্নিশর্ম্মা	ক্রোধনঃ	অভাগা	দুর্ভগঃ
অগো	অয়ে	অমন	এবংবিধঃ
অঘাট	বিপথঃ		

আ

আই	ধাত্রীমাতা	আঁটু	জানু
আইন	রাজনীতিঃ	আঁড়িয়া	ষণ্ডঃ
আইল	কেদারঃ	আঁৎকান	শঙ্কা
আইবড়	অবিবাহিতঃ পুমান্, অবিবাহিতা কন্যা বা।	আঁতুরঘর	সূতিকাগেহম্
		আঁধার	অন্ধকারঃ
আউশ	আশুধান্যম্	আঁব	আম্রম্

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

আওড়ান আবৃত্তি:
আওতা আবরণম्
আওভান অভ্যর्थনা
আঁক চিহ্নম्
আঁকসি—আকর्षणी
আক্রা—মহার्घ্যম্
আঁখি—নেত্রম্
আঁচ—তাপ:
আঁচড়ান—নখাঘাত:
আঁচল—অঞ্চলম্
আচান—আচমনম্
আঁজন—অঞ্জনম্
আঁজলা—অঞ্জলি:
আঁটকুড়া—নি:সন্তান:
আঁটন—দৃঢ়বন্ধনম্
আঁটাল—কঠিনবদ্ধ:
আঁটি—তৃণাদিমুষ্টি:
আগাম্—অগ্রে
আগু—প্রথমে
আগুড়ী—আগামী
আগুন—অগ্নি:
আগুনখাকী—স্বহন্তা

আঁশ—শল্কম্
আশান—উপশম:
আক্—ইক্ষু:
আক্চাআক্চি—প্রতিদ্বন্দ্বিতা
আকজ—বৈরিতা
আকন্দ—অর्কবৃক্ষ:
আকাঁড়া—অপরিষ্কৃততণ্ডুলাদি
আকাট্—অসার:
আকাটা—অখণ্ডিতম্
আকামান—অমুণ্ডিত:
আকাল—দুর্ভিক্ষম্
আক্কেল—জ্ঞানম্
আখের—পরিণাম:
আখোজ—কলহ:
আগর—অর্গলম্
আগলান—রক্ষণম্
আগা—শিরোভাগ:
আটকান—অবরোধনম্
আঁটকুঁড়ো—নি:সন্তান:
আটচল্লিশ—অষ্টচত্বারিংশত্
আটত্তর—অষ্টসপ্ততি:
আটত্রিশ—অষ্টত্রিংশত্

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

আগুসার—অগ্রগামী
আগে—অগ্রে
আগে পাছে—অগ্রপশ্চাৎ
আঙ্‌টী—অঙ্গুরীয়কম্
আঙ্গরাখা—অঙ্গরক্ষকম্, কঞ্চুকঃ
আঙ্গার—অঙ্গারঃ
আঙ্গিনা—চত্বরম্
আঙ্গুরফল—অমৃতরসা
আঙ্গুল—অঙ্গুলী
আচকা—আনুমানিকম্
আচম্‌কা—হঠাৎ
আছাড়—প্রপাতঃ
আছোলা—বল্কলবিশিষ্টঃ
আজ—অদ্য
আজব—আশ্চর্য্যম্
আঝাল—অকটু
আট্—অষ্টৌ
আটক—প্রতিবন্ধকঃ
আটকপালিয়া—মন্দভাগ্যঃ
আঢাকা—অনাচ্ছাদিতম্
আতপ চাউল—অছিন্নম্
আদ্‌পাগল—মত্তকল্পঃ
আটপলিয়া—অষ্টকোণবিশিষ্টঃ
আটপ্রহর—অহোরাত্রম্
আটষট্টি—অষ্টষষ্টিঃ
আটাইশ—অষ্টবিংশতিঃ
আটা—গোধূমচূর্ণম্
আটার—অষ্টাদশ
আটা—নির্য্যাসঃ
আড়গড়া—অশ্বশালা
আড়ঙ্গ—পণ্যস্থানম্
আরপার—পরপারঃ
আড়মাচ—আড়িমৎস্যঃ
আরশূলা—তৈলপায়িকা
আড়ষ্ট—নিস্পন্দঃ
আড়াল—গোপনম্
আড়িপাতন—গুপ্তকথাশ্রবণম্
আড়ুমাড়ু—বমনোদ্যোগঃ
আড্ডা—গোষ্ঠীবিশেষঃ
আড়ে—বিস্তারঃ
আঢ়ক—চতুঃপ্রস্থপরিমাণম্
আমড়া—আম্রাতকম্
আমদানী—সমাগমঃ
আমন—হৈমন্তিকধান্যম্

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

আদা—आर्द्रकम्

আদাআদি—अर्द्धार्द्धम्

আদাভাগী—अर्द्धांशी

আদায়—ग्रहणम्

আদালত—धर्म्माधिकरणम्

আদিম—प्राचीनः

আধসের—कुरवः

আনাজ—व्यञ्जनादीनामुपकरणम्

আন্দাজ—आनुमानिकम्

আন্দাজী—अनुमानम्

আপ্সোস—अनुतापः

আপন—स्वीयं

আপনি—स्वयं

আপিল—पुनर्विचारप्रार्थनम्

আফিং—अहिफेनम्

আবরু—लज्जा

আবীর—फल्गुः

আবুড়াখাবুড়া—नतोन्नतम्

আম—आम्रम्

আমচুর—आम्रप्रपाणकः

আমদা—बहु

আমল—अधिकारः

আমীন—भूमीनां परिमापकः

আমোদ—हर्षः

আয়না—दर्पणः

আয়ন্দা—आगामी

আলগোচ—अस्पृष्टः

আলতা—लाक्षारसः

আলসিয়া—अलसः

আলাজিহ্বা—अधोजिह्विका, अलिजिह्वा

আলাদা—पृथक्

আলুণি—लवणहीनम्

আশপাশ—इतस्ततः

আশী—अशीतिः

আসামী—प्रतिवादी, अपराधी

আস্তাকুঁর—आचमनकुण्डम्

আস্তানা—आश्रयस्थानम्

আহা—अहो बत

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ই

ইচড়—অপক্বপনসম্
ইট—ইষ্টকম্
ইনি—এষঃ [অয়ম্]
ইন্দুর—মূষিকঃ
ইলিশ—ইল্লীশঃ
ইলেক—চিহ্নম্
ইশারা—ইঙ্গিতম্
ইস্—অহো !
ইস্তক—পর্য্যন্তম্
ইস্তাহার—বিজ্ঞাপনপত্রম্
ইস্পাত—পরিষ্কৃতলৌহঃ
ইহি—ঘৃণাসূচকশব্দঃ

উ

উই—বল্মীকঃ
উইল—দানপত্রম্
উকি—গুপ্তদর্শনম্,
উকীল—রাজদ্বারপ্রতিনিধিঃ [ব্যবহারজীবঃ]
উকুন—উৎকুণঃ
উখরণ—উৎপাটনম্
উচ্ কপালিয়া—সৌভাগ্যশালী
উচ্চনীচ—নতোন্নতম্
উচাটন—উচ্চাটনম্
উচু—উচ্চম্
উচোট্—পদাঙ্গুলপ্রতিঘাতঃ
উজাড়—সম্যগবশেষঃ
উঠ—উত্তিষ্ঠ
উঠান—অঙ্গনম্
উড়ন—উড্ডয়নম্
উড়ান—অপব্যয়ঃ
উড়ুনী—উত্তরীয়বসনম্
উতালা—ব্যগ্রঃ
উধার—ঋণম্
উনি—অসৌ
উনুন—চুল্লী
উপরান—সমূলোৎপাটনম্
উপরে—ঊর্দ্ধভাগে
উপুড়—ন্যুব্জঃ
উবুর—বিপরীতন্যুব্জঃ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

উট—উষ্ট্রঃ

উট্না—ধারেণ দ্রব্যাদিক্রয়ঃ

উভরায়—তারস্বরেণ

উল্টা—বিপরীতম্

ঊ

ঊনচল্লিশ—ঊনচত্বারিংশত্

ঊনত্রিশ—ঊনত্রিংশত্

ঊননব্বই—ঊননবতিঃ

ঊনপঞ্চাশ—উনপঞ্চাশত্

ঊনষাইট—ঊনষষ্টিঃ

ঊনসত্তর—ঊনসপ্ততিঃ

ঊরুত—ঊরুঃ

ঊনাশী—ঊনাশীতিঃ

ঊনিশ—ঊনবিংশতিঃ

এ

এ—ইদম্ (এতদ্)

এই—পুরোবর্ত্তী

এক—একঃ

একবার—সকৃত্

একগুয়া—অবাধ্যঃ

একঘরিয়া—সমাজচ্যুতঃ

একচল্লিশ—একচত্বারিংশত্

একচেটিয়া—একায়ত্তীকৃতম্

একছুটিয়া—উত্তরীয়হীনঃ

একজাই—পুনঃপুনঃ (মিলনম্)

একটা—একঃ

একটু—কিঞ্চিন্মাত্রম্

একত্রিশ—একত্রিংশত্

একশ—শতম্

একষট্টি—একষষ্টিঃ

এক—একাকী

একাত্তর—একসপ্ততিঃ

একানব্বই—একনবতিঃ

একাশী—একাশীতিঃ

একান্ন—একপঞ্চাশত্

একুন—সমষ্টিঃ

একুশ—একবিংশতিঃ

একে একে—অনুক্রমাত্

এখন—সাম্প্রতম্

এখানে—অত্র

এখ্তিয়ার—সামর্থ্যম্

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

একপেট—উদরপূরণম্
একযোট্—একতা
একলা—অদ্বিতীয়:
একান—মিশ্রণম্
এবার—অস্মিন্ বারে
এমন—ঈদৃশম্
এমারৎ—অট্টালিকা
এগার—একাদশ
এজাহার—আবেদনম্ ব্যবহারলিখনম্।
এতেক—এতাবৎ
এয়ো—সধবা
এরূপ—এতাদৃশম্
এলাচি—এলা

ঐ

ঐ—পুরোবর্ত্তী

ও

ওক—বমনোদ্যোগ:
ওচলা—অপরিষ্কৃতম্
ওছা—পরিত্যাজ্যদ্রব্যম্
ওজোড়—আপত্তি:
ওঝা—সর্পাঘাতাদিচিকিৎসক:, বিষবৈদ্য:
ওঠ্—ওষ্ঠ:
ওয়াড়—উপাধানাদেরাচ্ছাদনম্
ওল—শূরণ:
ওলা—তরলগুড়ম্ (মার্জ্জার:)
ওলাউঠা—বিসূচিকা
ওলো—হলা
ওহে—ভো:

ক

কই—কবিকামৎস্য:
কইল—গোবৎস:
কএক—কতিপয়:
কএদ—আবদ্ধ:
কচড়া—রজ্জু:
কচাল—বিবাদ:
কচুরি—পূরিকা
কট্‌কট্—ভীষণশব্দ:

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

কএদী—वन्दी
কওলা—क्रयलेख्यम्
কখন—कदा
কচ্ কচ্—कलहसूचकशब्दः
কড়ার—प्रतिश्रुतिः
কড়ি—कपर्द्दकः
কত—कति
কতক—कतिपयः
কতক্ষণ—कियत्क्षणम्
কথাকথি—समालोचना
কথায় কথায়—कथाप्रसङ्गे
কনুই—कूर्परः
কপাল—भालम्
কবে—कदा ?
কভু—कदापि
কমলা—मधुजम्बीरः
করাল—धूपविकृतिः
করঙ্গ—जलपात्रम्
করমচা—करञ्जकः
করতাল—झल्लरी
করাত—क्रकचः
করাতী—क्राकचिकः
কড়্ কড়্—कठिनवस्तुनः शब्दः
কড়াব—कटाहः
কড়া—किणः (कटाहः)
কড়া—कर्कशवाक्यम्
কলা—कदली
কলিজা—हृन्मर्म्म
কলু—तैलकारः
কসাই—गोघातकः
কহা—कथनम्
কাইট্—तैलमलम्
কাঁকই—कङ्कतिका
কায়দা—नीतिः (कौशलम्)
কাকড়া—कर्कटः
কাকলাস—कृकलासः
কাকাল—कटी
কাখ—कक्षः
কাগজ—पत्रम्
কাঁচা—अपक्वम्
কাঁজি—सौवीरः
কাঁঠাল—पनसम्
কাঁটা—कण्टकः
কাঁরণ—परिष्कृतकरणम्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

কর্জ্জ—ঋণম্

কল—যন্ত্রম্

কল্কা—মুকুটম্

কলতানি—ক্লেদ:

কলম—লেখনী

কল্বল্—গোলযোগ:

কাকা—খুল্লতাত:

কাকুতি-মিনতি—কাতরোক্তি:

কাঙ্গাল—দীন:

কাছ—সামীপ্যম্

কাছা—কচ্ছ:

কাছা-আলগা—অসতর্ক:

কাছা ধরা—চাটুকার:

কাছারী—বিচারগৃহম্

কাছী—স্থূলরজ্জু:

কাজ—কর্ম্ম

কাজল—কজ্জল:

কাজসারা—কর্ম্মসমাপনম্

কাটন—কর্ত্তনম্

কাটারি—দাত্রম্ [কর্ত্তরী]

কাটাঘা—সর্পদংশনক্ষতম্

কাট—কাষ্ঠম্

কাঁড়ি—রাশি:

কাঁথা—কন্থা

কাঁদন—রোদনম্

কাঁধ—স্কন্ধ:

কাঁপন—কম্পনম্

কাঁসারী—কাংস্যবণিক্

কাচা—বস্ত্রখণ্ডম্

কাদা—কর্দ্দম:

কাদাটীয়া—কর্দ্দমাক্তম্

কাপড়—বস্ত্রম্

কাণাচ—গৃহপশ্চাদ্ভাগ:

কাণাৎ—তিরস্করিণী

কাণি—বস্ত্রখণ্ডম্

কাণ্ডগ্রহ—জ্ঞানম্

কাতান—কণ্টকবিদ্ধকরণম্

কামড়—দংশনম্

কামাই—অনুপস্থিতি:

কামান—আগ্নেয়াস্ত্রম্ ক্ষৌরম্

কামার—কর্ম্মকার:

কালকুষ্ঠে—কালিষ্ঠ:

কালমুখ—লজ্জাহীন:

কালি—মসী

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

কাঠরা—काष्ठमयगृहम्
কাঠা—शस्यादीनां परिमाणम्
কাড়ন—लुण्ठनम्
কাণ—कर्णः
কাণভাঙ্গান—कुमन्त्रणा
কাণমলা—कर्णमर्द्दनम्
কাণা—एकाक्षिविहीनः
কাণাকাণি—कर्णाकर्णि
কিছু কিছু—अल्पाल्पम्
কিছু মিছু—अत्यल्पम्
কি জানি—न ज्ञायते
কিনারা—पार्श्वम्
কিরীচ—तरवालम्
কিল—मुष्टिः
কিল কিল—आनन्दध्वनिः
কুআশা—नीहारः
কুখ্‌রা—कुक्कुटः
কুঁচ—कुञ्चिका
কুজ—कुब्जम्
কুজা—जलपात्रम्
কুচ্ছা—अपवादः
কুচ্ছিৎ—कुरूपः
কাসি—क्षवथुः
কাহণ—कार्षापणः
কাস্তে—धान्यच्छेदनदात्रम्
কাহিল—दुर्ब्बलः
কিচর—कर्द्दमम्
কিচির্-মিচির্—अस्फुटध्वनिः
কিচির্-মিচির্—वानररवः
কিছু—किञ्चित्
কুলকুল—जठरवेदना [हिल्लोलः]
কুণী—नखरोगः
কুম্ভীর—नक्रः
কুমার—कुम्भकारः
কুলা—शूर्पम्
কূআ—कूपः
কৃষাণ—कृषिजीवी
কে—कः
কেওয়ার—कपाटम्
কেন—कथम्
কেননা—यतः
কেচু—गण्डूपदी
কেছুয়া—मद्दीलता
কেরাণি—लेखकः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

কুঁজো—কুব্জ:
কুড়ি—মুকুলম্ [বিংশতি:]
কুড়া—কুড়ব:
কুড়াল—কুঠার:
কুত্তা—শ্বা
কৈ—কুল
কোচড়—অঞ্চলম্
কোদাল—কুদ্দাল:
কোল—ক্রোড়ম্
কৈতর (পায়রা)—পারাবত:

খ

খৈ—লাজা:
খৈচুর—লাজমোদক:
খএর—খদির:
খট্‌কা—সন্দেহ:
খন্তা—খনিত্রম্
খাঁচা—পিঞ্জরম্
খাজনা—কর:
খাজা—ফেনিকা
খেঙরা—সম্মার্জনী
খাজুর—খর্জুরম্
খাট্—খট্বা
খাট—খর্ব্ব:
খাটাস—বনবিড়াল:
খাটী—অকৃত্রিমম্
খাড়া—দণ্ডায়মান: [খড়্গ:]
খাত—পরিখা
খড়গোশ—শশক:
খড়ম—কাষ্ঠ পাদুকা
খড়ি—কঠিনী
খুড়ন—খননম্
খুটা—স্তম্ভ:
খুঁটী—স্থূণা
খুড়া—খুল্লতাত:
খুড়ী—পিতৃব্যপত্নী
খুঁৎ—ত্রুটি:
খুদ—তণ্ডুলকণা, ক্ষোদ:
খুন—প্রাণহত্যা
খুরা—খুর:
খেক্‌শিয়ালী—উল্কামুখী
খেদান—অপসারণম্
খেসারী—ত্রিপুট:
খোকা—শিশু:

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

খাতক—অধমর্ণঃ
খানিক—কিয়দংশঃ
খামার—খল্যা
খিচন—আক্ষেপঃ
খিচুড়ি—সূপান্নম্
খিড়কি—পক্ষদ্বারম্
খিল—অর্গলম্
খিলি—পুটিততাম্বূলম্[বীটিকা]
খোড়ল—কোটরম্
খোঁড়া—খঞ্জঃ
খোঁপা—কবরী
খোয়া—নষ্টঃ [বিঘটিতঃ]
খোল—মৃদঙ্গম্
খোলস—নির্মোকঃ
খোলা—কদলীত্বক্ ইত্যাদি

গ

গজর গজর—অব্যক্তগর্জ্জনম্
গজ—পরিমাণদণ্ডঃ
গণ্ডগোল—কলহঃ
গচ্ছিত—ন্যাসঃ
গম—গোধূমম্
গরু—গৌঃ
গর্দ্দানা—গলদেশঃ
গলা—কণ্ঠঃ
গল্প—উপকথা
গাঁথন—গ্রন্থনম্
গা—গাত্রম্
গাই—গাভী
গাইল—কটূক্তিঃ
গড়—দুর্গঃ
গড়ন—গঠনম্
গাবগাছ—তিন্দুকঃ
গুড়্মুড়া—গুল্ফঃ
গুড়া—চূর্ণম্
গুজ্রী—অন্দূঃ
গুজব—কিংবদন্তী
গুণপণা—নিপুণতা
গুতা—আঘাতঃ
গুমঠান—নির্ব্বাতোষ্মা
গুমর—অহঙ্কারঃ
গুয়া—পূগম্
গোঁয়ার—ক্রোধনঃ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

গাছ—বৃক্ষঃ
গাছড়া—উদ্ভিজ্জৌষধম্
গাজন—শিবোৎসবঃ
গাঁজা—গঞ্জিকা
গাড়ী—শকটঃ
গাদ—মলম্
গাদান—পূরণম্
গাধা—গর্দ্দভঃ
গামছা—গাত্রমার্জ্জনী
গাল—গণ্ডঃ
গোচ—গুচ্ছম্
গোছাল—সংগ্রাহকঃ, দক্ষঃ
গোজ—কীলকম্
গোদ—শ্লীপদম্
গোঁপ—গুম্ফঃ
গোবর—গোময়ম্
গোমর—রহস্যম্
গোয়ালা—গোপঃ
গোলাম—ক্রীতদাসঃ
গোসা—ক্রোধঃ

ঘ

ঘড়ী—সময়যন্ত্রম্
ঘর—গৃহম্
ঘাইল—ক্ষতোৎপাদনম্
ঘসি—করীষম্
ঘাট—ঘট্টঃ
ঘাটলা—সোপানম্
ঘাড়—কৃকাটিকা
ঘানি—তৈলযন্ত্রম্
ঘাম—ঘর্ম্মঃ
ঘামাচি—ঘর্ম্মবিচর্চ্চিকা
ঘাস—যবসঃ
ঘরামী—স্থপতিঃ
ঘা—ক্ষতম্
ঘুম—নিদ্রা
ঘুস—উৎকোচঃ
ঘেটু—ঘণ্টাকর্ণঃ
ঘেরণ—পরিবেষ্টনম্
ঘোটন—পেষণম্
ঘোটনা—পেষণদণ্ডঃ
ঘোড়া—অশ্বঃ
ঘোপ—গুপ্তস্থানম্
ঘোমটা—অবগুণ্ঠনম্

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ঘি—घृतम्
ঘুঘু—वनकपोतः
ঘুচন—निवृत्तिः
ঘোল—तक्रम्
ঘোলা—आविलम्

চ

চক্‌চক্—उज्ज्वलम्
চক্—समचतुष्कोणं,विपणिस्थानम्
চড়ক—शिवोत्सवः
চড়ন—आरोहणम्
চৌকি—खट्टिका
চৌকির পায়া—खुरः [पादः]
চড়াও—अभ्यापतनम्
চড়ুই—चटकः
চতুরালি—चतुरता
চরকা—चरकः [सूत्रयन्त्रम्]
চাঁচর—वसन्तोत्सवः
চাঁদ—चन्द्रमाः
চাঁদা—चन्द्रातपः
চাঁদি—तांबुकम्, रौप्यम्
চাঁদনী—ज्योत्स्ना
চাঁপা—चम्पकम्
চাকচিক্য—भास्वरत्वम्
চন্দ্রহার—काञ्ची
চম্‌কান—चमत्कारः
চর—पुलिनम्
চস্‌মা—चक्षुस्त्राणम्
চষণ—कर्षणम्
চাঁই—श्रेष्ठः
চাউল—तण्डुलम्
চাউলের কুড়—किंशारुकः
চাওন—प्रार्थना [इष्टिः]
চাঁচ—चञ्चा
চাল—पटलम्
চাল্‌তা—भव्यम्
চালন—चालनी
চিঙ্‌ড়ী—चिलिचिमः
চিঠি—पत्रिका
চিড়া—चिपिटकः
চিতল—चित्रफलकः

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

চাকন—রাসনিকপরীক্ষণম্
চাকর—ভৃত্যঃ
চাকরী—দাসত্বম্
চাকরাণী—দাসী
চাকা—চক্রম্
চাঙ্গা—প্রাপ্তবলঃ
চাটন—অবলেহনম্
চাটু—চাটুঃ
চাঁড়াল—চণ্ডালঃ
চাঁড়ালের ঘর—পক্কণঃ
চাদর—উত্তরীয়ম্
চাপড়—চপেটাঘাতঃ
চাবী—কুঞ্জিকা
চামচা—স্রুক্
চাম—ত্বক্
চামচিকা—চর্ম্মচটিকা
চামার—চর্ম্মকারঃ
চোকান—নির্ব্বাহণম্
চোখের মণি—কনীনিকা
চোঙ্গ—বংশখণ্ডম্
চোট—আঘাতঃ
চোনা—গোমূত্রম্

চিনন—পরিচয়ঃ
চিনি—জানামি [শর্করা]
চিল—চিল্লঃ
চিলাকোটা—শিরোগৃহম্,বলভি
চুক—ভ্রমঃ
চুকান—নির্ব্বাহঃ
চুকা—অম্লঃ
চুপ—মৌনম্
চুম্বক—আকর্ষকঃ
চুরি—চৌর্য্যম্
চুল—কেশঃ
চুলকনা—কণ্ডূঃ
চুলকান—কণ্ডূয়নম্
চূণ—চূর্ণঃ
চূণকাম—সৌধলেপনম্
চূণারী—চূর্ণকারঃ
চেলা—কাষ্ঠখণ্ডম্ [শতপদী]
চোক—নেত্রম্
চৌকী—চতুষ্কম্
চৌকীদার—যামিকঃ
চৌপল—সমকোণঃ
চৌপারী—চতুষ্পাঠী

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

छ

ছউদ্—किलासम्
ছড়ান—विक्षेपणम्
ছড়ি—यष्टिः
ছন্‌ছন্—चित्तविकृतिः
ছা, ছানা—शावकः
ছাঁচ—प्रतिमूर्त्तियन्त्रम्
ছাটন—वर्ज्जनम्
ছাড়ন—परित्यागः
ছারপোকা—मत्कुणः
ছাতা—छत्रम्
ছাতু—शक्तुः
ছাদ—छदिः
ছানা—आमिक्षा
ছাপ—मुद्रणम् [परिष्कृतम्]
ছাল—वल्कलम्
ছি—अवज्ञोक्तिः, धिक्
ছিটা—बिन्दुः
ছিনন—बलापहरणम्
ছেনাল—असती [पांशुला]
ছিপি—छादकः
ছিমড়া—शिम्बी
ছিলা—मौर्व्वी
ছুরি—छुरिका [नवीना]
ছুকরী—कुमारी
ছুঁছো—छुछुन्दरी
ছুটন—धावनम्
ছুটী—अवकाशः
ছুড়ন—निक्षेपणम्
ছুতর—रथकारः, सूतः
ছুলি—किलासम्
ছেদা—छिद्रम्
ছেনী—व्रश्चनः
ছেব্‌লা—गाम्भीर्य्यहीनः
ছেলে—पुत्रः
ছোকরা—कुमारः
ছোপ—वंशक्षेत्रम्
ছোলা—चणकः
ছোবল—सर्पादीनां दंशनम्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

জ

জড়সড়—সঙ্কুচিত:
জড়ান—বেষ্টনম্
জমি—ভূমি:
জরিমানা—অর্থদণ্ড:
জহ্লাদ—ঘাতক: [ঘাতুক:]
জহুরি—মণিবিৎ
জাঙ্গাল—সেতু:
জাতা—ঘরট্ট:
জাঁতি—শঙ্কুলা
জাদু—ইন্দ্রজালমোহ:
জানালা—গবাক্ষ:
জাফরান্—কুঙ্কুমম্
জামা—কঞ্চুকম্ [উরশ্ছদ:]
জামাই—জামাতা
জামিন—প্রতিভূ:
জামীর—জম্বীরম্
জায়গা—স্থানম্
জায়ফল—জাতীফলম্
জারী—প্রচার:
জালা—মৃৎকাণ্ডোলম্
জালিয়া—ধীবর:
জিনিষ—বস্তু
জিরান—বিশ্রাম:
জিলিপী—কুণ্ডলিনী
জুতা—চর্ম্মপাদুকা
জুল্ফি—কাকপক্ষ:
জেল—কারা
জেঠা—জ্যেষ্ঠতাত:
জেঠি—জ্যেষ্ঠতাতপত্নী
জোক—জলৌকস:
জোনাকীপোকা—খদ্যোত:
জোল—প্রণালী

ঝ

ঝাউ—পিচুল:
ঝক্মারী—অনুতাপ:
ঝগড়া—বিবাদ:
ঝগড়াটিয়া—কলহপ্রিয়:
ঝট্ পট্—অতিশীঘ্রম্
ঝড়—ঝঞ্ঝাবাত:
ঝরণা—নির্ঝর:
ঝাজ—ঝর্ঝর:

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ঝঞ্জাট—कार्य्यविक्षेपः
ঝট্—क्षिप्रम्
ঝাঁপান—लम्फप्रदानम्
ঝাট—परिष्क्रिया
ঝাপ্সা—अस्पष्टदर्शनम्
ঝাপী—पेटिका
ঝাল—कटुः
ঝি—दासी
ঝিঝি—झिल्लिः
ঝাঁটা—सम्मार्ज्जनी, शतमुखी
ঝারী—भृङ्गारः
ঝিঙা—झिङ्गिका
ঝিনুক—शुक्तिः
ঝুনা—परिपक्वः
ঝুলী—भिक्षावस्त्रम्
ঝোপ—कुञ्जम्
ঝোল—यूषम्

ট

টক্—अम्लः
টক্কর—आघातः
টনক—दृढ़म्
টলমল—अधीरः
টাক্—इन्द्रलुप्तः
টাকরা—तालुदेशः
টাকশাল—टङ्कशाला
টাকা—टङ्कः [मुद्रा]
টাকুয়া—तर्कुः
টাটু—क्षुद्रकायाश्वः
টানন—आकर्षणम्
টাবালেবু—बीजपूरम्
টিক্টিকী—ज्येष्ठी [वल्ली]
টুকরা—अंशः
টুটি—गलनाली
টুপী—शिरस्त्राणम्
টেঙ্গরা—त्रिकण्टकः
টেড়া—केकरः

ঠ

ঠক—वञ्चकः
ঠাই—स्थानम्
ঠাট্টা—परिहासः
ঠাণ্ডা—शीतलम्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ঠাওর—বিবেচনা
ঠাকুরদাদা—পিতামহঃ
ঠাকুরমা—পিতামহী
ঠিক্—নিশ্চিতম্
ঠিকা—অস্থায়ী
ঠিকানা—নিদর্শনম্
ঠুঁঠা—ছিন্নশাখঃ, স্থাণুঃ
ঠুলী—পত্রভাজনম্ (পুটম্)
ঠাম—ভঙ্গী
ঠার—ইঙ্গিতম্
ঠাসন—যাতনম্ (অবষ্টম্ভঃ)
ঠেঁঠা—বিরুদ্ধতর্কী, বিতর্কী
ঠেক—অবলম্বনম্
ঠেঙ্গা—লগুড়ঃ (কীলকম্)
ঠেস্—পৃষ্ঠাবষ্টম্ভঃ (নিন্দা)
ঠোঁট—চঞ্চুঃ

ড

ডগা—অগ্রভাগঃ
ডঙ্কা—দুন্দুভিঃ
ডর—ভীতিঃ
ডাইল—সূপঃ
ডাউক—দাত্যূহঃ
ডন—ব্যায়ামঃ
ডাকন—আহ্বানম্
ডাকপিওন—পত্রবাহকঃ
ডাকাত—দস্যুঃ
ডাকাতি—অভিগ্রহঃ
ডাঙ্গা—নির্জ্জলস্থানম্
ডাক—দ্রোণকাকঃ
ডানা—পক্ষঃ
ডাল—শাখা
ডালা—ডল্লকম্
ডুলী—বংশশিবিকা
ডাঁশ—দংশঃ
ডেয়েপিঁপড়া—পিপীলিকা
ডোল—কণ্ডোলঃ
ডোবা—পল্বলঃ

ঢ

ঢক—তোলম্
ঢল—ক্রমনতম্
ঢিপী—মৃত্তিকাস্তূপঃ
ঢিল—লোষ্টম্

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ঢলঢলিয়া—शिथिलम्
ঢাক—ढक्का
ঢাকন—आच्छादनम्
ঢাল—चर्म्मफलकः
ঢেড়া—घोषणा
ঢেমনা—जारः
ঢেমনী—उपपत्नी
ঢের—अधिकः
ঢিলা—श्लथम्
ঢেউ—ऊर्म्मी
ঢেউক—उद्गारः
ঢেঙ্গ—धूर्त्तः
ঢেলা—लोष्टम्
ঢোঁড়া—जलव्यालः
ঢোরণ—अनुसन्धानम्

ত

তক্তা—काष्ठफलकः
তখন—तस्मिन् [तदा]
তজবিজ—विचारः
তঞ্চক—प्रतारकः
তফাৎ—दूरम्
তবু—तथापि
তরকারী—व्यञ्जनोपकरणम्
তরমুজ—तोयोदरम्
তাওয়া—अङ्गारधानी
তাঁত—वस्त्रयन्त्रम्, [तुरी]
তাঁতঘর—गर्त्तिका
তাঁতি—तन्तुवायः
তাঁবু—पटमण्डपः
তামাসা—उपहासः [सम्मदः]
তামাকু—ताम्रकूटम्
তার—तस्य, लौहगुणः
তালি—करतालिका
তালেবর—धनाढ्यः
তালা—तालकम्
তিতা—तिक्तः
তিলি—तैलिकः
তীরন্দাজ—बाणक्षेपणनिपुणः
তুরী—अङ्गुलीशब्दः [छोटिका
তুলী—तूलिका
তেঁতুল—तिन्तिड़ी
তেজপাতা—त्वकपत्रम्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

তাই—তস্মাৎ [তত্, করতালিঃ]
তাকান—দর্শনম্
তাড়—কেয়ূরম্
তাড়া—আগ্রহঃ
তামা—তাম্রঃ
তেলের কুপা—কুতুপঃ
তেহাই—তৃতীয়াংশঃ
তোৎলা—অস্পষ্টভাষী
তোলা—তোলকম্
তোষক—তূলিকা

থ

থই—তলস্পর্শঃ
থরথর—বেপথুঃ
থলথলিয়া—শিথিলম্
থলিয়া—গোণী
থলো—গুচ্ছঃ
থাবরা—চপেটাঘাতঃ
থুতনি—চিবুকঃ
থুথু—নিষ্ঠীবনম্
থৈথৈ—প্লাবিতম্
থোওন—স্থাপনম্ [ন্যাসঃ]

দ

দই—দধি
দখল—অধিকারঃ
দড়ি—রজ্জুঃ
দরকার—প্রয়োজনম্
দরজী—সৌচিকঃ
দরদর—অনবরতপতনম্
দরজা—দ্বারম্
দরবার—বিচারালয়ঃ
দলিল—লেখঃ
দহরম—মিত্রতা
দাড়িম্ব—বীজপূরকঃ
দাঁতাল—দন্তী
দাগাবাজ—কৃতঘ্নঃ
দাগী—কলঙ্কী
দাদ—দদ্রুঃ
দাদা—জ্যেষ্ঠভ্রাতা
দারচিনি—গুড়ত্বক্
দালান—অট্টালিকা
দালাল—ক্রয়বিক্রয়যোজকঃ
দিগদার—বিরক্তিকরঃ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

দা—दात्रम्
দাই—धात्री
দাঁড়—विपणी
দাঁড়—दण्डः
দাঁড়কাক—द्रोणकाकः
দাড়া—व्यवहारः, जलवर्त्म
দাঁড়ি—श्मश्रु
দেনদার—ऋणग्रस्तः
দেনা—ऋणम्
দেরুখা—दीपाधारः
দোকান—विपणी

দুন্দিয়া—धूर्त्तः [दुर्द्धर्षः]
দুধের ছেলে—स्तनन्धयः
দিয়াশলাই—दीपशलाका
দেউলিয়া—निःस्वः
দেউরী—बहिर्द्वारम्
দেওন্—दानम्
দেখা—दर्शनम्
দোকানী—आपणिकः
দোয়াত—मस्याधारः
দৌড়ধাপ—इतस्ततोधावनम्
দৌড়ন—धावनम्

ধ

ধনিয়া—छत्रा
ধাই—धात्री
ধাওন—अतिधावनम्
ধাঙর—खलपूः
ধলা—श्वेतः
ধান—धान्यम्

ধামাধরা—चाटुकारः
ধূম—समारोहः [धूमः]
ধূলা—धूलिः
ধোকা—संशयः
ধোপা—रजकः
ধোঁয়া—धूमः

ন

নকসা—प्रतिबिम्बः
নড়—नटः
নতা—छलम्

নাক—नासिका [स्वर्गः]
নাটাই—नाटाम्रः
নাড়া—धान्यतृणम्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ননদ—ননান্দা
ননী—নবনীতম্
নফর—ভৃত্যঃ
নবাব—সম্রাট্প্রতিনিধিঃ
নর্দ্দমা—পয়ঃপ্রণালী
নমুনা—নিদর্শনম্
নরম—কোমলম্
নাই—নাভিঃ [নাস্তি]
নিরালা—নির্জ্জনম্
নিরীখ—মূল্যনির্দ্ধারণম্
নুদি—তুন্দিলতা
নেংটা—নগ্নঃ
নেক্ড়া—চীরম্
নাতি—নপ্তা [পৌত্রঃ, দৌহিত্রঃ]
নারাজ—অসম্মতঃ
নালা—প্রণালী
নিখুঁত—দোষশূন্যম্
নিপ্থি—নারাচী
নিভাজ—নিষ্কৃন্তিমস্
নিম—নিম্বঃ
নিমক্—লবণম্
নেক্ড়ে বাঘ—তরক্ষুঃ
নেড়া—মুণ্ডিতঃ
নেবু—জম্বীরম্
নেশা—মত্ততা
নোড়া-উপলখণ্ডম্[শিলাপুত্রী]

প

পচাল—বহুভাষণম্
পথ—পন্থাঃ
পয়সা—তাম্রমুদ্রা
পরগাছা—বৃক্ষরুহা
পরদা—যবনিকা
পলিতা—দশা
পা—পদম্
পাঁউরুটি—অপূপঃ
পাতিলেবু—লিম্পাকম্
পাতিশিয়াল—জম্বুকঃ
পাথর—প্রস্তরঃ
পানা—শৈবালম্
পানিকৌড়ি—জলকাকঃ
পালকি—শিবিকা
পালা—তুলাদণ্ডঃ
পালান—ভধঃ, [পলায়নম্]

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

পাকঘর—महानसम्
পাখা—तालवृन्तम्, पक्षः
পাগলা কুকুর—अलर्कः
পাটনী—वहृजीवी
পাট্টা—पट्टम्
পাঠা—छागः
পাণ—ताम्बूलम्
পাণের বাটা—ताम्बूलकरङ्कः
পাতকূয়া—अन्धकूपः
পাতা—पत्रम्
পিতল—पित्तलम्
পিপড়া—पिपीलिका
পিসীর ছেলে—पितृष्वस्रेयः
পুকুর—पुष्करिणी
পুটি—शफरी
পায়স—परमान्नम्
পায়রা—कपोतः
পায়রার টঙ—विटङ्कः
পাশার ঘুঁটি—शारिः
পাহাড়—पर्वतः
পাহারাওয়ালা—प्रहरी
পিক্‌দানী—पतद्ग्रहः
পিঠ—पृष्ठम्
পিঠা—पिष्टकम्
পিণ্ডীখেজুর—पिण्डखर्जूरम
পেঁচা—पेचकः
পেট্‌রা—मञ्जूषा
পেট—उदरम्
পেয়াজ—पलाण्डुः
পেয়ারা—पारेवतम्

ফ

ফড়িঙ্—पतङ्गः
ফলই—फलकी
ফাউক—पटवासः
ফাঁদ—कूटयन्त्रम्
ফুল—पुष्पम्
ফুলকী—स्फुलिङ्गः
ফুটী—स्फुटिका (उर्वारुकम्)
ফেনা—डिण्डीरः
ফোটা—विन्दुः
ফৈরাদী—अर्थी (प्रतिवादी)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ভ

ভগিনীর ছেলে—ভাগিনেয়:
ভাই—ভ্রাতা
ভাঙ্—সংবিদা
ভাট—ভট্ট:
ভাত—অন্নম্
ভীমরুল—ভৃঙ্গরোল:
ভেবাচেগা—কর্ত্তব্যবিমূঢ়:
ভোর—আসন্ন: (প্রভাতম্)

ম

মই—অধিরোহণী
মটর—বর্ত্তুল:
মতিচূর—মুদ্গমোদক:
মদ—সুরা
ময়রা—মোদক:
ময়দা—সমিতা
ময়না—মদনক:
মাছ—মৎস্য:
মাছরাঙা—মৎস্যরঙ্ক:
মাছি—মক্ষিকা
মাটী—মৃত্তিকা
মাড়—নি:স্রাব:
মাড়ি—মাঢ়ি:
মাথা—মস্তকম্
মাদুর—মন্দুরা
মা—মাতা
মরা—মৃত:
মশা—মশক:
মশান—বধ্যভূমি:
মুসূরি—মসূরম্
মাকড়সা—লূতা
মাকুন্দা—তূবর:
মাখা—মর্চ্চিতম্
মিয়াদ—কারাদণ্ড: (পণসময়:)
মিঠা—মিষ্টম্
মিছরি—মৎস্যণ্ডিকা
মিসি—দন্তাঞ্জনম্
মুগ—মুদ্গ:
মুটে—ভারবাহ:
মেজে—কুট্টিম:
মেড়া—মেষ:
মেয়ে—কন্যকা

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

মামা—मातुलः
মালগুজারী—करः
মাষকলাই—माषः
মাষা—माषः
মাসীর ছেলে—मातृष्वस्रेयः
মাসুল—शुल्कम्
মাস্তুল—कूपकः
মাহিনা—भृतिः
মাহুত—हस्तिपकः
মোচ—गुम्फः
মোজা—अनुपदीना
মোয়া—मोदकः
মোড়া—वेत्रासनम्
মামলা—अभियोगः
মোহনভোগ—लप्सिका
মৌমাছি—मधुमक्षिका
মোহর—दीनारः

य

যজ—विचारकः
যা—याता
যাউ—यवागूः
যাও—व्रज
যাওন—गमनम्
যাঁতা—पेषणी

र

রাঙ—रङ्गः
রাতদিন—रात्रिन्दिवम्
রুটি—अपूपः (रोटिका)
রুমাল—कर्पटः
রাজ—महास्थपतिः
রুই—रोहितः
রেল—लौहवर्त्म
রেহাই—क्षमा

ल

লগী—क्षेपणी
লাউ—अलावुः
লাঠি—यष्टिः
লিচু—लिचुलम्
লেজ—पुच्छः
লেবু—जम्बीरम्

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

লাড়ু—লড্ডুকম্

লাফ—লম্ফঃ

লাল—রক্তম্

লোড়া—শিলাপুত্রকঃ

লোণা—লবণাক্তম্

লোহা—লৌহম্

ব

বইঠা—অরিত্রম্

বকাট—দুশ্চরিত্রঃ

বচসা—বাদানুবাদঃ

বঁটী—বন্টিকা

বন্দুক—নালীকম্

বড়ই—বদরিকা

বড়শী—বড়িশম্

বড়ী—বটী

বয়রা—বধিরঃ বিভীতকী

বাকল—বল্কলম্

বাকী—অবশিষ্টম্

বাগান—উদ্যানম্

বাঘ—ব্যাঘ্রঃ

বাতি—বর্ত্তিকা

বালি—সিকতা

বাইন—বর্ম্মিঃ

বাইলা (মাছ)—নলমীনঃ

বায়না—সত্যঙ্কারঃ

বাছুর—বৎসঃ

বাজকুড়াল—উৎক্রোশঃ

বাজনা—বাদ্যম্

বাজার—আপণঃ

বাজী—খধূপঃ

বাটুল—দ্রুতদলঃ

বাড়ী—বাটী

বাণিয়া—বণিক্

বাতাস—বায়ুঃ

বাদাম—বাতাদঃ (নৌকাপটঃ)

বানর—মর্কটঃ

বামন—ব্রাহ্মণঃ (খর্বঃ)

বারেন্দা—অলিন্দঃ

বালা—বলয়ঃ

বেগুন—বার্ত্তাকুঃ

বেঙ—ভেকঃ

বেজী—নকুলঃ

বেড়া—বৃতিঃ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

বাঁশী—বংশী
বাঁশের কঞ্চি—বংশকুম্বিকা
বাসা—কুলায়: (বাসস্থানম্)
বাহোবা—সাধুবাদ:
বিঘত—প্রাদেশ:
বিছা—বৃশ্চিক:
বিছানা—শয্যা
বিষ্ঠা—পুরীষম্
বিষফোড়া—বিস্ফোটক:
বিড়াল—মার্জার:
বুক—বক্ষ:
বেগার—অবৈতনিক:
বেতন—ভৃতি:
বেদাড়া—কাপথ:
বেল—শ্রীফলম্
বোকা—মূর্খ:
বোতল—কাচকূপী
বোয়াল—পাঠীন:
বাবা—পিতা
বাবু—ভোগী
বাঁশ—বংশ:
বোল্তা—বরট:
বোবা—মূক:
বৌ—বধূ:

শ

শকুন—গৃধ্র:
শরপুটী—মহাশফর:
শরা—শরাব:
শর্দ্দি—প্রতিশ্যায়:
শরালি—সারস:
শাঁখারি—শাঙ্খিক:
শাচান—শ্যেন:
শুঁশু—শিশুমার:
শামুক—শম্বূক:
শালা—শ্যালক:
শাশুড়ী—শ্বশ্রূ:
শিং—শৃঙ্গী
শিকড়—মূলম্
শিম—শিম্বী
শিমুল—শাল্মলী
শেওতি—শ্রীণিকা

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

শুঁড়ি—শৌণ্ডিকঃ
শূয়াপোকা—বৃশ্চিকঃ
শের—কুড়বঃ
শোওন—শয়নম্

ষ

ষাইট—ষষ্টিঃ (ষষ্টিঃ)
ষাঁড়—ষণ্ডঃ

স

সই—সখী
সনদ—নিয়োগপত্রম্
সরিষা—সর্ষপঃ
সরু—সূক্ষ্মঃ
সহিস—অশ্বসেবকঃ
সাপ—সর্পঃ
সাবান—সর্ব্বক্ষারঃ
সারণ—সমাপনম্
সিদ্ধ চাউল—সিন্নতণ্ডুলঃ
সিলাই—সীবনম্
সাজ—সজ্জা
সাজী—করণ্ডিকা
সাড়াশী—সন্দংশঃ
সাত—সপ্ত
সোজা—ঋজুঃ
সীসা—সীসকঃ
সূচ—সূচী
সূতা—সূত্রম্
সেকরা—স্বর্ণকারঃ
সোণা—সুবর্ণম্

হ

হক্—প্রকৃতম্
হলুদ—হরিদ্রা
হাকিম—বিচারকঃ
হাঙ্গর—গ্রাহঃ
হাঁচি—ক্ষুত্
হাট—আপণঃ, হট্টঃ
হাড়—অস্থি, হড্ডম্
হাঁড়ী—স্থালী, হাণ্ডী
হাড়—হড্ডকঃ
হাত—হস্তঃ
হাতা—দর্ব্বী
হাইল—কর্ণঃ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

হাটু—জানু
হাড়গিলা—কঙ্কঃ
হাতী—হস্তী
হামেসা—সর্ব্বদা
হাবাতে—নষ্টাশঃ
হাতুড়ে—অশিক্ষিতঃ
হাঁস—হংসঃ
হিঙ্গ—হিঙ্গুঃ
হিজুল—হিজ্জলঃ
হিজড়া—নপুংসকঃ
হুকুম—আদেশঃ

ক্ষ

ক্ষেৎ—ক্ষেত্রম্
ক্ষেপা—উন্মত্তঃ

সমস্যাপূরণম্

পূর্ব্বে যে সকল বাক্যবৃদ্ধি বাক্যসংক্ষেপ প্রভৃতি প্রদর্শিত হইয়াছে, তাহাও এক প্রকার সমস্যাপূরণ বলা যাইতে পারে। সমস্যাপূরণশিক্ষার্থী প্রথমতঃ বাক্যবৃদ্ধিপ্রভৃতি লিখিত প্রণালী-গুলির চর্চ্চা করিবে। পরে সরল সরল অনুষ্টুপ্ ছন্দের শ্লোকের শেষ চরণ সমস্যা ধরিয়া অপর তিন চরণ করিয়া পূরণ করিবে। সমস্যাটীর অর্থ ভালরূপ বুঝিয়া লইয়া যাহাতে উহার অর্থ ও ভাবাদি সংলগ্ন হইতে পারে, এইরূপ অপর চরণত্রয় রচনা করিবে। সাধারণতঃ চতুর্থ চরণ কিংবা তাহার কিয়দংশই সমস্যা হয়। কোন কোন স্থলে অন্য চরণ বা তদংশও সমস্যা হইয়া থাকে। ইহার প্রণালী বহুবিধ। তাহা এই ক্ষুদ্র পুস্তকে বিস্তৃতরূপে প্রদর্শিত হওয়া অসম্ভব। বালক-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

বৃন্দের কৌতূহলবর্দ্ধনার্থ কয়েকটী মাত্র সমস্যা নিম্নে প্রকাশিত হইল।

যেমন 'গচ্ছতি' এই পদটীকে কারকাদির সংযোগে একটী বিস্তৃতবাক্যে পরিণত করা যায়, সমস্যাপূরণব্যাপারও তদ্রূপ একটী চরণ বা তাহার অংশ;—অবশিষ্ট প্রয়োজনীয় পদগুলির রচনাপূর্ব্বক সংলগ্ন করা। মনে কর—"স দেবঃ পাতু বঃ সদা" এইটী যেন সমস্যা হইল,এখানে দেখা যাইতেছে--'সঃ' এই পদটী যদ্ শব্দের অপেক্ষা করিতেছে। অতএব এখানে কয়েকটী সার্থক বিশেষণের সহিত যদ্শব্দটী বসাইয়া অপর তিনটী চরণ রচনা করিলেই সম্পূর্ণ শ্লোক হয়। কিংবা 'সঃ' এইটী প্রসিদ্ধার্থক তদ্ শব্দ স্বীকার করিয়া 'দেবঃ' অথবা 'বঃ' এই পদের কতকগুলি বিশেষণ বসাইয়া আর তিন চরণ রচনা করা যায়। উদাহরণ—

समस्या—"स देवः पातु वः सदा।"

पूरण—सृष्टिस्थितिविनाशानां कर्त्ता यो जगतां स्वयम्।
अमूर्त्तिरपि सन्मूर्त्तिः "स देवः पातु वः सदा।" (१)

"—" এইরূপ চিহ্নের মধ্যস্থিত চরণগুলি সমস্যা, অপরাপর চরণ দ্বারা সেইগুলি পূর্ণ করা হইয়াছে বুঝিতে হইবে।

भालनेत्रानलोद्भ्रान्तकज्जलौघमलीमसः।
महेश्वरशिरःस्थायी "सोमः श्यामतमोऽभवत्॥"
"पूर्व्वो ह्रस्वः परो दीर्घः" स्नेहः सञ्जायते सताम्।
असतां विपरीतस्तु स एव परिदृश्यते॥ (२)

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

समस्यापूरणोपायः

अथ संक्षेपतो वक्ष्ये समस्यापूरणे विधिम् ।

कल्पादिसिन्धु-लघुभिर्गुरुता, युगान्त-
दूरावलोकगुरुभिर्लघुता विधेया ।
विष्णोरधोमुखतया प्रतिबिम्बतश्च
स्याद्वैपरीत्यमुदकादिषु युग्मता च ॥

उदाहरणानि यथा—

कल्पादिकाले गुरुदेहदेश्या पिपीलिका राजति शैलतुल्या ।
तदा लघीयानपि गण्डशैलः श्रीखण्डशैलस्य तुलां तनोति ।

सिन्धुना यथा—

अहो पयोराशिनिवासियादः पिपीलिका राजति शैलतुल्या ।
सदा जनानां महतां हि सङ्गो धत्ते लघूनामपि गौरवाणि ॥
माहात्म्यं तस्य पाथोधेर्व्याख्यातुं शक्यते कथम् ।
सापि यत्र विभात्यन्तःकोटिका कुन्तिसन्निभा ॥
यावन्तो दृश्यन्ते नरकरिभुजगादयः स्थले जीवाः ।
तावन्तः सलिलेष्वपि जलपूर्वास्तेऽपि निर्दिष्टाः ॥ इत्यादीनि ।

कृष्णरक्तादयो वर्णाश्चन्द्रेण श्वेताः क्रियन्ते । यथा—

उल्लसत्तुहिनज्योतिर्द्युतिविद्योतितोऽभितः ।
कैलासशैलसङ्काशः काशते विन्ध्यभूधरः ॥
जवापुष्पं जातिसमं सुवर्णं रजतप्रभम् ।
सुधाकरकरस्पर्शाद् भाति चन्दनवन्मसी ॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अन्धकारेण यथा—

कैलासो विन्ध्यसङ्काशः कर्पूरः कज्जलप्रभः।
जपातापिच्छगुच्छश्रीस्तमता भाति लिम्पिता॥

कृष्णश्वेतादयो वर्णा बालार्केण प्रथमं रक्तास्तदनु पीताः क्रियन्ते, यथा—

कज्जलं कुङ्कुमच्छायं जातिपुष्पं जपाशनम्।
सुवर्णं पद्मरागश्रि-प्रभातार्कप्रभावृतम्॥

इत्थमन्यत्रापि वर्णविपर्य्ययः कार्य्यः। यदा पुनश्चन्द्रादीनामेव वर्णविपर्य्ययश्चिकीर्षितस्तदा कीर्त्यादिभिरेतेषामेव वर्णविपर्य्ययः।

स्वर्धुनीसलिलसन्निधिस्फु रत्तावकीनघनकीर्त्ति मण्डलैः।
विस्तृतैस्त्वजगति क्ष्मापते! "शीतरश्मिरिव वीक्ष्यते रविः॥

अन्यवस्तूनां यथा—

मेदिनीदयित तावकैर्यशःसञ्चयैरुपचितैः समन्ततः।
क्षीरनीरनिधिसोमकोमलै"र्जायते रजतकान्ति कज्जलम्॥"

"हिमाद्रिसदृशो मेरुर्भाति कुङ्कुमविन्दुवत्।"
भूमिपाल भवत्कीर्त्या शुभ्रिते भुवनत्रये॥ इत्यादि।

शोकेन मधुना घातेन वियोगेन मादेन च समस्या पूर्य्यते। यत एभिर्व्याप्तः पुमान् विपरीतमाचरति। स्वप्नेऽघटमानमपि घटते। भो! ज्योतिषकलाकुशल! स्वप्ने दृष्टमिदं त्वं विचारये-त्यादि कल्पनीयम्। इन्द्रजालेन मतिभ्रमेण चित्रेण च। भोः! चित्रकर! ईदृक् चित्रं लिखेति वाक्यं रचनीयम्। माययाऽपि

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विसदृशं सम्भाव्यम्, मणिमन्त्रौषधीनां प्रभावः। तपसापि सर्वं साध्यते। यतः "सर्वं हि तपसा साध्यं तपश्च दुरतिक्रमम्"।

निद्रामुद्रापरिचयलवान्मुद्रितानन्तचिन्ता
चित्ते चित्ते निभृतममृतज्योतिषि ध्यानधाम्नि।
प्रातः स्वप्ने ऽरुणकपिशितं प्राग्दिशैकोऽथ कस्मात्
"आकाशस्थं जलचरपदं दृष्टिहीनो ददर्श॥"

पदभङ्गेन यथा—

मृगात् सिंहः पलायते। मृगमत्तीति मृगात् सिंहविशेषणमेतत्, पलाय मांसाय, ते तव इत्यर्थः।

अयं मृगः समायाति "मृगात् सिंहः पलायते।"
इतो वेगात् पलायस्व त्वरितैस्त्वरितैः पदैः॥

शौर्य्यघोषणा वाञ्छितेन मनोगत्या पुण्येन दुर्घटमपि घटते। देवप्रसादेनासाध्यमपि साध्यते। यथा—

निःश्रीकोऽपि विभो विभातसमये पश्यत्यवश्यं पुमान्
यस्ते पद्मसमानमाननमसौ स्यादिन्दिरामन्दिरम्।
देहोल्लासि किमु सुमस्त्वदपरं यस्य प्रसादोद्भवैः
"मूको जल्पति संशृणोति बधिरः पङ्गुर्नरो नृत्यते॥"

प्रश्नोत्तरेण यथा—

कस्तूरी यायते कस्मात्? को हन्ति करिणां कुलम्?।
किं कुर्य्यात् कातरो युद्धे? "मृगात् सिंहः पलायते॥"

समस्यायां यत् साध्यं पदं तत् क्वचित् समासेन भिन्नं क्रियते। यथा—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कर्पूरपूरच्छविवादविद्यासंवावदूकद्युतिशुभ्रिताभ्रे ।
इन्दोर्न्न पदे्षितमोवितान "सूर्य्योदये रोदिति चक्रवाकी ।"

हाटकेश्वरनमस्कारेण पाताले स्वर्गलोकावतारः। जगत्प्रलयेन मर्त्त्यलोकावतारः। ग्रहास्तेन नभोलोकावतारश्च। यथा—

हाटकेश्वरयात्रायां शिवरात्रिमहोत्सवे ।
सुरेन्द्रादिभिरायातैः "स्वर्गं पातालमाययौ ॥" इत्यादि ।

अथ चित्रसमस्यायाः पूरणोपाय उच्यते
पदैः साधारणैरेव छन्दः सम्पूरयेद् यथा ॥

अशेषजनताचित्तचमत्कारनिकेतनम् ।
हरिसिन्धुस्फुरद्रोचिः केषां न कुरुते सुखम् ॥

स्फुरत्सौदामिनीकान्तबहुलश्लाघनीयभाः।
कलधौतरुगत्यन्तं कुरुते सुखसम्पदम् ॥

जनताविस्मयाधानं वसुधासुखकारणम् ।
महतां चक्रवालेन व्यतिभाति समन्ततः ॥

विशदच्छाययातीव विलसत्-प्राणिसौख्यकृत् ।
आश्चर्य्यशोला तनुरुक् तनुतेऽपचितिं सताम् ॥

सदा विलाससदनं निदानं परमश्रियाम् ।
महासुखलतावीजं नेत्रयोः कुरुते रतिम् ॥

विभाति विभुतास्थानं घनोपलसितोरुभाः ।
मनोरमप्रभावासः कलया लोकसौख्यकृत् ॥

हरिमातङ्ग-सच्छाय-रुचिःपरमभूषणम् ।
कस्यामोदैकहेतुर्न गोमण्डलविभूषणम् ॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

उद्दामविस्फुरत्कान्ति रुचिरं गवि भासते।
सदामोदपदं चित्रनिदानं हरिचारुभम् ॥
मनोहराकारतयातिरम्यता समुल्लसच्चारुकलानिकेतम्।
अशेषभूमीतलवर्त्तिसौख्यकृद्विलोचनानां कुरुते सुखावलीम् ॥

संस्कृतभाषया पत्रलिखन-प्रणाली

अथ राजपत्रादेः पदन्यासः—

महाराजाधिराजञ्च दानशौण्डं तथैव च।
तथा सच्चरितं योज्यं कल्पवृक्षादिकं न्यसेत् ॥
यथायोग्यानुसारेण तथैव गुणभेदतः।
राजपुत्रेषु सर्वेषु पदन्यासक्रमं विदुः ॥

अथ मन्त्रिपत्रस्य—

प्रवरं गुणभेदेन तथा सच्चरितादिकम्।
विन्यस्य विलिखेत् प्राज्ञो मन्त्रिपत्रे पदक्रमम् ॥

अथ पण्डितपत्रस्य—

संख्यावद्वन्दितपदं शास्त्रार्थनिपुणादिकम्।
पण्डितानाञ्च पत्रेषु विलिखेद् वै पदक्रमम् ॥

अथ गुरुपत्रस्य—

सांख्यसिद्धान्तनिपुणं सनमस्कारकं पदम्।
विन्यस्य विलिखेत् प्राज्ञो गुरुपत्रे पदक्रमम् ॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ स्वामिपत्रस्य—

प्रवर्य्यं सनमस्कारं प्राणप्रियादिकं पदम् ।
विन्यस्य विलिखेद् बाला स्वामिपत्रे पदक्रमम् ॥

अथ भार्य्यापत्रस्य—

प्राणप्रियापदं स्वाध्वीं तथा सच्चरितादिकम् ।
भार्य्यापत्रं लिखेद् विद्वान् पदक्रममनुत्तमम् ॥

अथ पुत्रपत्रस्य—

प्राणपुत्रपदं तद्वत्तथा सच्चरितादिकम् ।
आशीर्वचनसंयुक्तं पुत्रपत्रे पदक्रमम् ॥

अथ पितृपत्रस्य—

प्रभुवर्य्यं नमस्कारं तथा सच्चरितादिकम् ।
विन्यस्य विलिखेत् पुत्रः पितृपत्रे पदक्रमम् ॥

श्रीशब्दविन्यास-संख्या—

षड् गुरौ स्वामिनः पञ्च द्वे भृत्ये चतुरो रिपौ ।
श्रीशब्दानां त्रयं मित्रे एकैकं पुत्रभार्य्ययोः ॥

अथ राज्ञः प्रशस्तिः—

१। स्वस्ति गीर्व्वानचयचूड़ारत्नराजिरोचिश्चुम्बित-चन्द्रचूड़-चरणनखेन्दुवृन्दचन्द्रिकासन्दोहास्वादचतुरचेतश्चकोरवरविषम-समरसञ्चरत्प्रवलतरतुरगखुरपुटपटलदलितभूपृष्ठोत्तिष्ठद्भूयिष्ठधूलि-धाराधूसरित-सकलहरिदन्तर-प्रचण्ड-भुजदण्डभ्राजमानखरतरा-सिवित्रासितप्रत्यर्थिपृथ्वीपतिसार्थप्रार्थितानुकम्पा-सुधासम्पातानव-रतविद्वद्दारिद्र्यविद्रावणद्रविणराशिविश्राणनसमुपार्जितोर्जितयशो-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मरालावलिकवलित-वलिदधीचि-सञ्चितयशोमृणालजाल-भूपाल-कुलतिलकश्रीयुतमहाराजाधिराजेषु। अथवा—

२। स्वस्ति प्रचण्डदोर्दण्डखण्डखण्डितारिमण्डलमुण्डोन्मुक्त-मुक्तावलीमण्डित-संग्रामाङ्गनरिङ्गमाणानेक-वारण-वाहादि-काय-काण्डवक्रतरनक्रचक्रचंक्रमणदुरितक्रमणीयापगापतिप्रभूतयशश्चन्द्र-चन्द्रिकाद्योतविद्योतिताखिल-जगन्मण्डल-विविधद्रविणार्पणसन्तो-षितसूरिसमूहस्तूयमानावदातकीर्त्ति-नर्त्तकीनर्त्तनलीलालेपलेपित-गीति-धुरीणोर्वश्यादिवेश्याजनसविलासगीयमान-गुण-श्रवणान्दो-लिताखण्डश्रवणकुण्डलपरितः-प्रसर्पितप्रताप-तपनोत्तापितारातिततिसमध्यासित-निकुञ्जपुञ्जप्रस्तुतसौन्दर्य्यगाथाप्रमुदित-श्रीमन्-नारायणचरणकिङ्करश्रीयुतमहाराजदानशौण्डेषु।

अथ मन्त्रिप्रशस्तिः—

स्वस्ति श्रीमत्समस्तसामन्तसेवकनिर्वाहकेषु कोषगोक्षपिक्षषी-वनेगजवाजिग्टहपरिवारहर्षहेतुनीतिसेतुरक्षणनिपुणेषु अस्मद्-विश्वासैकनिकेतनेषु श्रीश्रीमन्त्रिप्रवरेषु आशीराशिनिवेदनकोऽयं वर्णभूतोऽत्रत्यं भव्यमावेदयन् तत्रत्यं भव्यम् अव्याहतमनुदिन-मनुक्षणं पृच्छति।

अथ गुरुप्रशस्तिः—

स्वस्ति श्रीनारायणपदपाथोरुहनिःसरन्मकरन्दमधुपायमान-मानसेषु विविधविद्योतिताखिलगुणगणालङ्कृतवेदवेदान्तपारग-स्वाश्रमोचिताचारसम्पन्नपरमहंसपरिव्राजकाचार्य्यसेव्यमान-श्रीगो-विन्दस्वरूपगुरुचरणारविन्देषु कोटिशः प्रणामाः।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अथ भार्य्याया: स्वामिप्रशस्ति:—

स्वस्ति श्रीमदुद्दामप्रेमहेमभूषितास्मदादिभक्तजनेषु कर्णयोरधिष्ठानेषु नेत्रयोरधिदैवतेषु कामस्य परिमाणेषु चतुर्वर्गप्रदायकेषु ममापररूपेषु श्रीमत्स्वामिचरणारविन्देषु गोविन्द इवेन्दिराया: शङ्कर इव गिरिजाया: महेन्द्र इव पुलोमजाया: प्रतिदिनं वर्द्धमाना समाराधना प्रणामपूर्व्वमास्ताम् ।

अथ भर्त्तुर्भार्य्याप्रशस्ति:—

स्वस्ति श्रीमत्समस्तप्रेमपारलावण्यमूर्त्तौ प्रियतमायां नेत्रयुग्मस्य कनीनिकायामिव चन्द्रस्य चणदायामिव कमलाकरस्य कमलिन्यामिव पथिकस्य छायायामिव तृषातुरस्य शीतलामृतधारायामिव मम सप्रेमनिवेदयन्तौ पत्नौ शुभाशीराशीन् निवेदयतु सर्वदा ।

अथ पुत्रस्य पितरं प्रति प्रशस्ति:—

स्वस्ति श्रीमदभिनववशंवदचित्तचिन्तितस्वीयानुरागानुरञ्जितानुगृहीतस्वगृह्यवर्गेषु निजचरणसरोजरञ्जितपरागसंरक्तास्मदादिभालस्थलविशालभाग्यसम्भावुकेषु श्रीयुतपितृचरणसरोरुहेषु अकिञ्चित्करकिङ्करस्य मम बद्धकरसम्पुटस्यावनीपृष्ठलग्ना: साष्टाङ्गप्रणतय:, सहस्रमजस्रं विज्ञाप्यन्त्व ।

अथ पितु: पुत्रं प्रति प्रशस्ति:—

स्वस्ति श्रीविश्वेश्वर-चरणसरोरुहानुग्रहसमासादितातिविततानवद्यविद्याविलासपीयूषपरम्पराभावुकानुपममाधुरीधुरीणविविधगुणालङ्कृतनिजवंशावतंससकलविश्वासनिधाननिजकुल-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पवित्रीकृतात्मप्रायेषु, श्रीयुतशुद्धाचारपरिपूरितपुत्रेषु शुभाशिषां राशयः सन्तु, विज्ञाप्यञ्च।

अथ सन्न्यासियतिप्रशस्तिः—

स्वस्ति श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य्यकरणनिपुणतापराङ्मुखेषु विषमविषयदोषदर्शनदूषितप्रपञ्चरचनाविभागेषु वेदवेदान्तसांख्यसिद्धान्तवद्धदेवप्रकृतिपुरुषविवेकज्ञानशीलेषु संख्यावन्मुख्यवन्दितचरणारविन्दस्वाश्रमोचिताचारपरिपालनपवित्रीकृतधरित्रीतलेषु सकलभूदेवपूजितश्रीयुतगोस्वामिचरणारविन्देषु।

अथ भृत्यप्रशस्तिः—

स्वस्ति भगवच्चरणपरायणसकलद्रविणाधिरक्षकगोमहिषादिप्रतिपालकनिखिलवंशानुसेवकवशंवदं—प्रति।

अथ अरिप्रशस्तिः—

स्वस्ति समराङ्गनभ्रष्टप्रतिभटायशःपरिपूरितसकलसामन्तराजधानीविजृम्भित-वीरशस्त्रावशेषित-निजवंशानुरक्षकसततपरित्रस्तशरणागतम्—प्रति।

अथ विवेकिनां प्रशस्तिः—

स्वस्ति श्रीभगवत्पदपङ्कजपूजनोपचितपुण्यपुञ्जपवित्रीकृतान्तःकरणदिग्विलासिनीविसरद्विम्बितमिलन्मल्लीमालाकलायशोऽनुबन्धिनिरवधिवसुविश्राणनाधरीकृतचरपुरभूमिरुहेषु। अथवा—

स्वस्ति श्रीमत्परमेश्वरपादपाथोरुहास्वादचतुरचित्तचञ्चरीकभूवृन्दारकवृन्दावनजनितामित-यशःपटीरपङ्कपटलालङ्कृतदिगङ्गनागणस्तनतटप्रबलप्रतापौर्वीखर्वीकृतप्रत्यर्थिसार्थगर्वाकूपारपारगेषु।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

वर्त्तमानसमये प्रचलितपत्राणामादर्शः

पुत्रस्य पितृसन्निधौ—

स्वस्ति कलिकातायाम् अनेकगुणालङ्कृतस्नेहगुणविभूषित-पुत्रवत्सलपूज्यपितृपादारविन्दान् ढाकातः सदाविनीतः सुतः ··············महाभक्त्या सबहुमानं क्षितितलनिहितमौलिना साष्टाङ्गं प्रणम्य सविनयं विज्ञापयति,—सर्व्वाभ्यो मातृप्रभृतिभ्यो मदीयः प्रणामो वाच्यः, कार्य्यादिकञ्च सदादेष्टव्यमिति··· ।

ग्रन्थकारं प्रति ग्रन्थप्रेरणार्थम्—

स्वस्ति गीर्व्वाणादिभाषासु परां प्रतिष्ठां गताः कलिकाता-नगरस्थमहापाठशालाधिकृताः श्रीयुक्तमहेशचन्द्रन्यायरत्नाः प्रणामपुरःसरं विज्ञाप्यन्ते च यत्—भवत्प्रणीतं अलङ्कारदर्पणा-ख्यम् अधिकृत्य काचित् विज्ञप्तिपत्रिका मया मित्रहस्ते अद्य दृष्टा। तदवलोकनेन तं ग्रन्थं क्रेतुं मन्मनसि वलवतीच्छा प्रादु-र्भवति। तदनुरोधात् राजशासनपत्रद्वारेण (मणि अर्डार) वार्त्ताहरभाग-सहितं मूल्यं सार्द्धचतुष्टयरूपकम् इतः प्रेषितम्। तद्यावच्छक्यं सत्वरं तद्ग्रन्थस्य प्रेषणेन अनुग्राह्यमात्मान-मिच्छामि। ग्रन्थश्च निम्नलिखितवाह्यनाम्ना प्रेषणीय इति विज्ञप्तिः।

धलंच्छत्रे, संस्कृतपाठशालायां संवत् १८२५ श्रावणस्य द्वितीयदिवसे।	विद्यालङ्कारोपाधिकस्य श्रीकालीनाथशर्म्मणः।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

अध्यापकसमीपे अवकाशप्रार्थनार्थम्—

स्वस्ति सकलविद्यावगाहनविशदीकृतमानसाः परमपूज्याः श्रीयुक्त-कालीपदतर्काचार्य्य महाशया अनेकप्रणामपूर्व्वकं सविनयं विज्ञाप्यन्ते। यन्मम गेहेऽद्य मातापितरावुभावपि ज्वरपीड़ितौ सन्तौ शय्याग्रस्तौ। तौ तथा परित्यज्य पाठशालां गन्तुं नाहमुत्सहे। मामपि च वलवती शिरोवाधा पीड़यति। अतः अद्य मम अनुपस्थितिं मर्षयितुमर्हन्ति आचार्य्यपादा इति सविनयनिवेदनं सदा भवदादेशवर्त्तिनः शिष्यस्य—

आवेदनपत्रम्।

१८३२ शकाब्दीय-

सौरवैशाखस्य त्रयोदशदिवसे

बहुशःसम्माननीय-श्रीयुत-श्रीरामपुर-एन्ट्रास्-

स्कुलाध्यक्ष-महोदय-सविधेषु।

महात्मन्!

गतमास-प्रकाशित--"संस्कृत-साहित्यपरिष"न्नामकसंदेशपत्रतो विदितं यत्—भवदीयविद्यालयस्य प्रधानपण्डितपदं शून्यतया विद्यते। मया ननु सम्प्रति तत्पदं प्रार्थयमानेन निवेद्यते,—विगत १८८६ खृष्टाब्दे मया काव्यस्योपाधिपरीक्षामुत्तीर्णेन काव्यतीर्थोपाधिर्लब्ध इति। ततः कतिचिद्दिनानि सिद्धेश्वरीइंराजि-विद्यालये शिक्षकता च कृता, मदध्यापनादर्शनेन तस्य विद्यालयस्य अध्यक्षेण या प्रशंसालिपिः प्रदत्ता अनेनावेदनेन सह तस्या अनुलिपिरपि प्रदीयते, एतदवलोकनेन मदीयां योग्यता

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

माकलय्य यद्यहं तद्योग्यो मन्ये भवद्भिस्तत् कृपया मां तत्र नियुज्य कृतार्थीकुर्व्वन्तु भवन्त इति।

अध्यापकसमीपे अध्ययनानुमतिलाभार्थम्—

संख्यातीतप्रणामपूर्व्वकं श्रीश्रीचरणे निवेदनम्

परमाराध्य !

बहुशो दिनानि भवच्चरणशरणं लप्स्य इति आशां हृदये पुष्णामितराम्। छात्रान् औरसांस्तनयानिव प्रतिपालयतस्तत्र-भवतश्छात्रवात्सल्यमाकलय्य कोहि नाम भवदीयश्रीमच्चरणार-विन्ददास्यलाभेन पवितुमात्मानं नोत्सहेत ? महात्मन् ! गतेऽब्दे चम्पानगरचतुष्पाठीतः वेदान्तमध्यपरीक्षामहं समुत्तीर्णः, इदानीमुपाधिपरीक्षायाः पाठ्यमधिजिगमिषे। भवादृशेन अध्या-पनव्रतनिरतेन न कोऽपि प्रत्याख्यायते, विशेषतोऽहं दरिद्र-द्विज-तनयः, भवन्तमन्तरा न मे अन्या गतिर्विद्यते। कारुणिक ! एतदालोच्य भवदाश्रयं याचमानस्य मे कृपया अभिप्रायं पूरयतु। यदि मां प्रति भवतः कृपा समुपजायते, तदा अस्याः पत्रिकाया अपरांशेन "रिप्लाइ-कार्डेन" मामुत्तरदानेन कृतार्थयतु तत्रभवान् इत्येषा प्रार्थना—

वृत्तिलाभार्थम्।

अशेषसम्माननीयसंस्कृतसाहित्यपरिषन्मन्त्रिमहाशयसमीपेषु।

महात्मन् !

मृतप्राया विदग्धजननी पुनर्भवादृशानामवलोकनामृतसेकेन सजीवतां लभमाना मादृशानिदानीमङ्गुलीहेलया आश्वासयति।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

देशोऽयं दारिद्र्यविशीर्णः, अध्यापनानिरता ब्राह्मणपण्डिता अर्थाभावेन प्रायश एव स्वस्वव्रतमपहाय जीविकार्थमितस्ततः पर्य्यटन्ति। एतादृशे दुर्द्दिने यदि भवादृशसनातनधर्म्मानुरागि-महात्मगणप्रवर्त्तितच्छात्रवृत्तिव्यवस्था नाभविष्यत्, तदा मादृशानां संस्कृतशिक्षा किं न जलधिजले अपतिष्यत्? यातु तावत्, अहं गतेऽब्दे वाराणसीतः सामवेदस्य द्वितीयपरीक्षामुत्तीर्णोऽभवम्, इदानीमुपाधिपरीक्षायाः पाठ्यमध्येतुमिच्छामि। किन्तु सम्प्रति वृत्त्यभावात् ममाध्ययनं न सम्यक् निर्वहति। इदानीं तत्र-भवतां करुणां संप्रार्थ्य वृत्त्यर्थमहं विनयपुरःसरं संयाचे यदनन्यशरणं मां वृत्तिदानेन कृतार्थीकुर्वन्तु भवन्त इति।

मित्रं प्रति।

सोदरप्रतिम!

यथाकालं ते कोमलकराङ्किता लिपिर्मे करगता अजनयदति-मात्रमानन्दम्। राजधानीमनिशमधिवसतोऽपि ते ईदृशी पल्ली-ग्रामप्रियता सुबहु प्रशंसनीयेत्यत्र नास्ति कियानपि सन्देहः। विलासलालायितचेतसामाधुनिकानां महानगरीवास एवैको रोगो महान्। एकं द्वितं वा दिवसं महानगरीमध्युष्य विलासबाहुल्य-प्रभावेण न कोऽपि प्रायः पल्लीवासाय समुत्सहते। किन्तु सुहृत्! त्वया तु प्राणप्रीतिकरप्रासादवासः, सुरम्य-प्रशस्त-राजपथ-विच-रणं, रसनासुखास्वादजनकं भोज्यं, शरीर-शान्तिविधायको विविधपरिच्छदः, नयनानन्ददायकं सुदृश्यमित्यनेकं सुदुर्लभमपि विविधभोगमुपभुञ्जानेन पर्णकुटीरमय-"म्यालेरिया"-समाकीर्ण-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पल्लीग्रामं प्रति प्रीतिः प्रदर्श्यते, अतस्त्वं सर्व्वथा धन्यवादार्हः। प्रिय ! मा कुरु खेदं, नानाजनानामावासतया नगरे समाजबन्धनं न स्थातुमर्हति, नगरवासिभिर्यथारुचि स्वस्वकार्य्यजातमनुष्ठीयते, न तेषां विचारबुद्धिः कदाचिद्हृदयतलमवगाहतेतराम्। यत्र स्वावासपार्श्ववासी किंस्वरूपः किंजातीयः किंवृत्तिः कुशलवान-कुशली वा न तत्र प्रतिवेशिनां दृष्टिर्निपतति, न तत्र कदाचित् समाजबन्धनमस्माकमाशाविषयः अतः नगरवासपरित्यागसङ्कल्पस्ते साधीयानिति कोऽत्र सन्देहः।

भ्रातः ! अस्माकं कुशलं जानीहि, कदास्मिन् त्वया सह मिलित्वा दरिद्रां जननीं जन्मभूमिं सनाथीकरोमीति आशास्यत इति दिक्।

ब्राह्मणपण्डितानां निमन्त्रणपत्ररचनापद्धतिः।

নিমন্ত্রণপত্রে সৌরমাস উল্লেখ করিতে হয়, ইহার অনেক পন্থা আছে। মেষাদি দ্বাদশ রাশিতে সূর্য্যের স্থিতি দ্বারা বৈশাখাদি দ্বাদশ মাস প্রতিপন্ন হয়। যথা—'मेषे दिनेशे' ইহা দ্বারা বৈশাখ মাস বুঝাইল। এইরূপ 'सूर्य्ये वृषस्थे' ইহাতে জ্যৈষ্ঠ মাস, 'द्वन्द्वं गते भास्वति'—আষাঢ় মাস,—'कुलीरचर-मार्त्तण्डे'—শ্রাবণ মাস, 'हरौ याति हरौ'—ভাদ্র মাস, 'कन्यां गते दिनकरे'—আশ্বিন মাস ; ইত্যাদি। মেষাদি দ্বাদশ রাশি, কুজ শুক্র প্রভৃতির ক্ষেত্র বা গৃহরূপে কথিত হয়, ইহাতে সূর্য্যের স্থিতি উল্লিখিত হইলে সৌর মাস বুঝায়। যথা—

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

"कुजशुक्रबुधेन्द्वर्कसौम्यशुक्रावनीभुवाम् ।
जीवार्किभानुजेज्यानां क्षेत्राणि स्युरजादय: ॥"

মেষ মঙ্গলের প্রথম ক্ষেত্র (গৃহ), বৃষ শুক্রের প্রথম ক্ষেত্র, মিথুন বুধের প্রথম ক্ষেত্র, কর্কট চন্দ্রের ক্ষেত্র (চন্দ্রের আর ক্ষেত্র নাই) সিংহ সূর্য্যের ক্ষেত্র (ইহারও আর ক্ষেত্র নাই) কন্যা বুধের দ্বিতীয় ক্ষেত্র, তুলা শুক্রের দ্বিতীয় ক্ষেত্র, বৃশ্চিক মঙ্গলের দ্বিতীয় ক্ষেত্র, ধনু বৃহস্পতির প্রথম ক্ষেত্র, মকর শনির প্রথম ক্ষেত্র, কুম্ভ শনির দ্বিতীয় ক্ষেত্র, মীন বৃহস্পতির দ্বিতীয় ক্ষেত্র।

'**भू-सुताश्रयगृहे भानौ**' বলিলে সৌর বৈশাখ মাস বুঝাইল। '**कविमुखसद्मनि: पूषणि वासिनि**' বলিলে সৌর জ্যৈষ্ঠ মাস। এইরূপ '**बुधाश्रमन्दिरे मित्रे**' আষাঢ়; '**निशानाथनिशान्तेऽर्के**' শ্রাবণ; '**निजभवनगभानौ**'—ভাদ্র: '**विधुसुतपरगेहे दीप्यमाने दिनेशे**'—আশ্বিন; '**शुक्रान्तिमनिकेतने**'—কার্ত্তিক; '**लोहिताङ्ग-परमन्दिरारुणे**'—অগ্রহায়ণ; '**वागीशाश्रयगृहादित्ये**'—পৌষ; **सुतादिसगृहे सूर्य्ये**' মাঘ; '**पङ्गो: परं गृहमिते मिहिरे**'—ফাল্গুন; এবং '**गुरुपरभवनस्थे वासरेशे**' বলিলে সৌর চৈত্র মাস বুঝায়। অথবা বৈশাখাদি মাসপর্য্যায়ক শব্দের সহিত সূর্য্যার্থক শব্দের সম্বন্ধ বর্ণিত হইলেও সৌর মাস প্রতিপন্ন হয়। যথা—'**तपने माधवे**' বলিলে সৌর বৈশাখ; '**सौरे शुक्रे**' বলিলে সৌর জ্যৈষ্ঠ; '**सौरे शुचौ**' বলিলে সৌর আষাঢ় মাস ইত্যাদি। নিমন্ত্রণপত্ররচনাশিক্ষার্থীর অঙ্কাভিধান, রাশ্যভিধান ও গ্রহাভি-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ধান প্রভৃতি কণ্ঠস্থ করা প্রয়োজনীয়। নিম্নলিখিত শব্দাঙ্ক দ্বারা পত্রের তারিখ প্রকাশ করা যায়। যথা—

অশ্বিযমদহনকমলজশশি-শূলভৃদদিতি-জীবফণি-পিতরঃ
যোন্যর্য্যমদিনকৃত্ত্বষ্টৃপবনশক্রাগ্নিমিত্রাস্ত্র।
শক্রো নিঋর্তিস্তোয়ং বিশ্ববিরিঞ্চী হরির্বসুর্ব্বরুণঃ
অজপাদোঽহির্ব্রধ্নঃ পূষা চেতীশ্বরা ভানাম্॥

অশ্বিনী হইতে রেবতী পর্য্যন্ত নক্ষত্র সপ্তবিংশতি, কিন্তু উত্তরাষাঢ়ার শেষ পাদ ও শ্রবণার প্রথম ৪ দণ্ড এই উভয়ের নাম অভিজিৎ, ইহা ধরিয়া অষ্টাবিংশতি নক্ষত্র গণিতে হয়। ক্রমে ইহাদের অধিপতি গণনায়ও এক হইতে ২য় সংখ্যা পাওয়া যায়। এই অনুসারে কবিতাতে মান (তারিখ) রচনার ব্যবহার আছে। অশ্বিনী নক্ষত্রের অধিপতি অশ্বী; অশ্বী বলিলে এক অঙ্ক (১লা তারিখ) বুঝায়। ভরণী নক্ষত্রের অধিপতি যম,—যম, কৃতান্ত, শমন প্রভৃতি শব্দে দুই অঙ্ক পাওয়া যায়। কৃত্তিকার অধিপতি অগ্নি,—দহন, অনল প্রভৃতি অগ্নি-পর্য্যায়ক শব্দের উল্লেখ তিন বুঝায়। রোহিণী নক্ষত্রের অধিপতি ব্রহ্মা,---ব্রহ্মার্থক কমলজ, বিরিঞ্চি, বিধি প্রভৃতি শব্দের প্রয়োগে ৪ সংখ্যা, এইরূপ মৃগশিরার শশী * ৫, আর্দ্রার শূলভৃৎ অর্থাৎ শিব ৬, পুনর্ব্বসুর অদিতি ৭, পুষ্যার বৃহস্পতি ৮, অশ্লেষার ফণী (সর্প) ৯, মঘার পিতৃগণ ১০,

* শশী শব্দ দ্বারা ৫ অঙ্ক বুঝাইলেও চন্দ্র, ইন্দু, বিধু প্রভৃতি শব্দে ১ অঙ্কই প্রায় বুঝাইয়া থাকে।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

পূর্ব্বফল্গুনীর যোনি ১১, উত্তরফল্গুনীর অর্য্যমা ১২, হস্তার দিনকৃৎ ১৩, চিত্রার বিশ্বকর্ম্মা ১৪, স্বাতীর পবন ১৫, বিশাখার শক্রাগ্নি ১৬, অনুরাধার মিত্র ১৭, জ্যেষ্ঠার ইন্দ্র ১৮, মূলার রাক্ষস ১৯, পূর্ব্বাষাঢ়ার জল ২০, উত্তরাষাঢ়ার বিশ্ব ২১, অভি-জিতের ব্রহ্মা ২২, শ্রবণার হরি ২৩, ধনিষ্ঠার বসু ২৪, শতভিষার বরুণ ২৫, পূর্ব্বভাদ্রেয় অজপাদ ২৬, উত্তরভাদ্রের অহিব্রধ্ন ২৭, এবং রেবতী নক্ষত্রের অধিপতি পূষা, 'পূষা' (পূষন্ শব্দ), বলিলে ২৮ অঙ্ক ধরিতে হয়।

आदर्शः ।

मातृस्थानीयोपलब्धे ।

अशेषशास्त्राध्यापक—

श्रीयुक्त........न्यायालङ्कार—भट्टाचार्य्यमहाशय—

सुराचार्य्यकल्पेषु—

चलितेयं पत्री } देया

श्रीधरपुरतः } हरिपुरग्रामे

(क) माता मातृवदस्माकं वयं पुत्रा न पुत्रवत् ।

इति खिन्नेव सा गङ्गा-तटाम्बुस्थातरङ्ग भवम् ॥

तदादिमक्षती किञ्चिदकिञ्चननिकेतने ।

मैत्र * चैत्रे चतुर्थेऽह्नि कृपयार्पय सन् ! पदम् ॥

सानुजः श्रीपुण्डरीकाक्षदेवशर्म्मा

निवेदयतीति ।

---

* मित्रस्यायं मैत्रः सौर इत्यर्थः ।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(ख) माता मृतामृतमगादमरापगागा
तत् कृत्यमाद्यमिह भावि कवे ! कथञ्चित् ।
भौमाद्यसङ्गग-रवौ कविसूनुवारे
शून्येन्दुभे सदय तत् सदयेत्य साध्यम् ॥

(ग) हरिपदकमलान्तस्वान्तभृङ्गा प्रसूतिः
हरिपदकमलान्तर्विग्रहार्द्रा स्वरात्मा ।
कृतिवर रविजाहे युग्मभे पूषपौषे
कृतिरिह कृपयाद्या साधनीयेत्य तस्याः ॥

(घ) गृहस्थिता मूर्त्तिमतीव देवता
पुपोष मां प्राणसमं चिराय या ।
अभूच्च या मर्म्मणि पीड़िता प्रसू-
र्निशम्य मे मस्तकवेदनामपि ॥
दिवङ्गता साङ्गमपास्य मायिकं
जलस्थले जाह्नव इष्टदेवधीः ।
क्रियात्र तस्याः क्रियगार्कशक्रभे
बुधेऽह्नि साङ्गीक्रियतां बुधेत्य सा ॥

हरिहरपूजोपलक्ष्ये—

मृगचरतपने श्रुतियुगगणने भूसुर मम तु निकाय्ये
हरिहरयजनं भवभयशमनं भविता तदिह सुकार्य्यं ।
द्विज ! तव गमनं दुष्कृतिदमनं सन्त्वन इति बुधवारे
पदजनिदीनः सुमतिविहीनः सकरुण ! गुरुसंसारे ॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पाठसमापनोपलक्ष्ये

वाल्मीकेर्मुखपङ्कजाद्विगलितं रामायणं मोक्षदम्
शेषस्तत्पठनस्य दीनभवने भावी द्विजानुग्रहैः ॥
शुक्रस्याद्यनिशान्तगे दिनकरे सोमाह्व इन्द्वप्रमे
साध्यं तं कृपया समेत्य समितिं धीरैरिति प्रार्थये ॥

पितामहस्य श्राद्धोपलक्ष्ये

चलमिति हित्वा वपुरुपयातः सुरसरिदम्भसि मदनस्तातः
परमपदं तत् कृतिरिह नव्या हरिसञ्चारिणि भास्वति भव्या ।
साङ्गवती सदसीतैरार्य्यास्तपनदिनेऽतः कृपया कार्य्या
शशधरमाने चतते दीनः प्रणतिभिरेतद् भाग्यविहीनः ॥

मातृश्राद्धोपलक्ष्ये

सुरधुनिनीरस्थलगशरीरस्मृतनिजमनुरनुयाता
च्युतभवमाया सुरहितकाया मेऽमृतपदमिति माता
कलशगतेने दिनमणिमाने तपनजदिन इह तस्याः
निवपनकार्य्यं कुरुत सुपूर्य्यं सुकृतिन एत्य नमस्याः

पितृश्राद्धोपलक्ष्ये

(क) संसारः सारशून्यः सुखमिह विषयोद्भूतमापातरम्यं
मत्वैवैतत् पिता मे परपदमगमद्गाङ्गतीराम्बुगाङ्गः ।
तत्कृत्यं कृत्यमाद्यं कृतिवर ! मकरे भास्करे भूकरांशे
हंसाहे संसदानामिह कुरु कृपया त्वत्पदे प्रार्थयेऽदः ॥

(ख) कः पिता कस्य कः पुत्रः संसारः सारवर्जितः ।
वत्स ! मा क्रन्द जन्तूनामेवेयं कालिकी गतिः ॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

इत्युक्त्वा जनको जातो दिवमिष्टमनुं स्मरन् ।
शुक्लाहे शक्रमे शुक्रे तत्कृत्ये सदयात्र सन् ॥

मातृ-सपिण्डीकरणोपलक्ष्ये

भौमाद्यभवने भानौ भौमाहे वह्निभूमिमे ।
भूसुपर्वन् कृपापूर्व्वं पूर्व्वं मातुः सपिण्डनम् ॥

पुत्रविवाहोपलक्ष्ये

भूमिसुतादिमसद्मनि सङ्गमवति सति सवितरि वारि
सुतशुभपरिणय इह भविता नय-नयन नयनमितवारे ।
भूसुरपुङ्गव भूतदयार्णव भूष समितिमशिवारे
वितर बधूवर-शिरसि च पदवरदरजस्वत इति सूरे ॥

शीतलापूजोपलक्ष्ये

बालेयस्यासपर्य्यामयनिचयहरा मोच्चराप्यन्तकाले
कार्य्येतीहाऽधनानामपि न इह न के मातृकृत्ये सकामाः ।
प्रासादे सूरमासे सुरगुरुदिवसे शुक्लमासे समेत्य
पूर्व्वाह्णे पर्वतेमां चत इति कवयः श्रीप्रभासाख्यशर्म्मा ॥

भागवतसमापनोपलक्ष्ये

कालंव्यालकराललोलगरलत्रुसः परीक्षिन्नृपो
यां श्रुत्वास्तभयो निरस्तकलुषस्तूर्णं गतो निर्वृतिम् ।
सा श्रीभागवती श्रुता सुललिता पुण्या कथा मुक्तिदा
तत्सम्पूर्त्तिविधौ तदङ्घ्रिकमलं याचेऽतिनम्रानननः ॥
मेषितसूर्य्ये चन्द्राग्निमानेऽत्र दीनसद्मनि ।
मन्दाहे सभयागत्य भूदेव ! दयया स्वयम् ॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

स्वामिश्राद्धोपलक्ष्ये

कान्तो मे सुरनिम्नगातटजले संन्यस्य कायं बुधा-
स्तद्विष्णोः परमं पदं हृदि परं ध्यात्वामरत्वं गतः ।
तत्कृत्यं भविता ववौ हरिमिते कन्यां गते पूषणि
तत् पूर्ण्यं समितिं समेत्य सदयैर्मान्यैर्भवद्भिः स्वयम् ॥

गृहप्रवेशोपलक्ष्ये

पूजाभक्तिसदुक्तिशक्तिविभवैर्नैवात्र सम्भाव्यते
दासोऽस्मीति च ते पदाम्बुजरजस्वाक्षय्यमेतद्वसु ।
वैशाखे वसुपक्षसोमदिवसे गोविन्दचन्द्रो वसु-
मूर्द्धानीय नवीनमिष्टकगृहश्रेष्टे प्रविष्टः श्रिया ॥

अन्नारम्भोपलक्ष्ये

काव्यान्तर्गेहे सति पद्मबन्धौ मदात्मजान्नाशनमत्र भावि ।
विरिञ्चिमि सोमदिने समेत्य शुभाशिषा वर्द्धय तं बुधात्र ॥

अनुवादप्रकरणम्

(१) कस्मिंश्चिद्वनोद्देशे महान्यग्रोधवृक्षे पुराहमवसम् । तत्राधस्तात् कोटरे कपिञ्जलो नाम चटकः प्रतिवसति स्म । अथ कदाचित् कपिञ्जलः प्राणयात्रार्थमन्यैश्चटकैः सह पक्वशालिप्रायं देशं गतः । ततो यावन्निशासमयेऽपि स नायातः, तावदहं सोद्-वेगमनास्तद्वियोगदुःखितश्चिन्तितवान् । अहो किमद्य कपिञ्जलो नायातः, किं पाशेन केनापि बद्धः ? उताहोस्वित् केनापि च

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

ব্যাপাদিতঃ। সর্ব্বথৈব যদি স কুশলী ভবতি, তন্মাং বিনা ন তিষ্ঠতি। এবং মে চিন্তয়তো বহূনি দিনান্যতিক্রান্তানি। ততশ্চ কদাচিৎ শীঘ্রগো নাম শশকোঽস্তমনবেলায়ামাগত্য তস্মিন্ কোটরে প্রবিষ্টঃ। ময়াপি কপিঞ্জলনিরাশত্বেন ন নিবারিতঃ। অথান্যস্মিন্নহনি কপিঞ্জলঃ শালিভক্ষণাৎ অতীবপীবরতনুঃ স্বমাশ্রমং স্মৃত্বা ভূয়োঽপি তত্রৈব সমায়াতঃ। অতঃ সাধ্বিদ-মুচ্যতে।

> ন তাদৃগ্‌জায়তে সৌখ্যমপি স্বর্গে শরীরিণাম্।
> দরিদ্রেঽপি হি যাদৃক্ স্যাৎ স্বদেশে স্বপুরে গৃহে॥

অথাসৌ বটকোটরান্তর্গতং শশকং দৃষ্ট্বা সাক্ষেপমিদমাহ—ভোঃ শশক, ন ত্বয়া সুন্দরং কৃতম্। যন্মমাবসথে প্রবিষ্টোঽসি। তচ্ছীঘ্রমপগম্যতাম্। শশক আহ,--মূর্খ! ন তবেদং গৃহং, কিন্তু মমৈব। তৎ কিং মিথ্যা পরুষাণি বচনানি প্রজল্পসি। তচ্ছীঘ্রং ব্রজ। চটকোঽব্রবীৎ,—যদ্যেবং তর্হি প্রতিবেশকাঃ পৃচ্ছ্যন্তাম্।

উল্লিখিতপ্রবন্ধস্য বঙ্গভাষয়ানুবাদঃ—

(১) কোন এক বনপ্রদেশে এক প্রকাণ্ড বটবৃক্ষ ছিল, পূর্ব্বকালে আমি সেই বৃক্ষে বাস করিতাম। তাহার অধোদেশস্থিত কোটরে কপিঞ্জল নামক এক চড়ুই পাখী থাকিত। অনন্তর কপিঞ্জল কোন সময়ে অন্যান্য চড়ুই পাখীর সহিত মিলিত হইয়া জীবিকানির্ব্বাহার্থ পক্বধান্যবহুল প্রদেশে গমন করিল। তৎপরে রাত্রি হইলেও সে যখন আসিল না, তখন আমি তদীয় বিরহদুঃখে কাতর হইয়া উৎকণ্ঠিতচিত্তে চিন্তা করিতে লাগিলাম— হায়! কেন আজ কপিঞ্জল আসিল না, কেহ কি তাহাকে জালে আবদ্ধ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

করিয়াছে,অথবা কেহ কি তাহাকে বিনাশ করিয়াছে ! কপিঞ্জল যদি সর্ব্বথা সুখে থাকে,তবে ত সে আমাকে ছাড়িয়া থাকে না। এইরূপ চিন্তা করিতে করিতে আমার অনেক দিন কাটিয়া গেল। অনন্তর কোন এক সময় শীঘ্রগ-নামক এক শশক সন্ধ্যাসময়ে তথায় আসিয়া কপিঞ্জলের কোটরে প্রবেশ করিল। আমিও কপিঞ্জলবিষয়ে হতাশ হইয়াছিলাম বলিয়া তাহাকে নিষেধ করিলাম না। অতঃপর একদিন কপিঞ্জল ধান্যভক্ষণে অত্যন্ত হৃষ্টপুষ্ট হইয়া নিজ আবাসস্থান স্মরণপূর্ব্বক পুনরায় সেই স্থানে আসিয়া উপস্থিত হইল।

অতএব পণ্ডিতগণ ইহা ভালই বলিয়া থাকেন—দেহধারিগণের স্বকীয় গৃহ, বাড়ী এবং দেশ নিতান্ত হীনাবস্থ হইলেও ইহাদের প্রতি যেরূপ প্রীতি থাকে, স্বর্গেও সেরূপ থাকে না।

অনন্তর সেই কপিঞ্জল বটকোটরস্থিত শশককে দেখিয়া দুঃখসহকারে বলিল,—ওহে শশক ! তুমি আমার বাসস্থানে প্রবেশ করিয়া ভাল কাজ কর নাই। অতএব তুমি সত্বর এস্থান হইতে বহির্গত হও। শশক উত্তর করিল,—রে অবোধ ! এ ঘর তোর নয়, ইহা আমার। অতএব কেন তুই আত্মশ্লাঘাসূচক বৃথা বাক্য ব্যয় করিতেছিস্। সত্বর এখান হইতে চলিয়া যা। শশকের ঈদৃশ ব্যবহার দেখিয়া চটক বলিল, যদি এইরূপই হয়, তবে অত্রত্য প্রতিবেশিগণকে জিজ্ঞাসা কর্ (এই বাসা তোর্ কি আমার ?)।

---

(২) এক ব্যক্তির একটী অশ্ব ও একটী গর্দ্দভ ছিল। সে কোনও স্থানে যাইবার সময়, সমুদয় দ্রব্য সামগ্রী গর্দ্দভের পৃষ্ঠে চাপাইয়া দিত, অশ্ব বহুমূল্যের বস্তু বলিয়া, তাহার উপর কোনও ভার চাপাইত না। এক দিবস, সমুদয় ভার বহিয়া যাইতে গর্দ্দভের পীড়া উপস্থিত হইল। পীড়ার যাতনা ও ভারের আধিক্যবশতঃ গর্দ্দভ কাতর হইয়া, অশ্বকে

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

বলিল,—দেখ ভাই ! আমি আর এত ভার বহিতে পারিতেছি না ; যদি তুমি দয়া করিয়া কিয়দংশও লও, তাহা হইলে অনেক পরিত্রাণ হয়, নতুবা আমি মারা পড়ি। অশ্ব বলিল,—তুমি ভার বহিতে পার না পার, আমার কি ? আমি কখনই তোমার ভারের অংশ লইব না। গর্দ্দভ আর কিছুই বলিল না ; কিন্তু খানিক দূর যাইয়া যেমনি পড়িল, অমনি তাহার প্রাণত্যাগ হইল। তখন ঐ ব্যক্তি সেই সমুদয় ভার এবং মৃত গর্দ্দভটাও অশ্বের পৃষ্ঠে চাপাইয়া দিল। সমুদয় ভার ও মরা গর্দ্দভ উভয়ই বহিতে হইল দেখিয়া তখন অশ্ব, আক্ষেপ করিয়া মনে মনে বলিতে লাগিল, আমার যেমন দুষ্টস্বভাব, তাহার উপযুক্ত ফল পাইলাম। তখন যদি এই ভারের অংশ লইতাম, তাহা হইলে এখন আমায় সমুদয় ভার ও মরা গর্দ্দভ বহিতে হইত না।

উল্লিখিতস্য প্রবন্ধস্য সংস্কৃতেনানুবাদঃ।

(২) কস্যচিজ্জনস্য আসীদেকস্তুরঙ্গো রাসভশ্চৈকঃ। স কস্মিংশ্চিজ্জনপদে গচ্ছন্ নিখিলং বস্তুজাতং গর্দ্দভপৃষ্ঠে সমস্থাপয়ৎ। অশ্বো বহুমূল্যদ্রব্যমিতি তস্য পৃষ্ঠে কিমপি বস্তু ন নিহিতবান্। একদা কৃৎস্নমেব ভারং বহতো গর্দ্দভস্য পীড়া সমবর্ত্তত। রোগস্য যন্ত্রণয়া, বাহুল্যেন চ ভারস্য, রাসভো নিতরামসুস্থঃ সংবৃত্তঃ। আহ চ বাশ্বং,--ভ্রাতঃ! পশ্য ন পুনরহমেতাবন্তং ভারং বোঢুমলমস্মি। কৃপয়া যদি ত্বমিতঃ কিয়ন্তমংশং গৃহ্লাসি, তর্হি মম বাহুল্যেন পরিত্রাণং সম্ভবেৎ—অন্যথাহং ম্রিয়েয়। অশ্ব উবাচ—ত্বমশক্তঃ শক্তো বা তেন মম কিম্ ? নাহং কদাপি তব ভারাংশং বহেয়ম্। গর্দ্দভঃ পুনঃ কিঞ্চিদপি নাবোচৎ, কিন্তু কিয়দ্দূরং গত্বা পতন্নেব মৃতঃ। তদা সোঽধ্বনীনঃ তমখিলং ভারং

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मृतं रासभञ्च वाजिनमवाहयत्। तदानीं भारनिकरं गतासुमपि रासभमुभयमेव वहन्तमात्मानमवलोक्य सैन्धवोऽयमनुशोचन् मनसि समालोचितवान् यत्—यथाहं कलुषशीलः, प्राप्तवानस्मि फलं तादृशमेव। तदा चेदेतावतो भारस्य कियन्तमंशमग्रहीष्यम् तर्हि साम्प्रतं मया निःशेषं भारं रासभञ्च शवं वहता न ताव-दवर्त्तिष्यत।

---

(३) ब्राह्मणी प्राह कथमेतत्? ब्राह्मणः कथयति अस्ति कस्मिंश्चिद्वनप्रदेशे कश्चित् पुलिन्दः। स च पापर्द्धिं कर्त्तुं वनं प्रति प्रस्थितः। अथ तेन प्रसर्पता महानञ्जनपर्वतशिखराकारः क्रोड़ः समासादितः। तं दृष्ट्वासौ कर्णाकृष्टनिशितसायकेन जघान। तेनापि कोपाविष्टचेतसा बालेन्दुद्युतिदंष्ट्राग्रेण पाटितोदरः पुलिन्दो गतासुर्भूतले प्रापतत्। अथ लुब्धकं व्यापाद्य शूकरोऽपि शरप्रहारमात्रवेदनया पञ्चत्वमुपागतः, एतस्मिन्नन्तरे कश्चिदासन्न-मृत्युः शृगाल इतस्ततो निराहारतया पोड़ितः परिभ्रमंस्तं प्रदेश-माजगाम। यावद्वराहपुलिन्दौ पञ्चत्वमुपागतौ द्वावपि पश्यति, तावत् प्रहृष्टोऽचिन्तयत्, भो अनुकूलो मे विधिः, तेनैतदचिन्तितं भोजनमुपाहितम् * * * अथवा साध्विदमुच्यते—

प्रकृतेऽप्युत्तमे पुंसामन्यजन्मकृतं फलम्।
शुभाशुभं समभ्येति विधिना सन्निधापितम्॥
यस्मिन् देशे च काले च वयसा यादृशेन च।
कृतं शुभाशुभं कर्म्म तत्तथा तेन भुज्यते॥

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

অস্য প্রবন্ধস্য বঙ্গভাষয়ানুবাদঃ।

(৩) ব্রাহ্মণী কহিলেন,—এ কি রকম? ব্রাহ্মণ কহিতে লাগিলেন,—কোন বনপ্রদেশে এক চণ্ডাল বাস করিত। (এক সময়) সে মৃগয়া করিতে বনে গমন করিয়াছিল। তখন চণ্ডাল কিছু দূর গমন করিয়া নীলগিরির শিখরসদৃশ এক প্রকাণ্ড শূকর দেখিতে পাইল। শূকরকে দেখিয়া সে আকর্ণাকৃষ্ট শাণিত শরদ্বারা তাহাকে আহত করিল। কোপ-পরিপূর্ণহৃদয় শূকরও নবোদিত চন্দ্রকিরণসদৃশ দশনাগ্র দ্বারা নিষাদের উদর বিদারণ করিল। নিষাদ ভূতলে পতিত হইয়া পঞ্চত্ব প্রাপ্ত হইল। ব্যাধের প্রাণনাশ করিয়া অতঃপর বরাহও বাণাঘাতের বেদনায় প্রাণত্যাগ করিল।

ইত্যবসরে অনাহারপীড়িত মৃতকল্প এক শৃগাল চতুর্দ্দিকে ভ্রমণ করিতে করিতে তথায় আসিয়া উপস্থিত হইল এবং যেমন সেই মৃত শূকর ও পুলিন্দ এই দুইটীকে দেখিতে পাইল, অমনি আহ্লাদিত হইয়া ভাবিতে লাগিল,—অহো! বিধাতা আমার প্রতি সুপ্রসন্ন হইয়াছেন, তাহাতেই এই অচিন্তিত ভক্ষ্য দ্রব্য জুটাইলেন! * * *

অতএব পণ্ডিতগণ ইহা ঠিকই বলিয়া থাকেন ;—মানুষ ভালই হউক, আর মন্দই হউক, তাহাকে অবশ্যই পূর্ব্বজন্মকৃত শুভাশুভ ফল ভোগ করিতে হইবে এবং বিধাতাই তাহার সম্মুখে ফল উপস্থিত করিয়া দেন।

যে দেশে, যে কালে ও যে বয়সে মানুষ (পূর্ব্বজন্মে) শুভ বা অশুভ কর্ম্ম করিয়াছে (এই জন্মেও) তাহাকে ঠিক সেই দেশে, সেই সময়ে, সেই বয়সে শুভ বা অশুভ ফল ভোগ করিতে হয়।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

(৪) রাজার এই অনুকূল বচন শ্রবণ করিয়া রাজ্ঞীর আহ্লাদের আর পরিসীমা রহিল না। তখন তিনি বিনয়াবনতমস্তকে ও সানুরাগ মধুরবচনে কহিলেন—"মহারাজ! আশ্রিত জনের প্রতি অনুকম্পা-প্রদর্শন করা আপনাদের ন্যায় মহাত্মগণের স্বভাবসিদ্ধ ধর্ম্ম। তথাপি এই দাসীর প্রতি আপনার যেরূপ অনুগ্রহ, তাহা ইহার পূর্ব্বজন্মার্জ্জিত কোন সুকৃতিফলেই সঙ্ঘটিত হইয়াছে, সন্দেহ নাই। কিন্তু নাথ! অন্য কথা দূরে থাকুক, আমার এই শরীর মন সমস্তই যখন আপনাদেরই অধিকৃত,তখন আপনার নিকট ভিক্ষা ব্যতীত এ দাসীর ত আর কোন বিষয়েই কর্ত্তৃত্ব নাই"। এই বলিয়া রাজমহিষী প্রাত্যহিক নিয়মানুসারে প্রণাম ও স্বামীর চরণরেণু মস্তকে গ্রহণ করিয়া শয্যা ত্যাগ করিলেন ; রাজা ও রাজ্ঞীর অসাধারণ পতিভক্তির বিষয় চিন্তা করিতে করিতে অনতিবিলম্বেই শয়ন পরিত্যাগানন্তর প্রাতঃকৃত্যাদি সম্পাদন করিয়া প্রহৃষ্টচিত্তে সভামণ্ডপাভিমুখে যাত্রা করিলেন।

উল্লিখিতপ্রবন্ধস্য সংস্কৃতেনানুবাদঃ।—

(৪) মহিষী মহীপতেরিদমনুকূলবচনমাকর্ণ্য নিরবধিপরিতোষা বিনয়াবনতশিরাঃ সানুরাগমিদং সুমধুরস্বরমবদত্,—মহারাজ! অনুগতামনু ভবাদৃশানাং মহামহিম্নামনুকম্পাপ্রকাশো ননু নৈসর্গিকো ধর্ম্মঃ। তথাপীমাং পরিচারিকাং প্রতি ভবতো যথানুগ্রহঃ স এতস্যা জন্মান্তরীণস্য কস্যচিত্ সুকৃতস্য পরিণামেনৈব সঙ্ঘটিত ইতি নাস্তি সন্দেহঃ। পরন্তু স্বামিন্! দূরে তাবদাস্তামপরোক্তিঃ, যতো মদীয়মিদং শরীরং মানসঞ্চ নিখিলমেব ভবতা এব পরতন্ত্রম্। ততো ভবতোঽন্তিকে ভিক্ষামন্তরেণ দাসীয়ং পুনঃ কস্মৈচিদপি বস্তুনি ন প্রভবতি।" নৃপবল্লভা বাচমিমাং

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

निवेद्य निवेद्य प्रणम्य च दैनिकविधिना पतिपदरजः शिरसि निधाय शयनीयमत्यजत्। नरपतिरपि राज्ञ्या असाधारणीं पतिपरायणतामनुध्यायन् अचिरात् कृतशय्यापरित्यागः प्रातःकृत्यमनुष्ठाय प्रहृष्टेन चेतसा सभासदनमभिप्रतस्थे।

---

(५) अनतिदूरमिव गत्वा पवित्रं प्रशान्तम् अतिरमणीयमपरमिव ब्रह्मलोकमाश्रममपश्यम्। तत्र च रक्ताशोकतरोरधश्छायायामुपविष्टं धर्म्ममिव शरीरिणं विपन्नशरणं भगवन्तं जावालिमपश्यम्। अवलोक्य चाहमचिन्तयम्, अहो प्रभावस्तपसाम्! इयमस्य शान्तापि मूर्त्तिरुत्तप्तकनकोज्ज्वला सौदामिनीव चक्षुषः प्रतिहन्ति तेजांसि। एवं विधानां पुण्यानि नामग्रहणान्यपि, किं पुनर्दर्शनानि। धन्यमिदमाश्रमपदम्, अयमधिपतिर्यत्र। धन्याः खल्वमी मुनयः, यदहर्निशमेनं पुण्याः कथाः शृण्वन्तः पर्य्युपासते। सरस्वत्यपि धन्या, यदस्मिन् सततमतिप्रसन्ने निवसति राजहंसीव मानसे। अस्य भगवतः प्रभावात् प्रशान्तवैरं तपोवनम्। अहो प्रभावो महात्मनाम्! शाश्वतिकमपहाय विरोधं शान्तान्तरात्मानस्तिर्य्यञ्चोऽपि तपोवनवसतिसुखमनुभवन्ति।

उल्लिखितप्रबन्धस्य वङ्गभाषयानुवादः

(৫) কিছুদূর অগ্রসর হইয়াই যেন দ্বিতীয় ব্রহ্মলোকস্বরূপ শান্তিময় পুণ্যাশ্রম দেখিতে পাইলাম। সেখানে রক্ত অশোকতরুর তলে ছায়ায় উপবিষ্ট, সাক্ষাৎ ধর্ম্মের প্রতিমূর্ত্তি, বিপন্নশরণ্য, ভগবান্ জাবালিকে অবলোকন করিয়া ভাবিতে লাগিলাম—ওঃ, তপস্যার কি প্রভাব! ইহার এই

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

আকৃতি শান্তিময়ী হইয়াও তপ্তকাঞ্চনবৎ সমুজ্জ্বলা এবং বিদ্যুতের ন্যায় চক্ষুর জ্যোতিঃ প্রতিহত করিতেছে। এতাদৃশ মুনিগণের নামোচ্চারণও আত্মাকে পবিত্র করে; সাক্ষাৎকারের আর কথা কি! ধন্য এই আশ্রম, যেখানে ইনি অধিপতিরূপে বিরাজ করিতেছেন। ধন্য এই মুনিবৃন্দ! যেহেতু অহোরাত্র ইঁহার পবিত্র বাক্য শ্রবণ করত ইঁহাকে উপাসনা করিতেছেন। বাগ্দেবীও ধন্যা! মানস সরোবরে রাজহংসীর ন্যায় যিনি এই সর্ব্বদা সুপ্রসন্ন মুনিবরে বিরাজমান আছেন। ষড়ৈশ্বর্য্যসম্পন্ন এই মুনির তপঃপ্রভাবে তপোবন নিরুপদ্রব লক্ষিত হইতেছে। মহাত্মাদিগের কি আশ্চর্য্য প্রভাব! তির্য্যগ্‌গণও স্ব স্ব স্বভাবসিদ্ধ বৈরিভাব পরিত্যাগ-পূর্ব্বক প্রশান্তচিত্তে তপোবন-বাসজনিত সুখভোগ করিতেছে।

(৬) এবমনুশ্রূয়তে পুরা কিল ভগবান্ স্বর্লোকমধিতিষ্ঠন্ পরমেষ্ঠী বিকাশিনি পদ্মবিষ্টরে সমুপবিষ্টঃ সুনাসীরপ্রমুখৈর্গীর্ব্বাণৈঃ পরিবৃতো ব্রহ্মোদ্যাঃ কথাঃ কুর্ব্বন্ অন্যাশ্চ নিরবদ্যা বিদ্যা-গোষ্ঠীর্ভাবয়ন্ কদাচিদাসাঞ্চক্রে। তথাসীনঞ্চ তং ত্রিভুবনপ্রভুং মনুদক্ষচাক্ষুষঃপ্রভৃতয়ঃ সর্ব্বে চ সপ্তর্ষিপুরঃসরা মহর্ষয়ঃ সিষে-বিরে। কেচিদৃচঃ স্তুতিচতুরাঃ সমুদচারয়ন্। কেচিদপচিতিভাঞ্জি যজূংষ্যপঠন্। কেচিৎ প্রশংসা [হাণি] সামানি জগুঃ। অপরে বিবৃতক্রতুক্রিয়াতন্ত্রান্ মন্ত্রান্ ব্যাচচক্ষিরে। বিদ্যাবিসংবাদ-কৃতাশ্চ অত্র তেষামন্যোন্যস্য বিদ্যাবিবাদাঃ প্রাদুরভবন্।

অথাতিরোষণঃ প্রকৃত্যা মহাতপা মুনিরত্রেস্তনয়স্তারাপতের্ভ্রাতা নাম্না দুর্ব্বাসা দ্বিতীয়েন মন্দপালনাম্না মুনিনা সহ কলহায়-মানঃ সাম গায়ন্ ক্রোধান্ধো বিস্বরমকরোৎ। সর্ব্বেষু চ শাপভয়-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

प्रतिपन्नमौनेषु अन्यालापलीलया अवधीरयति कमलसम्भवे भगवती कुमारी किञ्चिदुन्मुक्तबालभावे भूषितनव-यौवने नवे वयसि वर्त्तमाना गृहीतचामरप्रचलङ्गुजलता पितामहमुपवीजयन्ती देवी सरस्वती श्रुत्वा जहास ।

दृष्ट्वा च तां तथा हसन्तीं स मुनिः पापकारिणि दुर्गृहीत-विद्यालवावलेपदुर्विदग्धे ! मामुपहससि ? इत्युक्त्वा कोपकम्प-तरलिताङ्गुलिना करेण अक्षमालाम् आक्षिप्य कामण्डलेयेन वारिणा समुपस्पृश्य शापजलं जग्राह ।

अस्य प्रबन्धस्य वङ्गभाषानुवादः ।

(৬) এইরূপ শুনিতে পাওয়া যায়,—পূর্ব্বকালে ভগবান্ পিতামহ একদিবস স্বীয়লোকে বিকসিত পদ্মাসনে উপবিষ্ট ও পুরন্দরাদি দেববৃন্দে পরিবৃত হইয়া সমিতি সংস্থাপনপূর্ব্বক ব্রহ্মবিদ্যা ও অন্যান্য সুনির্ম্মল বিদ্যা-সম্বন্ধে আলোচনা করিতেছিলেন। ঐরূপে সমাসীন ত্রিলোকসেব্য বিরিঞ্চিকে সপ্তর্ষিমণ্ডলের সহিত মনু দক্ষ চাক্ষুষপ্রমুখ দেবর্ষিগণ ও মহর্ষিগণ সেবা করিতে লাগিলেন। কেহ স্তবযোগ্য ঋগ্বেদ উচ্চারণ, কেহ কেহ পূজনীয় যজুর্ব্বেদপাঠ, অন্য কেহ কেহ সুমধুর সামবেদগান, কেহ কেহ বা যজ্ঞক্রিয়াসাধক মন্ত্র সকলের ব্যাখ্যা করিতেছিলেন। (ক্রমে) নানাবিদ্যা-বিষয়ক আলোচনা করিতে করিতে তাঁহাদিগের মধ্যে পরস্পর শাস্ত্রীয় বিবাদ উপস্থিত হইল।

অনন্তর অত্রিনন্দন সুধাকরসহোদর স্বভাবকোপন পরমতাপস দুর্ব্বাসা মুনি,মন্দপাল নামক অপর এক মুনির সহিত কলহপূর্ব্বক সামগান করিতে করিতে স্বরভঙ্গ করিয়া ফেলিলেন। অভিশাপ ভয়ে সকলেই মৌনাবলম্বন করিলেন। ব্রহ্মাও (কোপনস্বভাব দুর্ব্বাসার ভয়ে) পরস্পর কথোপকথন-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

প্রসঙ্গে আসক্তি দেখাইয়া দুর্ব্বাসার সামগান-শ্রবণে ঔদাসীন্য প্রকাশ করিলেন। তখন ভগবতী কুমারী অল্পাতীতবালভাবা অভিনবযৌবনা সরস্বতী দেবী ভুজলতাসঞ্চালনপূর্ব্বক প্রজাপতিকে চামরব্যজন করিতে করিতে স্বরভঙ্গ শ্রবণ করিয়া ঈষৎ হাস্য করিয়াছিলেন। তাঁহাকে ঐরূপে হাসিতে দেখিয়া (স্থূলভ্রূকোপ) দুর্ব্বাসা "রে পাপীয়সি! স্বল্পবিদ্যাভিমানিনি, মূঢ়ে! আমাকে উপহাস করিতেছিস্" এই বলিয়া কোপকম্পিতকরে অক্ষমালা নিক্ষেপ করিয়া কমণ্ডলুর জলদ্বারা আচমনপূর্ব্বক অভিশাপার্থ জলগণ্ডূষ গ্রহণ করিলেন।

---

(৭) বঙ্গদেশে হিন্দুসমাজের দুর্দ্দশা ক্রমশঃ চরমসীমায় উপনীত হইয়াছে। অন্নাভাবে শরীর জীর্ণ শীর্ণ। দুর্ভিক্ষের প্রকোপ ক্রমশই অধিক প্রবল। পূর্ব্বকালে যে দুর্ঘটনা যুগযুগান্তরে কদাচিৎ একবার ঘটিত, তাহা এখন দৈনিক ব্যাপারের মধ্যে পরিগণিত। প্রতি নগরে ও গ্রামে যে কত শত লোক প্রত্যহ অনশনে বা অর্দ্ধাশনে দিন যাপন করিতেছে, তাহার সংখ্যা নাই। কত পিতামাতা সন্তানের ভরণপোষণে অসমর্থ হইয়া অহোরাত্র নীরবে অশ্রুবিসর্জ্জন করিতেছেন। "জলদুর্ভিক্ষ" বলিয়া নূতন শব্দের সৃষ্টি হইয়াছে। শত শত গ্রামে গ্রীষ্মের প্রচণ্ড উত্তাপের সময় স্নানের কথা দূরে থাকুক, পিপাসানিবৃত্তির জন্যও জল পাওয়া যায় না। ক্ষুধাতৃষ্ণার যন্ত্রণার উপর ভয়াবহ রোগের আক্রমণ ক্রমশঃ বৃদ্ধি পাইতেছে। নূতন নূতন সংক্রামক রোগের আবির্ভাব হইতেছে। অনেকগুলি রোগ অচিকিৎস্য বলিয়া খ্যাত, অদ্যাপি তাহাদের কোন চিকিৎসাপ্রণালী উদ্ভাবিত হয় নাই। কত জনপদ লোকক্ষয়-হেতু অরণ্যে পরিণত হইয়াছে। রোগের প্রাদুর্ভাব হেতু অনেক স্থান বাসের অনুপযোগী বলিয়া পরিত্যক্ত হইতেছে। সমগ্র দেশটাই রোগ ও অকালমৃত্যুর লীলাভূমি।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

দুশ্চিন্তায় সকলেরই মুখ ম্লান, শরীর ও মনের তেজ বা স্ফূর্ত্তি নাই ! কৃষি-কার্য্য বঙ্গদেশের প্রধান উপজীবিকা। কৃষকদিগের অবস্থাও অন্য সম্প্রদায় লোকের অপেক্ষা কথঞ্চিৎ ভাল। কিন্তু অভ্যস্ত পদ্ধতির অনুসরণ ভিন্ন, দেশ ও কালের উপযোগী নূতন কোন কৃষিপ্রণালী উদ্ভাবিত হইতেছে না।

৩—চিহ্নিতপ্রবন্ধস্য সংস্কৃতানুবাদঃ।

(৩) বঙ্গীয়হিন্দুসমাজস্য দুরবস্থা ক্রমেণ চরমমবধিমলভত। অন্নাভাবাৎ কলেবরং জীর্ণং শীর্ণঞ্চ সংবৃত্তম্। ক্রমশ এব দুর্ভিক্ষং বলবদাক্রামতি। যঃ খলু বিপৎপাতঃ পূর্বং যুগযুগান্তরেষু কদাচিৎ সকৃৎ সমভবৎ, স সম্প্রতি প্রতিদিবসং ঘটতে। প্রতিজনপদং কতিশো মানবা অনশনেনার্দ্ধাশনেন বা যদতিবাহয়ন্তি বাসরং, তত্র ন সংখ্যা বর্ত্ততে। কতি পিতরো মাতরশ্চ সন্তানান্ প্রতিপালয়িতুমপারয়ন্তো রুদন্তি নীরবমহোরাত্রম্।"জলদুর্ভিক্ষে"তি নবীনঃ শব্দঃ সমজনি। শতশো গ্রামেষু নিদাঘসময়প্রভবে তাপে বলীয়সি পিপাসামপনোদয়িতুমপি পানীয়ং ন লভ্যতে, দূরে তু বর্ত্ততামবগাহনবার্ত্তা। ক্ষুৎপিপাসাক্লেশেন সমং ভয়ঙ্করো ব্যাধিরুত্তরোত্তরং বর্দ্ধতে। নবনবঃ সংক্রামক আময় আবির্ভবতি। বহব এব ব্যাধয়োঽনুপশমনীয়তয়া প্রখ্যাতাঃ। অধুনাপি তেষাং কেচন চিকিৎসোপায়া নোদ্ভাব্যন্তে। কতি জনপদা উৎসন্নলোকা অরণ্যতয়া পরিণমন্তি। বহূনি নগরাণি রোগাকরতয়া ন বস্তুমুপযুজ্যন্ত ইতি পরিহীয়ন্তে। তাবানিবায়ং দেশ আময়াকালমরণয়োর্বিলাসক্ষেত্রম্। সর্ব্বে এব দুশ্চিন্তয়া ম্লানমুখাঃ। শরীরস্য মনসশ্চ ন খলু বর্ত্ততে তেজঃ স্ফূর্ত্তিশ্চ। কৃষিক্রিয়া বঙ্গেষু পর-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मोपजीविका। कृषकसमाजः समाजान्तरादखिलात् किञ्चि-दुत्तमावस्थोऽपि चिरपरिचितं पन्थानमन्तरा देशकालानुरूपमभि-नवं कमपि कृषिविषयं पन्थानमनुसर्त्तुं न तावदाविष्करोति।

अनुवादादर्शः

केषाञ्चित् संस्कृतवाक्यानां हिन्दीभाषया अनुवादप्रणाली प्रदर्श्यते—

गुरुमन्तरेण विद्यालाभो न भवति—विना गुरुके विद्याकी प्राप्ति नहीं होति है।

रामपदं हेमन्तकुमारञ्च अन्तरा पुस्तकं वर्त्तते--रामपद व हेमन्तकुमारके बीचमें पुस्तक है।

आचार्य्यं निकषा ब्रह्मचारी वसति—आचार्य्यके पास ब्रह्म-चारी रहता है।

को माम् अभिगच्छति—कौन मुझे उल्लङ्घन करता है?

विना विद्यां कुतो ज्ञानम्—बिना बिद्याके ज्ञान कैसे हो?

सेनापतिं परितो सेना व्रजति—सेनापतिके चारो तरफ सेना चलती है।

मां प्रति कथमिदं दुर्वचनम्—मेरे प्रति यह दुर्वचन क्यों?

वाराणसीमुभयतः गङ्गा वर्त्तते—बनारसको दोनो तरफ गङ्गा है।

धर्म्मम् ऋते कुतः सुखं—धर्म्मके बिना कैसे सुख हो?

अध्यधिपात्रं पात्राणि तिष्ठन्ति—बर्त्तनके नीचे बर्त्तन है।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

पक्षमेकं परीक्षा भविष्यति—एक पक्षतक परीक्षा होगी।

प्रातरुत्तिष्ठ नित्यं—हमेशा सबेरे उठो।

मां दृष्ट्वा ईषत् हसति स्म सा बाला—वह बाला मुझे देखकर थोड़ीसी हंसी।

पुस्तकं पठितवान् ?—पाठ पढ़लिया ?

अथ किम् ?—जी हां।

गुणवान् अथ रूपवान् जनो दुर्लभः—गुणी और सुन्दर-आदमी दुर्लभ है।

अथ कोमां सेविष्यते—कौन मेरी सेवा करेगा ?

अथ कोऽयं द्वितीयः—यह दूसरा कौन है ?

अथ तौ मित्रतां सम्प्राप्तौ—अनन्तर वे दोनों मित्रताको प्राप्त हुये।

अथाहं व्याख्यानं प्रारभे—मैं व्याख्यान शुरु करता हुं।

ननु त्वं तत्कार्य्यम् आरब्धवान् ?—क्या तुमने उस कामको शुरु कर दिया ?

ननु गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः—संपत्तियां निश्चयसे खुदही गुणों की लोभिनी होती है।

ननु संस्कृतसाहित्यपरिषदं प्रविश—कृपया संस्कृतसाहित्य-परिषदमें प्रवेश कीजिये।

अपि सुखं वर्त्तते ?—सुख तो है।

मुनिरपि मिथ्या कथितवान्—मुनि भी झूंट बोला।

अमरोऽपि तत्र आगतः—अमर भी वहां आये।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

कथं खलु एतत् कार्य्यम्—यह कैसे करना चाहिये ?

न खलु न खलु हन्तव्योऽयं मृगः—नहीं नहीं, यह मृग मारने योग्य है।

हा जगन्मोहनं वर्द्धते व्याधिः—हाय जगन्मोहनको व्याधि बढ़ रही है।

दुर्जनः स इति जनास्तं निन्दन्ति—वह दुर्जन है इस कारण लोग उसको निन्दा करता है।

इति दिवसा गच्छन्ति—इस तरह दिन बीतते है।

त्वं तावत् पाटलीपुत्रं गच्छ—तुम पहिले पाटलीपुत्र जावो।

लोको हि अभिनवप्रियः—क्यों कि लोग नवीन वस्तुके इच्छुक होते है।

परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्—पराये उपदेश करनेसे तो सब ही मनुष्य पण्डिताइ करते हैं।

न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति—बिना संशयसे पड़े मनुष्य किसी शुभ कार्य्यको नहीं प्राप्त होता है।

याच्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा—गुणाढ्य पुरुषसे मांगना निष्फल हो जाय तो भी श्रेष्ठ है, गुणहीन पुरुषसे मांगना सफल हो जाय तो भी श्रेष्ठ नहीं है।

न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः—तुच्छ भी आश्रयके लिये मित्रके आने पर पूर्व्वोपकारके ख्यालसे विमुख नहीं होता और जो वैसा उच्च है, उसकी तो कहना ही क्या ?

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

यः करोति वधोदर्का निःश्रेयसकरीः क्रियाः—जो मुक्तिकरी क्रियाको हिंसा फलकी उत्पादिका बना डालता है।

महाभाग ! सुतानेतान् मातृहीनाननेकैरुपायैः रक्षन् इदानीम् कथमपि वसामि शिवालयेऽस्मिन्—महाभाग, इन लड़कोंकी माय मर गई है, इन्हें नाना उपायोंसे पालता हुआ मैं इन शिवमन्दिरमें रहकर किसी तरह दिन काट रहा हूँ।

केषाञ्चित् हिन्दीभाषाग्रथितवाक्यानां संस्कृतेन
अनुवादप्रणाली प्रदर्श्यते—

दूधसे मक्खन पैदा होता है—दुग्धात् नवनीतम् उत्पद्यते।

गुरुको क्या देने योग्य नहीं है—गुरवे किं न प्रदेयम् ?

तुम दोनो द्वारा घोड़ा देखा गया—युवाभ्याम् अश्वो दृष्टः।

तू क्या करनेको जाता है—त्वं किं कर्त्तुं गच्छसि ?

हमलोग पुस्तकोंका लेन देन करते थे—वयं पुस्तकानि चिक्रियिमहे।

शिष्य लड़की लावें—शिष्याः काष्ठम् आहरेयुः।

सूर्य और चन्द्रमाको प्रकाशित होना चाहिये—सूर्याचन्द्रमसौ द्योतियाताम्।

कल्पान्त होनेपर भी सज्जन स्वभावसे विकारको प्राप्त नहीं होते—कल्पान्तेऽपि सज्जनः स्वभावात् विकृतिं न व्रजति।

पराधीन जीवनसे तो प्राणीयोंका मरण अच्छा है—जीवितात् तु पराधीनात् जीवानां मरणं वरम्।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

विवेकी लोगोंको देह भी प्यारा नहीं होता है—विवेकिजनानां देहोऽपि अप्रियः।

संस्कृतसाहित्यपरिषदसे विद्यार्थी लोग ज्ञान लाते है—संस्कृतसाहित्यपरिषदो विद्यार्थिनो ज्ञानं लभन्ते।

पापी लोग धर्म्मात्माका द्रोह करते हैं—पापिमनुष्याः धार्म्मिकाय द्रुह्यन्ति।

यह मङ्गलाचरण विघ्नध्वंसके लिये काफी है—इदं मङ्गलाचरणं विघ्नविध्वंसाय अलम्।

अध्यवसायी लोग चेष्टाकर करके शक्तिवाले होते हैं—अध्यवसायिनः चेष्टं चेष्टं शक्तिमन्तो भवन्ति।

यदि तुमलोग जीवोंको मारोगे तो नरकको जाओगे—यदि यूयं जीवान् अरिषिष्यत तर्हि नरकम् अव्रजिष्यत।

गायमें गोपना रहता है या गायसे भिन्न पदार्थमें—किं गवि गोत्वमुतागवि गोत्वम्?

अनूद्यतां संस्कृतभाषया—

(क) পুত্র পিতৃদেবের সেই কথা শুনিয়া কাতরভাবে পিতৃচরণে প্রণত হইয়া, গদগদবচনে কহিতে লাগিল,—পিতঃ! যে পুত্র পিতা মাতার অবশ্যকর্ত্তব্য ধর্ম্মকার্য্যে সর্ব্বপ্রযত্নে সহায়তা না করে, পিতা মাতার মঙ্গলের জন্য যে পুত্র অম্লানমুখে প্রাণ দিতে না পারে, তাহার জন্ম ধারণে কি ফল? সে পুত্র থাকা অপেক্ষা নারীর বন্ধ্যা হওয়া ভাল। পিতৃমাতৃকার্য্যই পুত্রের প্রাণ, পিতৃমাতৃ-সেবাই পুত্রের একমাত্র কার্য্য। পিতা মাতাই পুত্রের ধর্ম্ম, পিতা মাতাই স্বর্গ, পিতা মাতাই পুত্রের পরম তপস্যা। সমস্ত দেবতার ও সর্ব্বধর্ম্মের ফল পিতৃমাতৃভক্তিদ্বারাই লাভ করা যায়।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

কুল ও ধর্ম্ম হইতে পিতার পতনকে নিবারণ করে বলিয়া পুত্রের নাম 'অপত্য'। আমি এ সঙ্কটে যদি আপনাকে রক্ষা না করি তবে পিতঃ! আমায় ধিক্!

(খ) আশ্রম ও পর্ণশালা শূন্য এবং আসন সকল ইতস্ততঃ পতিত রহিয়াছে দেখিয়া, চতুর্দ্দিক্ সবিশেষ নিরীক্ষণপূর্ব্বক সীতাকে তথায় দেখিতে না পাইয়া রামচন্দ্র স্বীয় বাহুযুগল তুলিয়া উচ্চৈঃস্বরে কহিতে লাগিলেন, লক্ষ্মণ! সীতা কোথায়? এখান হইতেই বা তিনি কোন্ স্থানে গমন করিয়াছেন? সৌমিত্রে! কোন ব্যক্তি প্রিয়াকে হরণ অথবা ভক্ষণ করিয়াছে কি? অয়ি জানকি! যদি বৃক্ষের অন্তরালে লুকাইয়া আমাকে উপহাস করিতে ইচ্ছা হইয়া থাকে, তাহা হইলে যথেষ্ট হইয়াছে। দেখ, আমি যার পর নাই দুঃখে অভিভূত হইয়াছি। এ সময়ে আসিয়া আমাকে সান্ত্বনা কর। লক্ষ্মণ! আমি সীতাবিরহে কখনই বাঁচিতে পারিব না। ঘোরতর শোকে আমার হৃদয় আচ্ছন্ন হইয়াছে। অয়ি সীতে; কীর্ত্তি যেমন কুচরিত্র ব্যক্তিকে ত্যাগ করে, তুমিও সেইরূপ আমাকে ত্যাগ করিয়া কোথায় গিয়াছ? আমি তোমার বিরহে এই দণ্ডেই জীবন ত্যাগ করিব।

(क) पुत्र पिताकी बात सुन कर बड़े कातरभावसे पिताके चरणोंको प्रणाम करके गद्‌गद कण्ठसे बोलने लगा—पितः! जो पुत्र पितामाताके अवश्य करने योग्य धर्म्म कार्य्यमें सबसे पहले सहायता नहीं करता है, जो पितामाताको रक्षाके लिये प्रसन्नमुखसे प्राण नहीं दे सकता है, उसका जन्मधारण व्यर्थ है। उसके पुत्र होनेकी अपेक्षा स्त्रीका बन्ध्या होना अच्छा है। मातापिताके कार्य्यके लिये पुत्रका प्राण है।

मातापिताकी सेवाही पुत्रका एक मात्र कार्य्य है, पुत्रके

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

लिये मातापिता ही परम धर्म्म, मातापिता ही परम स्वर्ग तथा मातापिता ही परम तपस्या है। सब देवताओंकी पूजा और सब धर्मोंका फल पुत्र मातापिताकी भक्तिसे पाता है। पुत्रका नाम अपत्य इसलिये है कि वह कुल और धर्म्मसे पिताके पतन को रोकता है। मैं यदि इस सङ्कटमें आपकी रक्षा नहीं करूं तो पितः! मुझे धिक्कार है।

(ख) आश्रम और पर्णशाला शून्य है। आसन इधर उधर गिरे पड़े हैं यह देखकर रामचन्द्रजीने चारों ओर भलीभांति निरीक्षण करके सीताको नहीं पाया और दोनों भुजाएं उठा कर उच्चस्वरसे कहना प्रारम्भ किया, कि लक्ष्मण! सीता कहां है? वह इस स्थानसे कहां चली गयी। सौमित्रे! क्या कोई व्यक्ति सीताको हरण अथवा भक्षण कर गया है। प्रिये जानकि! यदि वृक्षकी एढ़में लुककर मुझसे उपहास करनेकी इच्छा हुई है तो यथेष्ट उपहार हो चुका। अकेला मैं निःसीम दुःखसे अभिभूत होगया हूं, इस समय आकर मुझे सान्त्वना दो। लक्ष्मण! मैं सीताके विरहमें जीवित नहीं रह सकता। घोरतर शोकसे आच्छन्न मेरा हृदय हो गया है। सीते! कीर्त्ति जैसे कुचरित्रको त्याग करती है उसी प्रकार तुम मुझे छोड़कर कहां चली गयी हो। मैं तुम्हारे विरहमें प्राण त्याग करूंगा।

क-ख-चिह्नित प्रबन्धस्य संस्कृतेनानुवादः—

(क) आकर्ण्य तां पितृवाचमार्त्तस्तनूजः प्रणतः पितृचरणयोः सगद्गदं वक्तुमारेभे—"तात, यस्तावदात्मजो नानुकूलता-

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

मारचयति सर्वेण प्रयत्नेन मातापित्रोरवश्यकर्त्तव्येषु धर्म्यकार्य्येषु, यश्च शुभाय मातापित्रोरशक्तः प्राणानम्लानमुखं विसर्जयितुम्, किं वा तस्य जन्मना धृतेन ! वरं नार्य्या बन्ध्यात्वमपि सततस्तादृशात् पुत्रात्। मातापित्रोः कर्म्मैव प्राणाः पुत्रस्य, एकमात्रं कर्म्म च तयोः सेवैव तस्य। पितरावेव पुत्रस्य धर्म्मः पितरावेव स्वर्गः पितरावेव च परमा तस्य तपस्या। लभ्यते मातापितृभक्त्या एव फलं समस्तदेवपूजानां सर्व्वधर्म्माणाञ्च। कुलात् धर्म्माच्च पितुः पतनं निवारयतीति कृत्वा पुत्रस्यापत्येति नाम। यद्यहमोदृश-विपत्तेर्भवन्तं नाभिरक्षामि तत्तात, धिङ्माम् !

(ख) शून्यमाश्रमपदं पर्णशाला च, इतस्ततो विक्षिप्तानि चासनानि इति समीक्ष्य रामचन्द्रः समन्ततः सविशेषमन्वीक्ष्य सीतां दृष्टिपथे अलभमानः समुत्क्षिप्य बाहुयुगलमात्मीयं तार-स्वरेण कथयितुमारेभे,—लक्ष्मण, क्व नु खलु सीता ? इतः स्थानात् प्रस्थिता कुत्र वासौ ? सौमित्रे, किमु प्रिया केनचित् अपहृता भक्षिता वा ? अयि जानकि, यदि वृक्षान्तराले अन्तर्धाय मामुप-हसितुमभिलाषो जातस्तदा पर्य्याप्तम् (इदमेव) अभूत्। पश्य मामतिमात्रेण दुःखेनाभिभूतम्। इदानीम् उपागत्य सान्त्वय माम्। लक्ष्मण ! सीताविरहेण कदापि नाहं जीवनं धारयितुं शक्नुयाम्, समुत्कटेन शोकेन मे हृदयमाच्छन्नमभूत्, अयि सीते, कीर्त्तिर्यथा कुचरित्रं परित्यजति तथा त्वमपि मां परित्यज्य कुत्र गतासि ? मया तव विरहेण अस्मिन्नेव दण्डे जीवनं परित्यक्तव्यम्।

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

স্বস্বমাতৃভাষয়ানূদ্যতামধস্তনঃ সন্দর্ভঃ—

(ক) শকুন্তলামিত্থং শোকাকুলামবলোক্য গৌতমী প্রোবাচ—"বৎসে, কিমপরেণ, শান্তা ভব, অতিবর্ত্ততে তে গমনবেলা, কথয় যদস্তি সখীভ্যাং বক্তব্যম্, নাতঃপরং কর্ত্তব্যঃ কালাতিপাতঃ" (ইতি)। শকুন্তলা তদানীং সখ্যাবুপসৃত্য প্রাহ—"সখ্যৌ যুবাং সমমেব মামালিঙ্গতম্," উভাভ্যামালিঙ্গিতায়াঞ্চ শকুন্তলায়াং তিস্র এব রোদিতুমারেভিরে। কিয়ৎক্ষণানন্তরঞ্চ সখ্যৌ শকুন্তলামূচতুঃ—"সখি, যদি মহারাজঃ শীঘ্রং ত্বাং নোপলক্ষয়িতুং শক্নুয়াৎ তদা তদীয়নামাঙ্কিতমঙ্গুরীয়ং দর্শয়েথাঃ।" শ্রুত্বা শকুন্তলা সুতরাং শঙ্কিতা প্রোবাচ—"সখ্যৌ কথং যুবামেবং বচনম্ অবাদিষ্টং, বদতং, যুবয়োর্বাক্যং শ্রুতবত্যাঃ কম্পতে মে হৃদয়ম্।" ক্রমশঃ শকুন্তলায়াং দৃষ্টিপথমতীতায়াং সখ্যৌ তারস্বরেণ রোদিতুমারভাতে। দীর্ঘং নিশ্বস্য মহর্ষিরাহ—"দৃষ্টিপথমতিক্রান্তা বাং সহচরী, সম্প্রতি নিগৃহ্য শোকাবেগং ময়া সার্দ্ধমাশ্রমং প্রতি গচ্ছতম্।" ইত্যুক্ত্বা মহর্ষিরাশ্রমাভিমুখং প্রতস্থে, তে চাপি তমনুজগ্মতুঃ।

(ক) বঙ্গভাষানুবাদঃ—

(ক) শকুন্তলাকে এইরূপ শোকাকুলা দেখিয়া গৌতমী কহিলেন,—"বাছা! আর কেন, ক্ষান্ত হও, যাইবার বেলা বহিয়া যায়, সখীদিগকে যাহা বলিতে হয় বলিয়া লও, আর বিলম্ব করিও না।" তখন শকুন্তলা সখীদিগের নিকটে গিয়া কহিলেন, 'সখি! তোমরা উভয়ে একত্র আলিঙ্গন কর।' উভয়ে আলিঙ্গন করিলে তিন জনেই রোদন করিতে লাগিলেন। কিয়ৎক্ষণ পরে সখীরা শকুন্তলাকে কহিলেন,'সখি! যদি রাজা

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

শীঘ্র চিনিতে না পারেন, তাঁহাকে তদীয়নামাঙ্কিত অঙ্গুরী দেখাইও।' শকুন্তলা শুনিয়া অতিশয় শঙ্কিত হইয়া কহিলেন, 'সখি! তোমরা এমন কথা বলিলে কেন, বল? তোমাদের কথা শুনিয়া আমার হৃৎকম্প হইতেছে।' ক্রমে ক্রমে শকুন্তলা দৃষ্টিপথের বহির্ভূত হইলে সখীদ্বয় উচ্চৈঃস্বরে রোদন করিতে লাগিলেন। মহর্ষি দীর্ঘ নিঃশ্বাস ত্যাগ করিয়া কহিলেন, 'তোমাদের সহচরী দৃষ্টিপথের বহির্ভূত হইয়াছেন; এক্ষণে শোকাবেগ সংবরণ করিয়া আমার সহিত আশ্রমে প্রতিগমন কর।' এই বলিয়া মহর্ষি আশ্রমাভিমুখে প্রস্থান করিলেন এবং তাঁহারাও তাঁহার অনুগামিনী হইলেন।

(क) हिन्दी-भाषानुवादः—

(क) शकुन्तलाको इस प्रकार शोकाकुल देखकर गौतमी बोली, बेटी! और क्या, शान्त हो। जानेका समय अतीत हुआ जाता हैं। सखियोंसे जो कहना है कहलो। अधिक बिलम्ब नहीं किया जा सकता। तदनन्तर शकुन्तला सखियोंके पास जाकर बोली, तुम दोनों एक साथ आलिङ्गन करो। दोनोंके आलिङ्गन करने पर तीनों रोने लगीं। कुछ क्षणोंके बाद सखियां शकुन्तलासे बोलीं, सखि! यदि राजा शीघ्र पहचान न सकें तो उनको तन्नामाङ्कित अंगूठी दिखाना। शकुन्तला सुनतेही अतिशय शङ्कित होकर बोली, सखियों! तुम यह बात क्यों बोलती हो, तुम्हारी यह बात सुनकर मेरा हृदय कम्पित हो रहा है। क्रमशः शकुन्तलाके दृष्टिपथके बहिर्भूत होने पर दोनों सखियां उच्चस्वरसे रोदन करने लगीं। महर्षि दीर्घ

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

निःश्वास त्याग करके बोले तुम्हारी सहचरी दृष्टिपथके बाहर हो गयी। अब शोकावेगको रोक कर मेरे साथ आश्रममें चलो। यह कह कर महर्षि आश्रमकी ओर चले और वे दोनों उनकी अनुगामिनी हुईं।

ॐ तत्सत्! ॐ तत्सत्!! ॐ तत्सत्!!!

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal

CC-0. Digitized by eGangotri and MIDF- Delhi

Jayatu Sanskritam, Kathmandu, Nepal